अनुक्रम

क्र.सं	खंड का नाम	पृष्ठ क्रमांक
1.	**खंड-1 इतिहास व इतिहास लेखन**	
	इकाई-1 इतिहाल लेखन-परिभाषा	2-11
	इकाई-2 इतिहास : स्वरूप एवं अध्ययन क्षेत्र	12-31
	इकाई-3 इतिहास तथा इसके सहायक शास्त्र–पुरातत्व, पुरालेखशास्त्र, प्रतिमाशास्त्र एवं मुद्राशास्त्र	32-41
	इकाई-4 इतिहास और इसका अन्य अनुशासनों से संबंध	42-65
2.	**खंड-2 इतिहास की शोध पद्धति**	
	इकाई-1 इतिहास के स्रोत-प्राथमिक एवं द्वितीयक	66-76
	इकाई-2 स्रोत सामग्री का संग्रहण एवं चयन	77-89
	इकाई-3 स्रोत परीक्षण-बाह्य एवं आंतरिक	90-103
	इकाई-4 पाद् टिप्पणी एवं संदर्भ ग्रंथ सूची	104-111
3.	**खंड-3 इतिहास लेखन के विभिन्न सिद्धांत**	
	इकाई-1 कारणवाद-कार्य-कारण सिद्धांत	112-122
	इकाई-2 इतिहास लेखन में वस्तुनिष्ठता एवं पूर्वग्रह	123-134
	इकाई-3 प्रत्यक्षवाद	135-143
	इकाई-4 इतिहास का चक्रवादी सिद्धांत	144-152
4.	**खंड-4 इतिहास लेखन की पद्धति-प्राचीन और मध्यकालीन**	
	इकाई-1 ग्रीक रोमन	133-160
	इकाई-2 अरेबियन	161-166
	इकाई-3 मध्य यूरोपियन	167-178
	इकाई-4 भारतीय	179-191

खंड-1 इतिहास व इतिहास लेखन
इकाई-1 इतिहास लेखन-परिभाषा

इकाई की रूपरेखा

1.1.1 उद्देश्य
1.1.2 प्रस्तावना
1.1.3 इतिहास की उत्पत्ति
1.1.4 इतिहास का अर्थ
1.1.5 इतिहास की परिभाषा
1.1.5.1 परिभाषा क्र. 1 - इतिहास एक कहानी है
1.1.5.2 परिभाषा क्र. 2 - इतिहास एक सामाजिक विज्ञान है
1.1.5.3 परिभाषा क्र. 3 - इतिहास एक ज्ञान है
1.1.5.4 परिभाषा क्र. 4 - संपूर्ण इतिहास केवल विचारों का इतिहास है
1.1.5.5 परिभाषा क्र. 5 - इतिहास भूतकाल के अनुभव का वर्णन है
1.1.5.6 परिभाषा क्र. 6 - संपूर्ण इतिहास समसामयिक इतिहास है
1.1.5.7 परिभाषा क्र. 7 - इतिहास भूत एवं वर्तमान का मध्यस्थ है
1.1.5.8 निष्कर्ष
1.1.6 सारांश
1.1.7 बोध प्रश्न
1.1.7.1 लघुउत्तरीय प्रश्न
1.1.7.2 दीर्घउत्तरीय प्रश्न
1.1.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1.1.1 उद्देश्य

इतिहास के जनक हेरोडोटस से लेकर वर्तमान समय तक इतिहास की अनेक रूप में व्याख्या की गई है। इतिहास लेखन का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत है और इसमें प्रतिदिन अन्वेषण होते रहते हैं। विश्व परिपेक्ष्य में इतिहास लेखन की परंपरा के आरंभ का श्रेय यूनानी (ग्रीक) विद्वानों को जाता है। प्रो. थॉमसन के अनुसार - ''यूनानियों ने ही सर्वप्रथम इतिहास लिखने की कला सीखी''। इतिहास का अर्थ अतीत का अध्ययन है एवं दर्शन का एक महत्वपूर्ण लक्षण ज्ञान का आत्मनिरीक्षण है। इस संबंध में ओकशाट का यह कथन काफी उपयुक्त प्रतीत होता है कि इतिहास इतिहासकार का अनुभव होता है। इतिहासकार के अतिरिक्त अन्य कोई भी इसकी अनुभूति नहीं कर सकता है, इतिहास लेखन का अभिप्राय इसका निर्माण होता है। प्रस्तुत इकाई का उद्धेश्य विद्यार्थियों को यह समझाना है कि इतिहास क्या है? एवं इतिहास को विभिन्न विद्वानों द्वारा किस प्रकार से परिभाषित किया गया है?

1.1.2 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में इतिहास को विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया जाना प्रस्तावित है। इसके अंतर्गत इतिहास की उत्पित्ति, इतिहास का अर्थ एवं इतिहास की परिभाषा पर प्रकाश डाला जाएगा। यद्यपि प्रारंभ से ही सामान्यतः अतीत की घटनाओं के क्रमबद्ध अध्ययन को ही इतिहास माना जाता है, किंतु इस इकाई में इतिहास को विद्वानों द्वारा प्रतिपादित मतों के आधार पर प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाएगा। इस इकाई में इतिहास की परिभाषा के संबंध में दिए गए विद्वानों के विभिन्न मतों का भी अवलोकन कर उन्हें प्रस्तुत किया जाएगा। साथ ही इतिहास लेखन की परिभाषा से संबंधित विभिन्न प्रश्नों को एवं संदर्भ ग्रंथ सूची को विभिन्न इतिहासकारों के दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया जाना प्रस्तावित है।

1.1.3 इतिहास की उत्पत्ति

इतिहास शब्द की उत्पत्ति इति+ह+आस शब्दों से होती है। इति+ह+आस अर्थात् निश्चित रूप से इस प्रकार हुआ था। आचार्य दुर्ग ने अपनी 'निरुक्त भाष्य वृत्ति' में इसकी व्याख्या करते हुए लिखा है - ''इति हैवमासीदिति यत् कथ्यते तत् इतिहासः'' - अर्थात् 'यह निश्चित रूप से इस प्रकार हुआ था। अतः भूतकाल का अध्ययन ही इतिहास है। आर. के. मजूमदार ने लिखा है कि इसकी व्युत्पत्ति जर्मन शब्द 'गेस्चिचटे' से मानी जाती है जिसका अर्थ है विगत घटनाओं का विशेष एवं बोधगम्य विवरण। इतिहास का अंग्रेजी अनुवाद History होता है। इस History (इतिहास) शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग हेरोडोटस ने किया था। अतः कतिपय विद्वान हेरोडोटस को इतिहास का जनक मानते हैं। कालान्तर में यूनानी लोगों द्वारा हिस्ट्री की परिभाषा ज्ञान-पिपासा एवं अनुसंधान से की गई। रेनियर ने हिस्ट्री को एक स्टोरी के रूप में परिभाषित किया है। इसी प्रकार हेनरी पिरेन ने इतिहास को समाज में रहने वाले मनुष्यों के कार्यों एवं उपलब्धियों की कहानी बताया है। जी. एम. ट्रेवेलियन के अनुसार भी इतिहास अपरिवर्तनीय रूप में एक कथा है। कुछ अन्य इतिहासकारों ने भी इतिहास को कथा के रूप में स्वीकार किया है। संदेह नहीं कि इतिहास मानव की आत्मकथा है, जिसे यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

1.1.4 इतिहास का अर्थ

इतिहास क्या है ? यह प्रश्न जितना सरल है, इसका उत्तर उतना ही कठिन है। विश्व में सबका कुछ न कुछ अर्थ होता है। अर्थहीन कुछ भी नहीं होता। अतः इतिहास का भी अपना अर्थ होता है। विद्वानों ने इतिहास के अर्थ को अपनी-अपनी दृष्टि से देखा है।

विश्व में अर्थहीन कुछ भी नहीं होता, यदि ऐसा मान लिया जाए तो इतिहास का भी अर्थ होता है - यह स्वीकार्य होना चाहिए, किंतु कार्ल आर. पापर का कथन है कि इतिहास का कोई लक्ष्य नहीं होता, इसलिए उसका कोई अर्थ नहीं है। काल्हर इसका विरोध करते हुए कहते हैं कि इतिहास अर्थहीन नहीं है। गार्डनर भी इसका समर्थन करते हुए लिखते हैं कि इतिहासकार अतीत के तथ्यों पर घटनाओं का एक परिकल्पनात्मक चित्र प्रस्तुत करता है जिसमें वर्णित घटनाएँ अर्थपूर्ण होती हैं - इसी को इतिहास का अर्थ कहते हैं। विद्वानों ने जहाँ इसे अर्थपूर्ण बतलाया है वहाँ अनेक उदाहरण भी दिए हैं, किंतु जहाँ अर्थहीन बतलाया है वहाँ सन्तोषजनक तर्क प्रस्तुत नहीं कर पाए। अतएव निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि इतिहास वास्तव में अर्थहीन नहीं है। इतिहास कार्य-कारण, संबंधों की विवेचना पर आधृत अर्थों का अन्वेषण करता है और इसके आधार पर एक तर्क-संगत निष्कर्ष प्रदान करता है। ओकशाट के अनुसार, इतिहासकार का अनुभव ही इतिहास है। इतिहासकार के अतिरिक्त अन्य कोई इसे अनुभव नहीं कर

सकता। इतिहास-लेखन का अर्थ 'इतिहास की संरचना' होता है जिसे निरर्थक नहीं कह सकते। अतएव स्पष्ट है कि इतिहास का भी अर्थ होता है।

1.1.5 इतिहास की परिभाषा

विभिन्न विद्वानों ने इतिहास को जिस प्रकार से अलग-अलग अर्थों में लिया है उसी प्रकार उसकी परिभाषाएँ भी भिन्न-भिन्न प्रकार से दी हैं। कुछ लोगों ने इतिहास को एक कहानी, एक ज्ञान, राजनीतिशास्त्र, सामाजिक विज्ञान, विशुद्ध विज्ञान, चिंतन विद्या, अतीत-वर्तमान का संलाप एवं भूत-भविष्य इत्यादि कहा है तो कुछ ने सभ्यता, संस्कृति, सत्यान्वेषण, उत्पादन, प्रगति आदि से संबोधन करके परिभाषित करने का प्रयास किया है। विद्वानों ने इतिहास को जिन-जिन अर्थों में देखा है, उसी के अनुरूप इतिहास को परिभाषित करने का प्रयास किया है। यही कारण है कि इतिहास की अनंत परिभाषाएँ हो चुकी हैं, पर अभी तक इतिहास की कोई सर्वमान्य परिभाषा निश्चित नहीं की जा सकी है। इसीलिए चार्ल्स फर्थ कहते हैं कि इतिहास को परिभाषित करना बहुत कठिन कार्य है। इतिहास की परिभाषाओं को देखने से यह ज्ञात होता है कि एक ही विद्वान ने इतिहास को भिन्न-भिन्न आधार पर कई प्रकार से परिभाषित करने का प्रयास किया है। चार्ल्स फर्थ ने लिखा है कि इतिहास को परिभाषित करना सरल नहीं है फिर भी विभिन्न इतिहासकारों ने अपने-अपने ढंग से इतिहास की परिभाषाएँ दी हैं जिनका विवरण निम्नानुसार दिया गया है -

1.1.5.1 परिभाषा क्र. 1 - इतिहास एक कहानी है

जी. एम. ट्रेवेलियन के अनुसार ''इतिहास अपने अपरिवर्तनीय अंश में एक कहानी है।'' फ्रेंच अकादमी ने इस विषय पर विचार प्रस्तुत किया है कि ''इतिहास स्मरण योग्य वस्तुओं की कहानी है।'' डच इतिहासकार हुइजिंगा ने इतिहास को अतीत की घटनाओं का उल्लेख स्वीकार किया है। एफ. एस. ओलिवर के शब्दों में इतिहासकार को केवल कहानी बतानी चाहिए, इस कहानी के स्वरूप को उपदेश तथा नैतिक विचारों से दुष्कृत नहीं करना चाहिए।

यदि इतिहास को मात्र कहानी ही स्वीकार किया जाए तो इसका स्वरूप और उद्देश्य क्या होना चाहिए। हेनरी पिरेन के अनुसार ''इतिहास समाज में रहने वाले मनुष्यों के कार्यों एवं उपलब्धियों की कहानी है।'' परंतु यह परिभाषा भी त्रुटिपूर्ण है, क्योंकि समाज में रहने वाले सभी व्यक्तियों के कार्यों एवं उपलब्धियों का उल्लेख इतिहास में नहीं होता है। क्या अशोक अथवा अकबरकालीन इतिहासकारों ने अपने इतिहास में समसामयिक समाज के सभी व्यक्तियों के कार्यों एवं उपलब्धियों का उल्लेख किया है? संभवतः नहीं। इतिहास केवल समाज का नेतृत्व करने वाले महत्वपूर्ण व्यक्तियों के कार्यों का वर्णन होता है। इस प्रकार इतिहास को समाज के सभी व्यक्तियों के कार्यों तथा उपलब्धियों की कहानी नहीं स्वीकार किया जा सकता।

रेनियर के अनुसार, ''इतिहास सभ्य समाज में रहने वाले मनुष्यों के कार्यों एवं उपलब्धियों का उल्लेख होता है।'' सभ्य समाज से अभिप्राय संगठित समाज तथा राज्य और प्रशासन से है। जंगलों में जीवन व्यतीत करने वाले असंगठित मनुष्यों का इतिहास नहीं होता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने ढंग से कार्य करता है। यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति का अपना इतिहास होता है। इतिहास जिसका जन सामान्य अध्ययन करता है उसमें प्रत्येक व्यक्ति के कार्यों का उल्लेख संभव नहीं है। इतिहास में सभ्य समाज से तात्पर्य संगठित समाज होता है। समाज का नेतृत्व कुछ व्यक्ति करते हैं। इसलिए उनके कार्यों का उल्लेख इतिहास होता है। संगठित समाज द्वारा राज्य का निर्माण होता है। राज्य का शासन शासक द्वारा होता है। इसीलिए

यार्क पॉवेल ने इतिहास को राज्य से संबंधित कार्यव्यापार का उल्लेख माना है। उन्होंने सामाजिक राज्य में रहने वाले मानवीय कार्यों एवं उपलब्धियों को इतिहास स्वीकार किया है।

1.1.5.2 परिभाषा क्र. 2 - इतिहास एक सामाजिक विज्ञान है

चार्ल्स फर्थ ने लिखा है कि इतिहास मानवीय सामाजिक जीवन का वर्णन है। इसका उद्देश्य सामाजिक परिवर्तनों को प्रभावित करने वाले उन सक्रिय विचारों का अन्वेषण है जो समाज के विकास में बाधक अथवा सहायक सिद्ध हुए हैं। इन सभी तथ्यों का उल्लेख इतिहास में होना चाहिए। ए. एल. राउज ने भी इस तथ्य को मान्यता प्रदान करते हुए कहा है कि इतिहास भौगोलिक तथा वातावरण के परिवेश में समाज में रहने वाले मनुष्यों का उल्लेख है। सामाजिक तथा सांस्कृतिक उद्भव एवं विकास मनुष्य तथा पर्यावरण की अंतर्क्रिया की प्रक्रिया होते हैं। मनुष्य भौगोलिक परिस्थिति में कार्य करता है तथा विचार करता है। भौगोलिक परिस्थितियाँ मनुष्य की कार्यक्षमता को प्रभावित करती हैं। समाज तथा संस्कृति का विकास पर्यावरण के परिवेश में होता है। अतः इतिहास अध्ययन के समय भौगोलिक परिस्थितियों तथा वातावरण को भी ध्यान में रखना चाहिए। इसीलिए कहा जाता है कि मंगोलों को लड़ाकू जाति बनाने में भौगोलिक परिस्थितियों का अत्यधिक योगदान रहा है। इसी कारण हेनरी पिरेन ने भी कहा है कि इतिहास अतीत में स्थित मानवीय समाज के विकास का व्याख्यात्मक विवरण है।

1.1.5.3 परिभाषा क्र. 3 - इतिहास एक ज्ञान है

चार्ल्स फर्थ के अनुसार, इतिहास ज्ञान की एक शाखा ही नहीं, अपितु एक विशेष प्रकार का ज्ञान है जो मनुष्य के दैनिक जीवन में उपयोगी है। मनुष्य इतिहास का अध्ययन अतीत के उदाहरणों से ज्ञान प्राप्त करने के लिए करता है। प्रथम तथा द्वितीय विश्वयुद्ध का भयावह परिणाम आधुनिक राजनयिकों के समक्ष ऐसे उदाहरण हैं कि कोई भी राष्ट्र परमाणु अस्त्रों द्वारा विनाशकारी विश्वयुद्ध की कल्पना भी नहीं कर सकता है। इतिहास का उद्देश्य अतीत के उदाहरणों द्वारा ऐसी शिक्षा प्रदान करना है जो मनुष्य की इच्छाओं और कार्यों का मार्गदर्शन कर सके। इसीलिए अलाउद्दीन खलजी ने सिकंदर की असफलताओं को देखकर विश्व-विजय की योजना का विचार समाप्त कर दिया। अतः वर्तमान में कोई भी राजा, राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री अथवा राष्ट्राध्यक्ष, सिकंदर, नेपोलियन, हिटलर तथा मुसोलिनी का अनुकरण नहीं करना चाहता।

अतः स्पष्ट है कि इतिहास एक ज्ञान है। कॉलिंगवुड तथा क्रोचे ने भी इस तथ्य को मान्यता प्रदान करते हुए कहा है कि ऐतिहासिक ज्ञान मानव-संबंधी ज्ञान का स्रोत है। ऐतिहासिक ज्ञान मानवविज्ञान का सर्वश्रेष्ठ रूप है। कॉलिंगवुड की भी यही अवधारणा है कि इतिहास एक अद्वितीय प्रकार का ज्ञान है तथा यह मानव के संपूर्ण ज्ञान का स्रोत है। अतः इतिहास को ज्ञान माना जा सकता है।

1.1.5.4 परिभाषा क्र. 4 - संपूर्ण इतिहास केवल विचारों का इतिहास है

कॉलिंगवुड का कथन है कि ''संपूर्ण इतिहास विचारधारा का इतिहास होता है।'' मनुष्य का कार्य विचारपूर्ण होता है। इतिहास में विचार को प्रधानता देने का अभिप्राय यह है कि विचार ही मानवीय कार्यों का मूलस्रोत तथा उद्गमस्थल है। मानवीय कार्यों के पीछे विचार प्रेरक शक्ति होती है। इतिहास के व्यक्तियों के कार्यों एवं उपलब्धियों का अध्ययन करने के पहले उनके विचारों का अध्ययन अत्यंत आवश्यक होता है। इस प्रकार विचारों का अध्ययन कार्यों के अध्ययन को सुगम तथा बोधगम्य बनाता है। डिल्थे ने इस मत का समर्थन किया है कि इतिहास वर्तमान में अतीतकालिक ज्ञान का अध्ययन है।

इतिहासकार ऐतिहासिक व्यक्ति के विचारों की पुनरावृत्ति कर अतीत का पुर्ननिर्माण करता है। यही विचारों का इतिहास होता है जिसका अनुभव इतिहासकार कर सके अथवा जो इतिहासकार के मस्तिष्क में पुनर्जीवित हो सके। रेनियर का भी कथन है कि इतिहास सभ्य समाज में रहने वाले मनुष्यों के अनुभवों की कहानी है। अतः मनुष्यों के भूतकालिक विचारों को ही इतिहास माना जा सकता है।

वर्तमान में यह अवधारणा विद्वानों के बीच विवाद का विषय बनी हुई है। प्रो. वाल्श के अनुसार, इतिहास विचारधारा नहीं होता। प्रायः दैवी प्रकोप, बाढ़, भूकम्प, अनावृष्टि तथा अतिवृष्टि मानवीय विचार के विपरीत परिणाम देते हैं। इस प्रकार, दैवी प्रकोप के समक्ष मानवीय विचार प्रधान न होकर अस्तित्वहीन प्रतीत होने लगता है। हीगेल तथा कार्ल मार्क्स ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है कि अंतर्निहित शक्तियाँ प्राय: मानवीय इच्छा के विपरीत परिणाम देती हैं। यदि इतिहास में विचार ही प्रधान होता तो संभवतः असफलताओं का इतिहास ही नहीं होता अथवा मनुष्य कभी असफल होता ही नहीं।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि यदि इतिहास विचारों का इतिहास है और यदि प्रत्येक विचार स्वरूपतः ऐतिहासिक होता है तो मुहम्मद तुगलक की योजनाएँ असफल नहीं होतीं। नेपोलियन की रूस विजय योजना भी असफल नहीं होती। अतः संपूर्ण इतिहास को केवल विचारों का इतिहास नहीं कहा जा सकता।

1.1.5.5 परिभाषा क्र. 5 - इतिहास भूतकाल के अनुभव का वर्णन है

प्रो. जे. बी. ब्यूरी का कथन है कि इतिहास विज्ञान है, न कम और न अधिक। अधिकांश वैज्ञानिक विधा में आस्थावान इतिहासकारों ने विज्ञान की नवीन उपलब्धियों से प्रभावित होकर, यह कहना प्रारंभ कर दिया कि विज्ञान की उपलब्धियों ने मानव समाज की धार्मिकता अतंरिक्ष संबंधी रूढ़िवादी अवधारणाओं को समाप्त कर नवीन चेतना को जागृत किया है। यदि वैज्ञानिक विधाओं का समुचित प्रयोग इतिहास अध्ययन में किया जाए, अतीत संबंधी अनेक तथ्यों का रहस्योद्घाटन होगा जो इतिहास की उपयोगिता में अवश्य वृद्धि करेगा।

अतः यदि इतिहास समाज में रहने वाले मनुष्यों के कार्यों एवं उपलब्धियों की कहानी है, ऐसी परिस्थिति में अतीत के महापुरुषों की उपलब्धि संबंधी ज्ञान् कैसे प्राप्त किया जाए। ऐतिहासिक स्रोतों, पाण्डुलिपियों में वर्णित उनकी उपलब्धियों को अनुभव द्वारा इतिहासकार अपने मस्तिष्क में एक परिकल्पनात्मक चित्र बनाकर समसामयिक समाज के समक्ष प्रस्तुत करता है। रेनियर का अभिमत है कि प्रत्येक व्यक्ति के लिए अपने अनुभव के संस्मरण का सर्वोच्च महत्व है। अरस्तू ने यथार्थ अनुभव के प्रशिक्षण की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। प्रत्येक युग का मानव समाज अपने बच्चों को अतीत का संस्मरण सुनाते हैं और परंपरा के रूप में एक पीढ़ी के बाद दूसरी पीढ़ी तक निर्बाधरूप से गतिशील रहती है।

अतीतकाल से प्रचलित अनुभवों की कहानी एक पीढ़ी के पश्चात् दूसरी पीढ़ी तक चलती है और इतिहास की वस्तु सामग्री बन जाती है। डॉ. एल. पी. पाण्डे ने इसे परंपरा के रूप में मान्यता प्रदान करते हुए परंपरा को ऐतिहासिक वस्तु सामग्री स्वीकार कियाहै। उनके अनुसार सतत् निरंतर साध्य तथा श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठतर तत्व के रूप में परंपरा भावी पीढ़ी की विकासधाराओं को सार्थक पृष्ठभूमि देता है। परंपराओं का विवरण इतिहासकार को स्पष्टीकरण के लिए कारणों, उद्देश्यों, प्रभाव तथा परिणाम की गवेषणा के लिए प्रेरित, प्रोत्साहित तथा विवश करता है। सम्राट अकबर की उदारवादी धार्मिक नीति के कारणों की व्याख्या करते समय इतिहासकार तत्कालीन परिस्थिति, अकबर का उद्देश्य, धार्मिक नीति क्रियान्वय के कारणों तथा परिणामों की व्याख्या करता है। इन सभी तथ्यों की अनुभूति इतिहासकार के लिए आवश्यक है। इसीलिए कुछ विद्वान इतिहास को अतीतकालिक अनुभवों का वृतांत मानते हैं।

1.1.5.6 परिभाषा क्र. 6 - संपूर्णइतिहास समसामयिक इतिहास है

इटालियन दार्शनिक क्रोचे का कथन है कि '' संपूर्ण इतिहास समसामायिक इतिहास होता है।' जिस समय क्रोचे ने यह कथन दिया था तब बीसवीं सदी के विद्वत समाज के लिए यह हास्यास्पद लगता था कि कैसे अतीत को वर्तमान की संज्ञा दी जा सकती है। क्रोचे के कथन का अर्थ यह है कि प्रत्येक वर्तमान इतिहासकार अतीत का अपनी दृष्टि से अवलोकन करता है। अतीत को उस रूप में नहीं देखता जिस रूप में वह था। अतीत का निर्माण इतिहासकार के मस्तिष्क में होता है। उसके अनुसार, इतिहास इस तथ्य की स्वीकृति है कि जीवन यथार्थ-इतिहास से भिन्न है। क्रोचे का आशय है कि घटनाएँ तथा विचार सभी इतिहास-प्रवाह के अभिन्न अंग हैं। उसकी विषयवस्तु है कि वर्तमान जीवन से संबंधित होने के कारण इतिहास सदैव समसामयिक होता है एवं समसामयिकता की यह विशेषता है कि वह उसे इतिवृत्त से अलग करती है।

अतीतकालिक अथवा असामयिक इतिहास की यह पहली अपेक्षा है कि वह इतिहासकार के चित्त को उद्वेलित करता है। परिणामस्वरूप समसामयिक इतिहास की भाँति वह इतिहास भी सजीव हो उठता है। यह एक स्पष्ट तथ्य है कि केवल वर्तमानकालिक जीवन में अभिरुचि ही अतीत के अनुसंधान के लिए प्रेरित करती है और इस प्रकार अतीतकालिक तथ्य वर्तमानकालिक जीवन के हितों के साथ संयुक्त हो जाता है। इस प्रकार अतीत वर्तमानकालिक कौतूहलों अथवा स्वार्थों का समाधान प्रस्तुत करता है। एल्टन का अभिमत है कि वर्तमान के संदर्भ में अतीत का अध्ययन सुखद भविष्य के लिए होना चाहिए।

अतः इतिहास समसामयिक होता है। अतीतकालिक घटना पेलीपोनेशियन युद्ध, मेक्सिको की कला, अरबी-दर्शन का इतिहास, वर्तमान में क्या अभिरुचि दे सकता है, परंतु इनमें से प्रत्येक उस क्षण इतिहास का स्वरूप धारण कर लेता है जब वर्तमान में हम अपनी आत्मिक आवश्यकताओं के अनुरूप उसको स्वीकार कर लेते हैं। इतिहास जीवन का इतिवृत्त होता है, इतिवृत्त न हो तो इतिहास असामयिक इतिहास होता है और इसे इतिवृत्तात्मक अतीतकालिक इतिहास भी कहा जा सकता है।

क्रोचे के अनुसार वर्तमानकालिक जीवन में अभिरुचि ही किसी को अतीत का अन्वेषण करने के लिए प्रेरित कर सकती है, किंतु इन अभिरुचियों की भूमिका और भी महत्वपूर्ण होती है। क्रोचे, हीगेल के उस विचार से सहमत हैं कि ऐतिहासिक प्रक्रिया में चेतना ही गतिमान तत्व है।

इस प्रकार सामयिकता इतिहास का आवश्यक लक्षण है। साथ ही इतिहास तथा जीवन का संबंध एकात्मकता से है। प्रमाणविहीन इतिहास निरर्थक होता है। इसीलिए क्रोचे का कथन 'संपूर्ण इतिहास समसामयिक होता है' यथार्थ प्रतीत होता है।

इतिहास की समसामयिकता को अन्य विद्वानों ने भी मान्यता प्रदान की है। रेनियर के अनुसार ''संपूर्ण अतीत मेरा अतीत है और मैं अपने व्यक्तिगत संतोष के लिए स्मरण करता हूँ।' इतिहासकार अतीत का अध्ययन समसामयिक सामाजिक उपयोगिता के लिए करता है। डेवी ने भी इसे स्वीकार करते हुए कहा है कि ''अतीत के प्रति निष्ठा न तो उसके लिए और न तो अतीत के लिए, बल्कि सुरक्षित तथा सुसंपन्न वर्तमान के लिए करते हैं कि वह सुखद भविष्य का निर्माण करेगा।' अतः यह स्पष्ट है कि अतीत का अध्ययन अतीत के लिए नहीं, अपितु सुरक्षित वर्तमान तथा सुखद भविष्य के लिए करते हैं। अतीत उस क्षण वर्तमान हो जाता है जब हम वर्तमान की आवश्यकताओं के अनुरूप उसका पुनर्विस्तरण करते हैं। ओकशाट ने भी कहा है कि व्यावहारिक अतीत की आधारशिला पर ही वर्तमान का निर्माण हुआ है जो भविष्य को प्रभावित करेगा। यह यथार्थ है कि वर्तमान का निर्माण अतीत की ही आधारशिला पर हुआ है। प्रो. वाल्श के अनुसार, इतिहास अतीत के अंतराल में मानव जाति का अध्ययन होता है। वर्तमान

की रुचि ही इतिहासकार को कल के अंतराल में निहित तथ्यों को प्रकाश में लाने के लिए प्रेरित करती है। मैंडेलबाम ने भी अतीत में वर्तमान रुचि को प्रधानता दी है। अतीत का अध्ययन अतीत के लिए नहीं, अपितु वर्तमान समाज की उपादेयता के लिए किया जाता है। प्रो. गालब्रेथ का मत है कि अतीतकालिक घटनाओं के प्रस्तुतीकरण में इतिहासकार वर्तमान आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। अतः इन सभी विद्वानों ने इतिहास को समसामयिक इतिहास माना है।

1.1.5.7 परिभाषा क्र. 7 - इतिहास भूत एवं वर्तमान का मध्यस्थ है

जी. आर. एल्टन के अनुसार, इतिहासकार जिसे लिखता है, वही इतिहास है। इतिहासकार के इतिहास की सामग्री अतीतकालिक ऐतिहासिक तथ्य होते हैं तथा इतिहासकार वर्तमान का प्रतिनिधित्व करता है। सभी ऐतिहासिक तथ्य अपने युग के प्रतिमानों द्वारा प्रभावित इतिहासकार का व्याख्यात्मक विवरण होता है। चयन तथा व्याख्या की अन्तर्प्रक्रिया का स्वरूप अतीत तथा वर्तमान है। यदि तथ्य अतीत का प्रतिनिधित्व करता है तो इतिहासकार वर्तमान का। ई. एच. कार ने उचित ही कहा है, ''वस्तुतः इतिहास, इतिहासकार तथा तथ्यों के बीच अंतर्क्रिया की अविच्छिन्न प्रक्रिया तथा वर्तमान और अतीत के बीच अनवरत परिसंवाद है।'' इस प्रकार इतिहास को अतीत तथा वर्तमान के बीच अनवरत परिसंवाद कहा गया है। यह एकाकी व्यक्तियों के बीच संवाद नहीं अपितु अतीतकालिक तथा वर्तमानकालिक समाज के बीच संवाद है।

वास्तविकता यह है कि इतिहास में अतीत, वर्तमान तथा भविष्य का समानरूपेण महत्व होता है। वर्तमान में इतिहासकार समसामयिक समाज को अतीत का अन्वेषण अपने पूर्वजों की उपलब्धियों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रेरित तथा प्रोत्साहित करता है कि उसमें समसामयिक के हित में कुछ वृद्धि कर सके। वह यहीं पर गौरवपूर्ण अतीत का अंत न करके भावी पीढ़ी के सुखद तथा सुसम्पन्न भविष्य की कल्पना करके अतीत की परंपराओं को भविष्य की गोद में प्रक्षेपित करता है। एल्टन तथा रांके ने इतिहास में भविष्य को सर्वाधिक महत्व दिया है। ओकशाट ने तो स्पष्ट कहा है कि अतीत की आधारशिला पर वर्तमान का आविर्भाव हुआ है, जो मनुष्य के भविष्य का निर्णायक होगा। डेवी के अनुसार अतीत में रुचि, वर्तमान की सुरक्षा तथा सुखद भविष्य के निर्माण के लिए किया जाता है।

मनुष्य चिंतनशील प्राणी है। मनुष्य जो कुछ सोचता या करता है, उसके पीछे भावी पीढ़ी की सुखद भविष्य की कल्पना सन्निहित रहती है। भारतीय मनीषियों ने वेदों, महाकाव्यों तथा इतिहास की रचना समसामयिक सामाजिक सुखों तथा स्वांतः सुखाय के लिए नहीं अपितु अतीत की गौरवपूर्ण परंपराओं को भावी पीढ़ी के सुखद भविष्य के लिए किया है। भारतीय इतिहास में महाराणा प्रताप, शिवाजी, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, भगत सिंह, चन्द्रशेखर आजाद ने अपने जीवन का बलिदान, स्वांतः सुखाय के लिए नहीं बल्कि भावी पीढ़ी की स्वतंत्रता के लिए किया था। महात्मा गांधी, लाला लाजपत राय, गोपालकृष्ण गोखले, सरदार वल्लभभाई पटेल तथा जवाहरलाल नेहरू ने स्वतंत्रता संग्राम के समय जेल की यातनाओं को भावी पीढ़ी के सुखद भविष्य तथा भारत की स्वतंत्रता के लिए सहन किया था।

अतः इतिहास निरंतर गतिशील कालचक्र - अतीत तथा वर्तमान को संपृक्त करने वाला एक सेतु है। इतिहासकार इस सेतु पर आसीन होकर समसामयिक समाज को अतीत का अवलोकन कराता है, जो वर्तमान के लिए रुचिकर तथा उपयोगी हो। इतिहासकार इस सेतु पर निरंतर चक्रीय प्रकाश स्तंभ होता है। उसका पुनीत कर्त्तव्य अतीत के उद्धरणों द्वारा वर्तमान को प्रशिक्षित करना एवं सुखद भविष्य का मार्गदर्शन करना होता है। अतः इतिहास अतीत तथा वर्तमान के बीच संपर्क मार्ग पर एक सेतु है जो

अतीत, वर्तमान तथा भविष्य के बीच अवरोध को दूर करके भावी पीढ़ी के लिए निष्कंटक मार्ग का दिशा निर्देशन करता है।

1.1.5.8 निष्कर्ष

अंततः यह कहा जा सकता है कि इतिहास मानव समाज की प्रगति का एक क्रमबद्ध अध्ययन है और उसकी प्रगति में सहायक भी है। यद्यपि यह भी इतिहास की उचित परिभाषा नहीं होगी। इतिहास क्योंकि सभ्यता के विकास और विनाश, दोनों का ही विवरण है, अतएव यह कहना कोई अर्थ नहीं रखता कि इतिहासकार को निर्धन बनाने वाला शास्त्र ही इतिहास है। उसे केवल संस्कृति से संबद्ध करना भी उचित नहीं, जैसा कि स्पेंगलर ने लिखा है - 'जीवन अपनी आंतरिक प्रवृत्ति और मौलिक प्रेरणा से विकास और निर्माण की जिस प्रक्रिया में गतिमान् है उसी का नाम 'इतिहास' है। इतिहास में केवल गति, नियति और प्रक्रिया ही पा सकते हैं। उनके अनुसार इतिहास अक्षुण्ण क्रमबद्ध प्रक्रिया नहीं है। इतिहास की प्रवृत्ति रेखात्मक नहीं अपितु वृत्तात्मक होती है। इतिहास पूरे विश्व का होता है और पूरे विश्व की संस्कृतियों से संबद्ध होता है। इतिहास संस्कृतियों की जीवन्लीला है जिसके नियम निश्चित एवं अपरिवर्तनीय हैं। संस्कृतियों की जीवन लीला से ही इतिहास की प्रक्रिया चलती है। संस्कृति जब ढलने लगती है तो सभ्यता की अवस्था में पहुँच कर सार्वजनिक 'ऐतिहासिक' (हिस्ट्रीलेस) मानव में विलीन हो जाती है। स्पेंगलर इतिहास की पुनरावृत्ति में विश्वास करते हैं। वह इतिहास में कबूतरी सुराख विधि का प्रयोग करने के पक्ष में रहे और गोंद तथा कैंची शैली से असंतुष्ट रहे। स्पेंगलर ने इतिहास की गति-प्रधान प्रक्रिया और विश्व की परिवर्तनशील चर्या के विषय में उत्तम विचार प्रस्तुत किए हैं तथा इतिहास में आंतरिक स्वरूप का अनावरण किया है, परंतु उनके ये विचार भी इतिहास को ठीक से परिभाषित नहीं कर सके। इतिहास केवल राजनीतिक घटनाओं का क्रमानुसार अध्ययन नहीं है, वह तो उसके अध्ययन में केवल सुविधा प्रदान करता है। वास्तव में इतिहास मनुष्य के संगठित सामाजिक समूहों का - चाहे वे कितने भी प्रगतिशील या पिछड़े हुए हों - उनके आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आदि जीवन के सभी पहलुओं का अध्ययन हैं। अतएव यही स्वीकार कर लेना उचित होगा कि इतिहास की उपयुक्त परिभाषा वही है जो हमें यह बताती है कि इतिहास मनुष्य-समाज का, उसके जीवन के सभी क्षेत्रों में विस्तृत अध्ययन है।

1.1.6 सारांश

इतिहास शब्द की उत्पत्ति इति+ह+आस शब्दों से होती है। इति+ह+आस अर्थात् इस प्रकार हुआ था। स्पष्ट है कि भूतकाल में ऐसा हुआ था। अतः भूतकाल का अध्ययन ही इतिहास है।

विश्व में अर्थहीन कुछ भी नहीं होता, यदि ऐसा मान लिया जाए तो इतिहास का भी अर्थ होता है - यह स्वीकार्य होना चाहिए, किंतु कार्ल आर. पापर का कथन है कि इतिहास का कोई लक्ष्य नहीं होता, इसलिए उसका कोई अर्थ नहीं है। काल्हर इसका विरोध करते हुए कहते हैं कि इतिहास अर्थहीन नहीं है। गार्डनर भी इसका समर्थन करते हुए लिखते हैं कि इतिहासकार अतीत के तथ्यों पर घटनाओं का एक परिकल्पनात्मक चित्र प्रस्तुत करता है जिसमें वर्णित घटनाएँ अर्थपूर्ण होती हैं - इसी को इतिहास का अर्थ कहते हैं। विद्वानों ने जहाँ इसे अर्थपूर्ण बतलाया है वहाँ अनेक उदाहरण भी दिए हैं, किंतु जहाँ अर्थहीन बतलाया है वहाँ संतोषजनक तर्क प्रस्तुत नहीं कर पाए। अतएव निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि इतिहास वास्तव में अर्थहीन नहीं है।

विभिन्न विद्वानों ने इतिहास को जिस प्रकार से अलग-अलग अर्थों में लिया है उसी प्रकार उसकी परिभाषाएँ भी भिन्न-भिन्न प्रकार से दी हैं। कुछ लोगों ने इतिहास को एक कहानी, एक ज्ञान, राजनीतिशास्त्र, सामाजिक विज्ञान, विशुद्ध विज्ञान, चिंतन विद्या, अतीत-वर्तमान का संलाप एवं भूत-भविष्य इत्यादि कहा है तो कुछ ने सभ्यता, संस्कृति, सत्यान्वेषण, उत्पादन, प्रगति आदि से संबोधन करके परिभाषित करने का प्रयास किया है। विद्वानों ने इतिहास को जिन-जिन अर्थों में देखा है, उसी के अनुरूप इतिहास को परिभाषित करने का प्रयास किया है। यही कारण है कि इतिहास की अनंत परिभाषाएँ हो चुकी हैं, पर अभी तक इतिहास की कोई सर्वमान्य परिभाषा निश्चित नहीं की जा सकी है। प्रमुख परिभाषाएं निम्नलिखित हैं -

परिभाषा क्र. 1 - इतिहास एक कहानी है।	जी. एम. ट्रेवेलियन
परिभाषा क्र. 2 - इतिहास एक सामाजिक विज्ञान है।	ए. एल. राउज
परिभाषा क्र. 3 - इतिहास एक ज्ञान है।	चार्ल्स फर्थ
परिभाषा क्र. 4 - संपूर्ण इतिहास केवल विचारों का इतिहास है।	कॉलिंगवुड
परिभाषा क्र. 5 - इतिहास भूतकाल के अनुभव का वर्णन है।	रेनियर
परिभाषा क्र. 6 - संपूर्णइतिहास समसामयिक इतिहास है।	क्रोचे
परिभाषा क्र. 7 - इतिहास भूत एवं वर्तमान का मध्यस्थ है।	ई. एच. कार

1.1.7 बोध प्रश्न

1.1.7.1 लघुउत्तरीय प्रश्न

1. इतिहास की उत्पत्ति किन शब्दों से हुई है?
2. इतिहास से क्या समझते हैं?
3. इतिहास क्या है?
4. इतिहास के विषय में गार्डनर का मत बताइए?
5. इतिहास के संबंध में कार्ल आर पापर का क्या मत है?
6. जी. एम. ट्रेवेलियन के अनुसार इतिहास क्या है?
7. इतिहास का जनक किसे माना जाता है?
8. रेनियर ने इतिहास को किस रूप में परिभाषित किया है?
9. हेनरी पिरेन ने इतिहास के विषय में क्या कहा है?
10. इतिहास लेखन से क्या तात्पर्य है?

1.1.7.2 दीर्घउत्तरीय प्रश्न

1. इतिहास एक कहानी है। इस कथन की विवेचना कीजिए?
2. इतिहास एक सामाजिक विज्ञान है। समझाइए?
3. इतिहास एक ज्ञान है। इस कथन से आप क्या समझते हैं?
4. संपूर्णइतिहास केवल विचारों का इतिहास है। इस कथन की विस्तृत विवेचना कीजिए?
5. इतिहास भूतकाल के अनुभव का वर्णन है। इस कथन की व्याख्या कीजिए?
6. संपूर्ण इतिहास समसामयिक इतिहास है। इस कथन को विस्तार से समझाइए?
7. इतिहास भूत एवं भविष्य का मध्यस्थ है। इस कथन की विवेचना कीजिए?

1.1.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शेख अली बी. : हिस्ट्री : इट्स थिओरी एंड मेथड, ट्रिनिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1978
2. शर्मा तेजराम : हिस्टोरिओग्राफी ए हिस्ट्री ऑफ हिस्टोरिकल राइटिंग, नई दिल्ली, 2005
3. कुप्पुरम जी. एवं कुमुदमनी के. : मेथड्स ऑफ हिस्टोरिकल रिसर्च, नई दिल्ली, 2002
4. मनिक्कम वी. : ऑन हिस्ट्री एंड हिस्टोरिओग्राफी, मदुरई, 2003
5. श्रीवास्तव बी. के. : इतिहास लेखन : अवधारणा, विधायें एवं साधन, आगरा, 2008
6. श्रीधरन ई. : इतिहास-लेख, ओरियंटल ब्लैकस्वॉन नई दिल्ली, 2011
7. कोठेकर शांता : इतिहास तंत्र एवं विज्ञान, नागपुर, 2015
8. पान्डे जी. सी. (संपादित) : इतिहास स्वरूप एवं सिद्धांत, जयपुर, 1973
9. राधेशरण : इतिहास और इतिहास लेखन, भोपाल, 2010
10. चौबे झारखंड : इतिहास दर्शन, वाराणसी, 2001
11. सिंह परमानंद : इतिहास दर्शन, दिल्ली, 1992
12. कार ई. एच. : इतिहास क्या है, दिल्ली, 1962
13. दुबे जे. एन. : इतिहास विज्ञान, वाराणसी, 1988

खंड-1 इतिहास व इतिहास लेखन
इकाई-2 इतिहास: स्वरूप एवं अध्ययन क्षेत्र

इकाई की रूपरेखा

1.2.1 उद्देश्य
1.2.2 प्रस्तावना
1.2.3 इतिहास का स्वरूप
1.2.3.1 इतिहास विज्ञान है या कला
1.2.3.2 इतिहास विज्ञान है
1.2.3.3 इतिहास कला है
1.2.3.4 इतिहास विज्ञान और कला का संगम है
1.2.4 इतिहास का अध्ययन क्षेत्र
1.2.5 इतिहास का वर्गीकरण
1.2.5.1 राजनीतिक इतिहास
1.2.5.2 सामाजिक इतिहास
1.2.5.3 आर्थिक इतिहास
1.2.5.4 सांस्कृतिक इतिहास
1.2.5.5 धार्मिक इतिहास
1.2.5.6 संवैधानिक इतिहास
1.2.5.7 क्षेत्रीय इतिहास
1.2.5.8 विश्व इतिहास
1.2.6 सारांश
1.2.6.1 इतिहास का स्वरूप
1.2.6.2 इतिहास का अध्ययन क्षेत्र
1.2.7 बोध प्रश्न
1.2.7.1 लघुउत्तरीय प्रश्न
1.2.7.2 दीर्घउत्तरीय प्रश्न
1.2.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1.2.1 उद्देश्य

इतिहास के स्वरूप के संबंध में विभिन्न विद्वानोंने अपने-अपने मत प्रतिपादित किए हैं। सामान्य रूप से इतिहास के स्वरूप के दो पक्ष हैं - मौलिक एवं तात्कालिक। विद्वानों का एक समूह इतिहास को कला मानता है, वहीं दूसरा समूह इतिहास को विज्ञान बताता है, कुछ विद्वान यह स्वीकार करते हैं कि इतिहास कला एवं विज्ञान का मिश्रण है। प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य विद्यार्थियों को इन तथ्यों से अवगत कराना है तथा विभिन्न विद्वानों के मत मतांतरों पर प्रकाश डालना है। जी. एम. ट्रेवेलियन का यह कथन उचित प्रतीत होता है कि ''ऐतिहासिक तथ्यों की खोज प्रणाली वैज्ञानिक होनी चाहिए किंतु पाठकों के सामने उसे पेश करने की विधि कला है''। शब्दों का लेखन कला साहित्य है।

इतिहास के अध्ययन के क्षेत्र में मानव के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं धार्मिक आदि सभी पक्ष सम्मिलित है। क्षेत्रगत दृष्टिकोण से क्षेत्रीय इतिहास एवं वैश्विक दृष्टिकोण से विश्व इतिहास भी इतिहास का ही क्षेत्र है। इस इकाई का उद्देश्य इतिहास के इन सभी क्षेत्रों पर प्रकाश डालना है। अतः इतिहास के इस विस्तृत क्षेत्र से विद्यार्थियों को परिचित कराना ही इस इकाई का उद्देश्य है।

1.2.2 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में इतिहास के स्वरूप एवं अध्ययन क्षेत्र पर विस्तार से प्रकाश डाला जाना प्रस्तावित है। इसके अंतर्गत (1) इतिहास का मौलिक स्वरूप (2) इतिहास का तात्कालिक स्वरूप (3) क्या इतिहास कला है (4) क्या इतिहास विज्ञान है (4) क्या इतिहास कला एवं विज्ञान का संगम है(5) इतिहास के अध्ययन क्षेत्र में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, संवैधानिक, साँस्कृतिक, धार्मिक, क्षेत्रीय एवं विश्व इतिहास आदि सभी पक्ष सम्मिलित हैं। इन सभी पक्षों पर इस इकाई में प्रकाश डाला जाना प्रस्तावित है। अंत में बोध प्रश्न एवं संदर्भ ग्रंथ सूची भी प्रस्तावित की गई है।

1.2.3 इतिहास का स्वरूप

भूतकालिक 3000 वर्षों के लंबे अंतराल में प्रख्यात इतिहासकारों और इतिहास के शोधकों द्वारा इतिहास का जो स्वरूप सामने आया है उससे कई भ्रम उत्पन्न हुए हैं। अतः इतिहास का निश्चित स्वरूप जान लेने की जिज्ञासा होना स्वाभाविक है। प्रत्येक विषय की उल्लेखनीय विशेषताएँ होती हैं, निश्चित स्वरूप होता है, निश्चित आयाम होते हैं एवं निश्चित स्वरूप के स्थायी लक्षण होते हैं और निश्चित कार्यप्रणाली होती है। इतिहास भी इसी तरह एक विषय है। अन्य विषयों से इतिहास की कुछ समानता और कुछ असमानता का आकलन करने के लिए उसके स्वरूप को समझना होगा।

इतिहास के स्वरूप के दो पक्ष हैं। प्रथम मूल अथवा स्थायी और द्वितीय समय के साथ परिवर्तनशील। इनमें से मूल अथवा स्थायी पक्ष इतिहास के आधारभूत स्वरूप को प्रकट करता है।

इतिहास से सामान्यतया तीन प्रश्नों के उत्तर प्राप्त होते हैं - क्या, कैसे और क्यों? अर्थात क्या हुआ? कैसे हुआ? और क्यों हुआ? अतः स्पष्ट है कि इतिहास पूर्वकालिक है और वर्तमान काल और भविष्य काल से इतिहास का सीधा संबंध नहीं है। इसी तरह ये प्रश्न मनुष्य के जीवन से जुड़े हैं, पूर्वकाल के मनुष्य का जीवन, इतिहास का विषय है और इसलिए इतिहास को मानवशास्त्र की एक शाखा माना जाता है। अतः इतिहास पूर्वकालीन मनुष्य के जीवन का वर्णन है और यही इतिहास का प्रथम पक्ष है।

इसी तरह मनुष्य के जीवन के लौकिक पक्ष का विचार इतिहास में आता है। मनुष्य के जीवन में घटने वाली घटनाएँ ही इतिहास का विषय होता है। पारलौकिकता के लिए इतिहास में स्थान नहीं है। काल और स्थान ही इतिहास के दो प्रमुख आयाम हैं और इनकी सीमाओं में ही इतिहास का कार्य चलता है। प्रकृति भी इतिहास का अंग नहीं है। मानव जीवन, इतिहास का केंद्र होने के कारण प्रकृति के वन्यजीवों, वनस्पतियों, नदियों, पर्वतों का मानव जीवन से संबंध मात्र ही इतिहास में सम्मिलित होता है।

इतिहास के स्वरूप से संबंधित अन्य महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि पूर्वकालीन मानव जीवन इतिहास का विषय होने पर भी प्रतिदिन के मानव जीवन की सभी बातों का वर्णन इतिहास में अपेक्षित नहीं है। मनुष्य के जीवन की महत्वपूर्ण एवं स्मरणीय घटनाएँ इतिहास का विषय होती हैं। इसी कारण यूनानी इतिहासकार थ्यूसि डाइड्स कहता है - 'History is a story of things worthy to be remembered.' (इतिहास स्मरणीय घटनाओं की रोचक कथा है।) सामान्य घटनाओं का विचार

इतिहासकार नहीं करता, क्योंकि उससे कोई विशेष लाभ नहीं होता और न ही उससे भविष्य के लिए कोई शिक्षा प्राप्त होती है। इसलिए कहा जाता है कि 'History is a narration of unique events.' (इतिहास अद्भुत घटनाओं का विवरण है।) इसका अर्थ यह कि इतिहासकार भूतकालिक घटनाओं में से चयन कर उसे महत्वपूर्ण लगने वाली घटनाओं को ही इतिहास में सम्मिलित करता है, अर्थात् घटनाओं का चयन ही इतिहास का स्वरूप है। इस तरह के चयन से इतिहासकार का दृष्टिकोण व्यक्त होता है एवं उससे इतिहास का स्वरूप तय होता है। किंतु बीसवीं सदी में सामाजिक इतिहास लेखन तथा संपूर्ण इतिहास की नई पद्धति प्रचलित होने लगी। अतः इस तरह का इतिहास मानव जीवन की सामान्य सी बातों का भी अध्ययन और वर्णन करने लगा।

'भूतकालिक जीवन की कहानी अर्थात् इतिहास' यह इतिहास की सामान्य एवं सरल परिभाषा है। किंतु इतिहास का स्वरूप केवल वर्णनात्मक अथवा निवेदनात्मक नहीं है। इतिहास अर्थपूर्ण हो इसीलिए वर्णित विषय के अभिप्राय खोजना इतिहासकार के लिए आवश्यक होता है। पूर्वकालीन घटनाओं का स्पष्टीकरण करना, उन पर भाष्य करना, उसका मर्म उजागर करना अच्छे इतिहास का लक्षण है। इसलिए ई. एच. कार ने कहा है कि 'घटनाएँ नहीं बोलतीं, इतिहासकार उन्हें बोलने लगाता है।' इसी अर्थ में डब्ल्यू. एच. वॉल्श ने इतिहास को 'पूर्वकालीन घटनाओं का अर्थपूर्ण निवेदन ' प्रतिपादित किया है (History is not just a plain record of past events, but a significant record) (इतिहास सिर्फ भूतकालिक घटनाओं का साधारण लेखा नहीं है बल्कि महत्वपूर्ण लेखा-जोखा है।)

सत्य का अवलोकन एवं निष्कर्ष ही इतिहास का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्वरूप है। भूतकाल में हुई वास्तविक घटनाएँ ही इतिहास का विषय होती हैं। उन घटनाओं के लिए सत्यता का ठोस आधार आवश्यक होता है। इतिहास में उन्हीं घटनाओं का स्थान होता है जो प्रमाणों के आधार पर प्रमाणित की जा सकें। किसी भी व्यक्ति से सुनी सुनाई बातों, काल्पनिक बातों अथवा मिथकों को इतिहास में स्थान नहीं है। इसीलिए ई. एच. कार ने कहा है- 'History consists of ascertainable facts' (इतिहास प्रमाणित तथ्यों का समावेश है।)। जिस ऐतिहासिक जानकारी के आधार पर लेखन करना हो उसकी सत्यता का परीक्षण करने के उपरांत प्राप्त सत्य को इतिहास लेखन में सम्मिलित किया जाता है अर्थात् सर्वप्रथम सत्य की खोज और तत्पश्चात् सत्य कथन ही इतिहास के स्वरूप की आत्मा होते हैं।

दो महत्वपूर्ण आयाम अर्थात् काल एवं स्थान, ये जिस तरह इतिहास का स्वरूप निश्चित करते हैं, उसी तरह निरंतरता तथा परिवर्तन इतिहास का स्वरूप निर्धारित करते हैं। भूतकालीन मानव जीवन इतिहास का वर्णित विषय होने से एवं निरंतरता तथा परिवर्तन मानव जीवन के महत्वपूर्ण पहलू होने से मानव जीवन का स्थायी एवं परिवर्तनशील स्वरूप उजागर करना ही इतिहास का स्वरूप है।

सत्यता की तरह ही वस्तुनिष्ठता भी इतिहास के स्वरूप का महत्वपूर्ण अंग है। ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन करते समय, उनका महत्व उजागर करते समय, अथवा तर्कपूर्ण कड़ियाँ स्पष्ट करते समय इतिहासकार को तटस्थता का दृष्टिकोण अपनाकर वीक्षक की भूमिका का निर्वाह करना होता है। भूतकालीन घटनाओं का सत्य एवं यथार्थ प्रस्तुत करने के लिए वस्तुनिष्ठता महत्वपूर्ण होती है। वस्तुनिष्ठता न होने पर सौ प्रतिशत सत्य उजागर नहीं हो सकेगा लेकिन इस तरह की सौ प्रतिशत वस्तुनिष्ठता इतिहास लेखन में संभव नहीं है क्योंकि इतिहास भूतकाल एवं वर्तमान काल के मध्य निरंतर चलने वाला संवाद है और इसलिए ई. एच. कार ने बीसवीं सदी में यह विचार प्रस्तुत किया कि इतिहास को स्पष्ट करते समय इतिहासकार का स्वयं का मत भी उसमें दिखाई देना अनिवार्य है। आर. जी. कॉलिंगवुड ने भी ई. एच. कार के विचार का समर्थन किया है।

मानव जीवन के भूतकाल के सत्य को खोजना, उस सत्य की सामग्री को वैज्ञानिक पद्धति से संकलित करना और प्राप्त जानकारी को तार्किक रूप से, कालगणना को ध्यान में रखकर व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करना इतिहास का एक अन्य स्वरूप है एवं उसे प्रभावी, परिणामजनक एवं व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करना भी इतिहास के स्वरूप का एक महत्वपूर्ण भाग है। इसी कारण'Approaches to History' नामक ग्रंथ में फाइन बर्ग कहते हैं कि ''भूतकाल की मृत जानकारी को नीरस तरीके से प्रस्तुत करना इतिहास लेखन की विशेषता नहीं होनी चाहिए, बल्कि उस जानकारी पर भाष्य कर उस ऐतिहासिक प्रसंग का वर्णन रोचक ढंग से कर घटना को जीवंत कर देना ही इतिहास का स्वरूप होना चाहिए।'' (The writing of history is not simply a question of communicating dead information in a suitably dead manner, but of interpreting and bringing to life historical situations) (इतिहास लेखन मात्र मृत जानकारी को बेजान तरीके से व्यक्त करना नहीं है बल्कि ऐतिहासिक परिस्थितियों को समझने और जीवंत बनाने का उत्तरदायित्व है।) अतः स्पष्टतः इसका अर्थ यह कि इतिहास का स्वरूप दो प्रकार का होता है - वैज्ञानिक एवं कलात्मक अर्थात् इतिहास विज्ञान भी है और कला भी।

इतिहास की मौलिक एवं भूतकालिक विशेषताओं की तरह ही उसकी कुछ तात्कालिक विशेषताएँ भी हैं। ऐतिहासिक जानकारी पर विचार करते समय एक ही घटना के भिन्न-भिन्न तात्पर्य, एक ही विषय का स्पष्टीकरण भिन्न-भिन्न तरीके से प्रस्तुत होते दिखाई देता है। इस तरह का विचार काल का अनुगामी, काल के अनुसार बदलने वाला होता है एवं इससे इतिहास का तात्कालिक स्वरूप प्रकट होता है।

इसी तरह इतिहास लेखन के लिए चुने गए विषय का स्वरूप भी काल के अनुसार बदलता दिखाई देता है। पहले केवल राजनीतिक घटनाओं तथा महान व्यक्तियों के कार्यों को ही इतिहास में स्थान मिलता था लेकिन वर्तमान में सर्वांगीण मानव जीवन ही इतिहास का स्वरूप बन गया है।

इतिहास में सत्य तथ्यों को खोजने के प्रयास एवं वैज्ञानिक ढंग से नीतिमूल्यों के आधार पर उनका मूल्यांकन इतिहास का तात्कालिक स्वरूप प्रदर्शित करता है। इतिहास के शोधक के लिए इतिहास के स्वरूप के पूर्वकालिक एवं तात्कालिक दोनों पक्षों को ध्यान में रखना इतिहास के समग्र प्रस्तुतीकरण हेतु अत्यंत आवश्यक हैं।

प्रमुख विद्वानों द्वारा इतिहास के स्वरूप को निम्नानुसार प्रस्तुत किया गया है।

हेगल ने इतिहास के स्वरूप को एक बुद्धिसंगत प्रक्रिया के रूप में किंतु प्रकृति से भिन्न स्वरूप में स्वीकार किया है और कहा है कि इतिहास का स्वरूप ऐसा होना चाहिए जिसमें प्रक्रिया रेखावत् चलती हो एवं आवृत्तियों में नवीनता भी पायी जाती हो।

हेगेल का उपरोक्त कथन सत्य प्रतीत नहीं होता क्योंकि उनके कथन की समीक्षा करने पर उसमें इतिहास के स्वरूप-विश्लेषणान्तर्गत यह कमी पायी जाती है कि उन्होंने बुद्धि और भावना, दोनों को एक-सी मानते हुए यह कहने की भूल की है कि सभी कर्म बुद्धि पर आश्रित होते हैं, तथापि यह विशेष प्रशंसनीय भी है कि इतिहास की प्रकृति को उन्होंने 'विश्व इतिहास' में फलीभूत होते देखकर इतिहास के स्वरूप को व्यापक बनाने का प्रयास किया है।

जॉन डिवी के अनुसार इतिहास का स्वरूप निरंतर परिवर्तनशील और सामाजिक आवश्यकताओं के अनुसार सदैव विकसित होता रहा है। विकसित होने पर जब वह विस्तृत हो जाता है

तब अध्ययन की सुविधा के लिए उसके स्वरूप को छोटे-छोटे भागों में बाँटकर ही अध्ययन करने में सुगमता रहती है। इस आशय से वह इतिहास के स्वरूप-निर्माण में इतिहासकार की भूमिका को महत्वपूर्ण मानते हैं। किंतु, उनका यह कथन उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि अनेक विद्वानों के अनुसार इतिहास में पुनरावृत्ति नहीं होती है।

कार्ल मार्क्स के विषय में प्रसिद्ध है कि इतिहास के स्वरूप-विश्लेषण में वह हेगल का एक अर्थ में अनुयायी था तो दूसरे अर्थ में विरोधी था। अनुयायी इसलि ए कि उसने अपने इतिहास-दर्शन में हेगेल की द्वन्दात्मक पद्धति को स्वीकार किया था और विरोधी इस अर्थ में कि उसने विज्ञानवाद को भौतिकवाद से स्थापित किया था। इस तरह वह दार्शनिक व्याख्याओं के स्थान पर ऐतिहासिक व्याख्या करना चाहता था। कार्ल मार्क्स के अनुसार इतिहास का स्वरूप ऐसा होना चाहिए जो सतत् विकसित व परिवर्तित होता रहे। उनके इतिहास का स्वरूप आधुनिक समस्याग्रस्त किंतु प्रयत्नशील कर्मठ श्रमिकों सेसंबद्ध है।

स्पेंगलर के अनुसार इतिहास का स्वरूप प्रकृति-विषयक और इतिहास-विषयक, दोनों है। वह इसका निर्धारण सभ्यता और संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में करते हैं। टायन्बी भी चुनौती और प्रतिक्रिया के आधार पर सभ्यता और संस्कृति को ही इतिहास के स्वरूप से संबद्ध करते हैं।

कॉलिंगवुड के अनुसार इतिहास का स्वरूप ऐसा होना चाहिए कि उसमें सुनिश्चित लक्ष्य एवं दिशा वाले बौद्धिक चिंतन द्वारा प्रस्तुत विचारों को समाहित किया गया हो, किंतु प्रत्येक विचार को नहीं। वह केवल विज्ञान अथवा कला नहीं, अपितु दोनों है। उनके इतिहास के वैज्ञानिक स्वरूप की सबसे बड़ी विशेषता वर्तमान के परिवेश में अतीत की व्याख्या है, अतः वे इतिहास को कैंची और गोंद का स्वरूप प्रदान करके उसे विज्ञान की श्रेणी में रखे जाने को नहीं मानते और उसे विज्ञान माने जाने को एक 'भ्रम' की संज्ञा देते हैं। कॉलिंगवुड के अनुसार इतिहास केवल विज्ञान ही नहीं अपितु एक कला भी है -

प्रो. कार ने इतिहास के स्वरूप को अतीत की घटनाओं एवं कारण और परिणाम के पारस्परिक संबंधों को क्रम से प्रस्तुत किए जाने से संबद्ध किया है।

डॉ. काशीप्रसाद जायसवाल के अनुसार इतिहास का स्वरूप उसे यथावत् स्वीकार कर लेने से संबद्ध न होकर घटनाओं के कारणों की वैज्ञानिक विधि से खोज से संबंधित होता है।

डॉ. रमेशचन्द्र मजूमदार ने इतिहास के स्वरूप को 'सत्य के अन्वेषण' से संबद्ध किया है।

डॉ. डी. डी. कौसाम्बी के अनुसार इतिहास का स्वरूप उत्पादन के संसाधनों एवं संबंधों में उत्तरोत्तर परिवर्तनों के तिथिक्रमानुसार प्रस्तुतिकरण से संबद्ध होता है।

आचार्य नरेन्द्रदेव की दृष्टि में इतिहास का स्वरूप सत्याचरण एवं सुसंस्कारयुक्त मानव समाज से संबद्ध है। वह इतिहास के राष्ट्रीय समाजवादी स्वरूप को विशेष आदर देते थे और लोकतंत्र में संघर्ष से भी अनुराग रखते थे।

पं. जवाहरलाल नेहरू ने इतिहास के स्वरूप को भारत एक खोज एवं 'विश्व इतिहास की एक झलक' में देखने का यथासंभव प्रयास किया था।

इसी प्रकार से विभिन्न विद्वानों ने इतिहास के स्वरूप को अपने-अपने विचारानुसार वर्णित किया है। किंतु, सभी वर्णन हमें इतिहास को मुख्यतया दो स्वरूपों में सामने लाते हैं। प्रथम इतिहास का वैज्ञानिक स्वरूप एवं द्वितीय इतिहास का कलात्मक स्वरूप।

1.2.3.1 इतिहास विज्ञान है या कला

इतिहास विज्ञान है या कला ? यह विवाद का विषय बन गया है। वास्तव में इतिहास विषयक वैज्ञानिक अवधारणा 19वीं शताब्दी की देन है। ई. एच. कार कहते हैं कि ''18वीं शताब्दी के अंत में

विज्ञान की उपलब्धियों ने विश्व के विषय में और स्वयं व्यक्ति की भौतिक विशेषताओं के विषय में उसके ज्ञान को बढ़ाने में एक बड़ी भूमिका अदा की थी। यह प्रश्न उठा कि क्या विज्ञान, समाज के विषय में व्यक्ति का ज्ञान नहीं बढ़ा सकता। 19वीं शताब्दी में धीरे-धीरे सामाजिक विज्ञानों और उनमें इतिहास को शामिल करने की धारणा विकसित हुई तभी से मानवीय व्यवहार का अध्ययन करने के लिए वह पद्धति अपनाई जाने लगी जिसे विज्ञान प्राकृतिक दुनिया का अध्ययन करने के लिए करता है।

सर्वविदित है कि विज्ञान शब्द, अंग्रेजी शब्द साइंस (Science) का हिंदी अनुवाद है। साइंस शब्द लैटिन भाषा साइन्टिया से बना है, जिसका अर्थ बोधगम्य नियमों से है। हिंदी शब्द विज्ञान = वि+ज्ञान से बना है। इसमें 'वि' का अर्थ हैं विशेष तथा 'ज्ञान' का अर्थ है जानकारी। अतः विज्ञान का अर्थ विशेष जानकारी माना जा सकता है। इसके अंतर्गत क्रमबद्ध ज्ञान और कला का सम्मिश्रण भी किया गया है। कार्ल पियर्सन का मत है कि ज्ञान के तथ्यों का वर्गीकरण, उनके क्रमों की स्वीकारोक्ति एवं उसके सापेक्षिक महत्व को जानना ही विज्ञान (Science) है।

विज्ञान के अर्थ एवं उसकी विशेषताओं को देखते हुए इतिहास को विज्ञान की श्रेणी में लाना उचित नहीं प्रतीत होता। इतिहास के मात्र कुछ वैज्ञानिक तथ्यों से उसे विज्ञान नहीं माना जा सकता। विज्ञान में कुछ सामान्य नियम होते हैं, जिनमें विश्वास किया जाता है। किंतु इतिहास में न ही ऐसे सामान्य नियम होते हैं और न इतिहास का लेखक किसी नियम में विश्वास करता है। वैज्ञानिक विज्ञान के सामान्य नियमों में विश्वास किए बगैर एक क्षण भी कार्य नहीं कर सकता, जबकि इतिहासकार सामान्य नियमों एवं सिद्धांतों में आस्था नहीं रखता। अनेक भिन्नताओं के होते हुए भी कुछ विद्वानों ने इतिहास को विज्ञान की श्रेणी में रखने का प्रयास किया है।

1.2.3.2 इतिहास विज्ञान है

विज्ञान का अर्थ है किसी विषय को सरल एवं बोधगम्य बनाना। इस प्रकार इतिहास भी विज्ञान की पंक्ति में आकर खड़ा हो गया। इसी क्रम में वॉल्श ने विज्ञान की यह परिभाषा दी कि किसी वस्तु के क्रमबद्ध ज्ञान को विज्ञान कहते हैं।

19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इतिहास को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करने का एक आंदोलन चला। उस समय और इंग्लैंड में इस आंदोलन का नेतृत्व जे बी. ब्यूरी ने किया। इसी क्रम में ब्यूरी ने अपना उपर्युक्त मत व्यक्त किया कि 'इतिहास विज्ञान है न कम न अधिक।' समसामयिक इतिहास लेखन पर भी इसका प्रभाव पड़ा। वास्तव में वैज्ञानिक इतिहासकारों के प्रयास के कारण 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इतिहास का स्वरूप परिवर्तित हो गया। इन इतिहासकारों ने इतिहास के अध्ययन में कुछ वैज्ञानिक नियमों का प्रतिपादन भी किया। ब्यूरी ने तो इतिहास का वैज्ञानिक ढंग से तथ्यान्वेषण व सूक्ष्म निरीक्षण की पद्धति को इतिहास अध्ययन का अंग माना। रांके ने इतिहास अध्ययन की वैज्ञानिक अनिवार्यता पर बल दिया। अतः इन विद्वानों ने इतिहास को विज्ञान निरूपित किया है।

1.2.3.3 इतिहास कला है

इतिहासकार जहाँ सत्य का अनुशीलन करता है, वहीं वह उसकी प्रस्तुति में कला का भी समावेश होता है। कला की पाँच विधाएँ हैं, जिनमें एक प्रमुख विधा साहित्य है। सत्य के अन्वेषण में इतिहास मात्र ठूँठ कंकाल रह जाता है। अतीत की संरचना निर्जीव हो जाती है। ऐसी ही स्थिति में इतिहास, साहित्यपरक होकर बोल उठता है।

इतिहास को वैज्ञानिक रूप देने वाले प्रो. जे. वी. ब्यूरी का कथन है कि '' जब तक इतिहास को कला माना जाएगा तब तक इसमें सत्यता तथा यथार्थता का प्रतिष्ठापन कठिन होगा और मैं स्मरण दिलाना चाहूँगा कि इतिहास साहित्य की शाखा नहीं है।'' ब्यूरी ने इतिहास के साहित्यपरक प्रस्तुति का विरोध इसलिए किया, क्योंकि यह उनके वैज्ञानिक प्रस्तुति में बाधक थी। उन्होंने यह भी कहा कि अब समय आ गया है कि इतिहास को साहित्यपरक शैली से वंचित किया जाए और व्यक्तिगत भावनाओं के प्रभाव से मुक्त किया जाए।

स्पष्ट है कि इतिहास को पूर्णतया विज्ञान नहीं माना जा सकता। इस विषय में रेनियर ने लिखा है कि यद्यपि इतिहास विज्ञान नहीं है, फिर भी एक अनुशासन है और विषयक वस्तु के प्रति इसकी पहुँच विज्ञान की तरह है, फिर भी अनेक इतिहासकारों की अवधारणा है कि इतिहास वैज्ञानिक विधियों से परिष्कृत होने के बावजूद कला अथवा साहित्य की शाखा है। क्रोचे के अनुसार कला न तो आनंद के आदान-प्रदान का साधन है और न प्राकृतिक सौंदर्य का चित्रण बल्कि यह व्यक्तिगत ज्ञान की दृष्टि की अभिव्यक्ति है। इस प्रकार कला भावनाओं की प्रक्रिया नहीं अपितु ज्ञान की अभिव्यक्ति है। क्रोचे का कथन है कि इतिहासकार का यह दायित्व है कि वह तथ्यों का कलात्मक प्रस्तुतीकरण करें। कॉलिगवुड कहते हैं कि एक वैज्ञानिक, प्राकृतिक तथ्यों का मात्र अवलोकन करता है, पर एक इतिहासकार कलाकार के रूप में उनका अनुभव करता है। इतिहासकार और कलाकार में जब सामंजस्य की स्थिति बनती है तब ऐतिहासिक तथ्य कलापरक ढंग से प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

जी. आर. एल्टन का विचार है कि इतिहास कला है। उनकी दृष्टि में इतिहास को वैज्ञानिक विधियों से परिष्कृत करने के बावजूद उसके प्रस्तुतीकरण एवं व्याख्या में कलात्मक शैली की नितांत आवश्यकता होती है। ऐतिहासिक तथ्य प्रायः नीरस एवं निर्जीव होते हैं। इतिहास के भग्नावशेष तथा पुरावशेष भी नीरस ही होते हैं, पर इतिहासकार अपने कलापरक प्रस्तुती से उसे सरस बना देता है। निर्जीव ऐतिहासिक तथ्यों को इतिहासकार कल्पना से जोड़ता है, जिससे वे सजीव हो बोलने लगते है अपना इतिहास बयाँ करने लगते हैं। इतिहास की संरचना में कल्पना का अपना महत्व है। कॉलिंगवुड उसके इस परिकल्पनात्मक प्रस्तुतीकरण को ऐतिहासिक कल्पना कहते हैं।

1.2.3.4 इतिहास विज्ञान और कला का संगम है

इतिहास की प्रस्तुति में इतिहासकार की कलात्मकता बड़ा महत्व रखती है। कल्पना भी इस प्रस्तुति में उसकी सहायता करती है। हम इतिहास को तथ्य तथा कल्पना का एक सुंदर समन्वय कह सकते हैं। वास्तव में इतिहासकार कल्पना की उड़ान से ही अतीत को टटोलता है, तथ्यों को संजोता है और यथार्थ का अंकन करते समय वह विवरण को कलात्मक ढंग से उसे सरस बनाता है। इस प्रकार इतिहास कला की कलम से लिखा जाता है। फलतः इतिहास में कला का तत्व होता है किंतु इतिहासकार की कल्पना, कवि की कल्पना से भिन्न होती है। कवि की कल्पना जहाँ कोरी होती है, वहाँ इतिहासकार की कल्पना जमीन से जुड़ी होती है।

इस तरह इतिहास को कला एवं विज्ञान का सम्मिश्रण कहा जा सकता है। इतिहास के वैज्ञानिक तथ्य कला के सरस कलम से प्रस्तुत होते हैं, जिससे उसमें सजीवता आ जाती है। इतिहास की वैज्ञानिकता के प्रति आस्थावान जे. वी. ब्यूरी ने भी यह स्वीकार किया है कि इतिहास विज्ञान तथा कला का सुंदर सम्मिश्रण है। इतिहास की नीरसता को कला के द्वारा ही सरस बनाया जा सकता है। यद्यपि इतिहास का स्वरूप वैज्ञानिक हो पर उसकी प्रस्तुति कलापरक ही होनी चाहिए। वैज्ञानिक इतिहास जब कलापरक एवं सरस सीमा में होगा तभी वह आगामी पीढ़ी के लिए उपयोगी होगा।

1.2.4 इतिहास का अध्ययन क्षेत्र

आदिकाल से आधुनिक युग तक इतिहास-क्षेत्र का स्वरूप निरंतर परिवर्तनशील रहा है। समय के साथ-साथ इतिहासकार की दृष्टि में जिस तरह परिवर्तन आता गया उसी तरह इतिहास विषय के अध्ययन संबंधी कल्पनाओं में भी परिवर्तन आया। फलस्वरूप इतिहास लेखन के विषय भी बदलते गए। इस दृष्टि से वॉल्श का यह कथन उचित है कि "History as we know it today as a developed branch of learning-- is a comparatively new thing. It scarcerly existed before the 19th century." अर्थात् इतिहास जिसे हम आज ज्ञान की एक विकसित विधा के रूप में जानते हैं, वास्तव में अन्य विषयों की तुलना में एक नवीन विषय है। 19वीं शताब्दी से पहले तो इसका अस्तित्व अज्ञात ही था। इतिहास के विकसित स्वरूप का एकमात्र आधार विभिन्न युगों के सामाजिक मूल्य तथा उनकी सामाजिक आवश्यकताएँ रही हैं। प्रारंभ में इतिहास चिंतन का उद्गम अतृप्त ज्ञानतृष्णा को तृप्त करने के उद्देश्य से हुआ था। इस उद्देश्य से प्रेरित होकर प्राचीन इतिहासकारों ने इतिहास का अध्ययन किया।

प्रारंभ में यूनानियों ने इतिहास लेखन के लिए प्रमुख रूप से राजनीतिक घटनाओं आंदोलनों एवं युद्धों के विषयों का चयन किया क्योंकि ये घटनाएँ ध्यानाकर्षक एवं राजनीतिक थीं। इसके अलावा उन दिनों में यातायात के साधन तथा संचार माध्यम अत्यंत अल्प होने के कारण समकालीन अथवा निकट भूतकाल की घटनाओं को उन्होंने अपने वर्णन का विषय बनाया। राजनीतिक घटनाओं में लोगों की रुचि होती थी और उस विषय में जानकारी सरलता से प्राप्त भी हो जाती थी। फलस्वरूप, हेरोडोट्स, थ्यूसिडाइड्स एवं रोमन इतिहास लेखकों द्वारा निकट भूतकाल की राजनीतिक घटनाओं का वर्णन किया गया है।

सभी इतिहासकारों ने प्रत्येक युग में इतिहास-लेखन की आवश्यकता को स्वीकार किया है। मानव समाज में विकास की प्रक्रिया निरंतर रही है। इस विकास प्रक्रिया के साथ-साथ सामाजिक आवश्यकताएँ भी विकसित होती गईं इतिहास-क्षेत्र के अंतर्गत जब इतिहासकार किसी घटना का क्रमबद्ध विवरण प्रस्तुत करता है तो उसके समक्ष तीन प्रश्न होते हैं - घटना क्या है, घटना कैसे घटी तथा घटना क्यों घटी। इतिहासकार इसी का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इतिहासकार के दो प्रमुख कार्य हैं - तथ्यों का संकलन तथा उनका विश्लेषण। एक का स्वरूप विषयवादी एवं मानवतावादी है तथा दूसरे का वैज्ञानिक एवं वस्तुनिष्ठ है। ट्रेवेलियन के अनुसार इतिहासकार अपने इतिहास के प्रस्तुतीकरण में तीन प्रमुख उपादानों का प्रयोग करता है - वैज्ञानिक, परिकल्पनात्मक तथा साहित्यिक यद्यपि मानवीय कार्यों तथा उपलब्धियों पर प्रकृति का अध्ययन इतिहासकार के क्षेत्र से बाहर है। इतिहास-क्षेत्र के अंतर्गत मनुष्य के एक साधारण कार्य से लेकर उसकी विविध उपलब्धियों का वर्णन होता है।

तीसरी सदी से पंद्रहवीं सदी तक का काल ईसाई जगत के धर्मनिष्ठ लेखन का काल था। इस अवधि में राजनीतिक विषय पूरी तरह पिछड़ गए और इस विश्व में ईश्वरीय कार्य, उसकी लीलाएँ और संतों का वर्चस्व, उनका जीवनकार्य एवं चमत्कार इतिहास के विषय बन गए। मानव कर्तव्य को उसमें स्थान नहीं मिला। अरबों के इतिहास लेखन के विषय भी लगभग यही रहे थे।

16वीं शताब्दी में यूरोप में हुए प्राचीन विद्या के पुर्नजीवन के बाद जो वैचारिक क्रांति हुई, उससे मानव जीवन की ओर देखने की नई मानववादी दृष्टि विकसित हुई। मानव के कर्तव्य के विषय में जिज्ञासा निर्मित हुई। अतः ईश्वर एवं उसके विषय में अध्ययन एक ओर रह गए और राजा-रजवाड़ों, सरदारों, अमीर-उमरावों का जीवन तथा साहसी वीरों के कार्य तथा शौर्य कथाएँ जैसे मानव के कार्यों से जुड़े

लौकिक विषय ही इतिहासकार चुनने लगे। इस दृष्टि से विलियम कैमडन का 'हिस्ट्री ऑफ एलिजाबेथ' तथा फ्रांसिस बेकन का 'द रेन ऑफ किंग हेनरी द सेवंथ' जैसी रचनाएँ उल्लेखनीय हैं।

सोलहवीं और सत्रहवीं सदी में अनेक साहसी वीर अज्ञात विश्व की खोज में समुद्री पर्यटन के लिए निकले। उनके यात्रा वृत्तांतों से मानवी ज्ञान की शाखाएँ विस्तारित हुईं नई दुनिया के क्षितिज, वहाँ के लोग, संस्कृति इतिहासकारों को आकर्षित करने लगीं। वाल्टर रैले जैसा विद्वान, राजनयिक एवं साहसी यात्री विश्व का इतिहास लिखने लगा। यह इतिहास का क्षेत्र विस्तृत होने का संकेत था।

अठारहवीं सदी में यातायात के साधन बढ़े और सुदूर की यात्राएँ संभव हुईं यूरोप के इतिहासकार प्राचीन इतिहास को खँगालने लगे। इटली पहुँच कर संबंधित साहित्य का एवं पूर्वकाल के दस्तावेजों का गंभीरता से अध्ययन करने लगे। इसके साथ ही, केवल घटनाओं का अध्ययन इतिहास का विषय नहीं रहा, बल्कि दीर्घकाल के परिवर्तनों का अध्ययन होने लगा। एडवर्ड गिबन का Decline and fall of the Roman Empire नामक ग्रंथ इस तरह की व्यापक दृष्टि का बेहतर उदाहरण है। इस तरह इतिहास का तत्वज्ञान प्रस्तुत करने वाले विचारकों में इटली के विको, फ्राँस के वोल्टेयर, जोहान हर्डर, एंटनी कॉण्डरसेट के नाम उल्लेखनीय हैं।

उन्नीसवीं सदी में तो इतिहास के विषय में बुनियादी परिवर्तन हुए। इस काल में मानवी जीवन का अधिकाधिक व्यापक दृष्टि से विचार होने लगा। मनुष्य एकाकी जीव न होकर वह समाज का अविभाज्य अंग बन गया और उसके विकास में समाज का बहुत बड़ा योगदान है और इसीलिए वह जिस समाज में रहता है उस समाज का अध्ययन प्राप्त करने लगा। राऊज कहता है, "History is essesntially a record of the men in societies, in their geographical and physical environment." इतिहास यदि पूर्वकाल के मानवी जीवन का अध्ययन हो तो राजनीतिक घटनाओं के साथ ही आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक घटनाओं का विचार भी इतिहासकार को करना चाहिए, इसके बिना मानवी जीवन के यथार्थ का आकलन नहीं होगा। इस भूमिका से सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास के नए द्वार खुलने लगे। कार्ल मार्क्स द्वारा इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या के बाद इतिहास लेखन में आर्थिक मूल्यों का नवीन प्रवाह प्रचलित होने लगा।

बीसवीं सदी में इतिहास विषय का क्षेत्र बहुत ही विस्तृत हो गया। पूर्वकाल के मानवी जीवन पर प्रकाश डालने वाली अनेक ज्ञानशाखाओं के अध्ययन को इस काल में प्रोत्साहन मिलने से इतिहास लेखन के लिए नए विषय एवं नई सामग्री उपलब्ध होने लगी। पुरातत्वशास्त्र, मुद्राशास्त्र, अभिलेखशास्त्र, प्रतिमाशास्त्र जैसे इतिहास के सहायक विषयों ने इतिहास को भरपूर जानकारी उपलब्ध कराई और इस जानकारी के आधार पर इतिहासकार नवीन एवं अज्ञात विषयों का अध्ययन करने लगे।

भूतकालिक समाज संस्कृति एवं सभ्यता का चित्रण करना ही इतिहास का उद्देश्य होता है। किसी भी संस्कृति एवं सभ्यता से संबंधित भौगोलिक दशा, वातावरण, आर्थिक व्यवस्था, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, प्रशासनिक, संवैधानिक, कानून, न्याय-व्यवस्था, सुरक्षा-व्यवस्था आदि का विवरण इतिहास में आवश्यक हो जाता है। इतिहासकार से अपेक्षा की जाती है कि इन सभी विषयों का उचित विवरण समाज के समक्ष प्रस्तुत करे। यदि संस्कृति एवं सभ्यता का क्षेत्र विस्तृत है तो इतिहासकार के लिए इन सभी प्रश्नों का उत्तर देना संभव नहीं है। इसीलिए आधुनिक इतिहासकारों ने इतिहास के अध्ययन क्षेत्र का वर्गीकरण किया है। इतिहास के अध्ययन क्षेत्र का यह वर्गीकरण वैज्ञानिक युग की देन है। ऐतिहासिक अन्वेषण की आधुनिक विधियों ने इतिहास के सामान्य ज्ञान की अपेक्षा विशिष्ट ज्ञान की उपादेयता को सिद्ध किया है। परिणामस्वरूप इतिहास का विभाजन न केवल प्राचीन

मध्ययुगीन तथा आधुनिक काल में किया गया है बल्कि इसके अंतर्गत अनेक छोटी-छोटी शाखाओं पर शोध करके इतिहासकारों ने विशिष्ट ज्ञान प्राप्त किया है। इस प्रकार इतिहास का अध्ययन क्षेत्र निरंतर विकसित होता जा रहा है।

1.2.5 इतिहास का अध्ययन क्षेत्र

डेवी के अनुसार, इतिहास के अध्ययन क्षेत्र का वर्गीकरण उपयोगी तथा स्वाभाविक है। इसका एक मात्र उद्देश्य विशेष तथा परिवर्तित घटनाओं का ज्ञान प्राप्त करना है। एफ. सी. एस. शिलर ने भी इतिहास के अध्ययन क्षेत्र के वर्गीकरण के संबंध में कहा है कि विस्तृत वर्गीकरण दुर्लभ है, फिर भी इतिहासकारों ने भूतकालिक घटनाओं के आधार पर समस्त प्रश्नों का उत्तर देने के लिए इतिहास के अध्ययन क्षेत्र का वर्गीकरण किया है जिसका विवरण निम्नानुसार किया गया है -

1.2.5.1 राजनीतिक इतिहास

यह इतिहास की एक महत्वपूर्ण शाखा है। शुरू के इतिहासकारों ने इसे विशेष महत्व दिया था। राजनीतिक संस्थाएँ समाज का वह रंगमंच होती हैं जहाँ महापुरुषों के कार्यों का प्रदर्शन होता है और जिनको ए. एल. राउज ने इतिहास की रीढ़ माना है। इसे इतिहास की एक महत्वपूर्ण शाखा भी कहा गया है। आधुनिक युग में इसको 'सूक्ष्म इतिहास' इंगित करते हैं। इसमें महापुरुषों के कार्य एवं उपलब्धियों का उल्लेख रहता है जो भावी इतिहास के निर्माण में सहायक होता है। उनसे वर्तमान को प्रकाश तथा भविष्य को मार्ग-दर्शन मिलता है। राजनीतिक इतिहास के बिना किसी भी इतिहास का ज्ञान अपूर्ण समझा जाता है और अब तो वह समय भी आ गया है जब राजनीतिक इतिहास में जनसामान्य की भूमिका का अध्ययन किया जाना अपरिहार्य होगा जिसे वर्तमान काल में आम आदमी का इतिहास कहा गया है। राज्य, राष्ट्र और राष्ट्रीयता के हेतु से भी राजनीतिक इतिहास का महत्वपूर्ण स्थान होता है। इसे 'पोलिटिकल हिस्ट्री' कहते हैं।

प्राचीन काल में यूनानियों ने राजनीतिक इतिहास से इतिहास लेखन आरंभ किया तथा बाद में कई सदियों तक इसी विषय पर प्रमुख रूप से लेखन किया जाता रहा। यह समीकरण ही बन गया था कि इतिहास राजनीतिक जीवन का आलेख है। इसलिए सीले जैसा प्रसिद्ध ब्रिटिश इतिहासकार 'इतिहास यानी पूर्वकालीन राजनीति' जैसी इतिहास की सहज सरल परिभाषा करता है। राजनीति मनुष्य के जीवन का प्रमुख अंग है। समाज सुव्यवस्था के लिए कानूनों की जरूरत होती है। उन्हें बनाने वाली एवं उन पर अमल करने वाली प्रशासकीय संस्थाओं की जरूरत होती है, राज्य व्यवस्था की जरूरत होती है। राज्य व्यवस्था सुव्यवस्थित चलने के लिए शासक जरूरी होता है, चाहे फिर वह राजा हो, प्रधान मंत्री हो अथवा राष्ट्रपति हो। कानूनों का परिपालन न होने पर दंडित करने के लिए न्याय संस्था की जरूरत होती है। शासकों द्वारा किए गए निर्णयों का, पारित कानूनों का परिणाम नागरिकों के जीवन पर, परिणाम स्वरूप सामाजिक जीवन पर होता है। इसके अलावा राजनीति में होने वाली घटनाओं, षड्यंत्रों, सत्तांतरों, राजनीतिक जीवन में ईर्ष्या, संघर्ष इत्यादि बातें भी रोचक होती हैं। इस दृष्टि से राजनीतिक जीवन का महत्व अविवादास्पद है। पूर्वकालीन सामाजिक जीवन को प्रस्तुत करते समय उन दिनों कौन शासक था, उसकी नीतियाँ क्या थीं और कैसी तय होती थीं, नीतियों पर अमल किस तरह और किस व्यवस्था के तहत होता था, इस पर विचार अनिवार्य होता है। इसलिए राजनीतिक जीवन का, राज्य व्यवस्था का, राज्य संस्था का इतिहास जान लेने की जिज्ञासा स्वाभाविक थी। इसी तरह महान व्यक्तियों के कार्यों का

आलेख भी चित्ताकर्षक होता है। उससे उद्बोधन होता है, प्रेरणा मिलती है। इसलिए इतिहासकार इस क्षेत्र की ओर मुड़े और सामान्य पाठक वर्ग को भी यह क्षेत्र रोचक लगा।

इतिहास लेखन के लिए विश्वसनीय प्रमाण जरूरी होते हैं। राजनीतिक इतिहास लेखन के लिए इस तरह के प्रमाण मिलना आसान होता है। इसके लिए मूल स्वरूप के लिखित साधन बड़े पैमाने पर प्राप्त होते हैं। जैसे कि राजा के दरबार में शासकीय कामकाजों की प्रविष्टियाँ, राष्ट्रों के बीच का पत्रव्यवहार, प्रशासकीय कार्यों के प्रतिवेदन, विधि मंडल के कामकाज के प्रतिवेदन आदि मूल लिखित दस्तावेज अभिलेखागारों में व्यवस्थित रूप से इकट्ठा रखे होने से उनका परिशीलन करना आसान होता है। प्रकाशन की सुविधा के कारण मूल दस्तावेजों के संग्रह प्रकाशित हुए हैं। मराठों के इतिहास के अध्ययन के लिए शिवाजीकालीन दस्तावेज, पेशवों के कार्यालयों के दस्तावेज तथा महत्वपूर्ण मराठा सरदारों के दस्तावेज उपलब्ध हैं। भारत के स्वतंत्रता समर के विषय में दस्तावेजों का प्रचंड भंडार प्रकाशित है। इसके अलावा सार्वजनिक जीवन के नेताओं के निजी पत्रव्यवहार भी राजनीतिक इतिहास के बेहतर साधन होते है। ये सभी दस्तावेज सरकारी अभिलेखागारों में तथा कुछ निजी संस्थाओं में, मिसाल के तौर पर पुणे के भारत इतिहास संशोधक मंडल् दिल्ली के जवाहरलाल नेहरू मेमोरियल ग्रंथालय में अभिरक्षित हैं। प्राचीन इतिहास के अध्ययन के लिए आवश्यक पुराने हस्तलिखित दस्तावेज तथा मुद्राएँ, शिलालेख, ताम्रपत्र आदि साधन कुछ संस्थाओं में सुरक्षित मिलते हैं। इससे राजनीतिक इतिहास के लेखक का कार्य आसान हो जाता है।

1.2.5.2 सामाजिक इतिहास

सामाजिक इतिहास लेखन मुख्य रूप से उन्नीसवीं सदी में प्रचलित हुआ। 'इतिहास यानी पूर्वकालीन मानवी जीवन को दर्ज करना' यह परिभाषा स्वीकार करें तो मानवी समाज के इतिहास को इतिहास का महत्वपूर्ण प्रकार मानना स्वाभाविक ही है। इंग्लैंड के छः सदियों का सामाजिक इतिहास लिखने वाले प्रो. जी. एम. ट्रेवेलियन ने ग्रंथ की प्रस्तावना में, ''राजनीतिक पक्ष को छोड़कर लिखा कि समाज का इतिहास सामाजिक इतिहास है'' (Social history might be defined as the history of a people with politics left out.) यह सामाजिक इतिहास की परिभाषा है। यही नहीं, सामाजिक इतिहास का महत्व प्रतिपादित करते हुए उन्होंने यह भी कहा है कि सामाजिक इतिहास के बिना 'आर्थिक इतिहास निष्फल तथा राजनीतिक इतिहास अकलनीय' होता है। (Without social history, economic history is a barren and political history is unintelligible) प्रो. रेडफोड की राय में ''सामाजिक इतिहास अर्थात् सामाजिक दृष्टिकोण से लिखा गया इतिहास है' (Social history is all history from a social point of view), जबकि नेमियर की राय है कि ''सामाजिक अंगों से संलग्न सभी मानवी व्यवहारों का समावेश सामाजिक इतिहास में होना चाहिए।'' (All human pursuits and diciplines in their social aspect enter into it) अर्थात् राजनीतिक घटनाओं का सामाजिक जीवन पर होने वाला परिणाम सामाजिक विषय में सम्मिलित होता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि सामाजिक इतिहास का केंद्र बिंदु समाज होता है।

काम्टे के अनुसार इतिहास सामाजिक भौतिकशास्त्र है। इसके अंतर्गत मानवीय व्यवहार के सामान्य नियमों का अध्ययन किया जाता है। टायन्बी ने लिखा है कि इतिहास का निर्माण सामाजिक तत्वों से हुआ है। इतिहास का विकास व्यक्तियों तथा राष्ट्रों से नहीं, बल्कि विभिन्न युगीन समाजों से हुआ है। अतः इतिहास की आधारशिला समाज है। सामाजिक इतिहास को सर्वाधिक लोकप्रिय बनाने का एक मात्र श्रेय ट्रेवेलियन को है। उनके सामाजिक इतिहास का स्थान अत्यधिक महत्वपूर्ण है। सामाजिक

इतिहास की परिभाषा में ट्रेवेलियन का विचार अधिक ग्राह्य है। अतीत में मनुष्यों का दैनिक जीवन, विभिन्न वर्गों का पारस्परिक आर्थिक संबंध, परिवार का स्वरूप, गृहस्थ जीवन, श्रमिकों की दशा, मानवीय दृष्टिकोण, सांस्कृतिक जीवन तथा सामान्य परिस्थितियों से उत्पन्न धर्म, साहित्य, संगीत, वास्तुकला, शिक्षा तथा साहित्य इत्यादि सामाजिक इतिहास के विषय हैं। रेनियर के अनुसार सामाजिक इतिहास आर्थिक इतिहास की पृष्ठभूमि तथा राजनीतिक इतिहास की कसौटी है। ट्रेवेलियन की दृष्टि में सामाजिक इतिहास के अभाव में आर्थिक इतिहास मरुस्थल तथा राजनीतिक इतिहास अवर्णनीय है।

बीसवीं सदी के अधिकांश इतिहासकारों का ध्यान सामाजिक इतिहास ने आकृष्ट किया है। सामाजिक समस्याओं के प्रति चेतना ने इतिहास के क्षेत्र में क्रांतिकारी रुचि पैदा कर दी है। समाजशास्त्र का विकास सामाजिक इतिहास के परिवेश में हुआ है। सामाजिक विकास तथा परिवर्तन की गतियों का अध्ययन समाजशास्त्र के माध्यम से प्रारंभ हुआ है।

सामाजिक इतिहास की अपनी समस्याएँ हैं। इसका अध्ययन रोचक है, परंतु इसकी निरंतरता, मंदगति तथा परिवर्तन का अध्ययन अत्यंत जटिल है। राजनीतिक परिवर्तन जीवन के सतह पर दृष्टिगोचर है, सामाजिक परिवर्तन भूमिगत अगोचर जलस्रोत के समान है, सामाजिक परिवर्तन का ही परिणाम राजनीतिक परिवर्तन होता है, एक नवीन सम्राट, प्रधान मंत्री, नवीन सांसद, राजनीतिक क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन करते हैं, परंतु सामाजिक जीवन में इस परिवर्तन का प्रभाव प्रायः नगण्य होता है।

भारतीय इतिहास में राजनीतिक उथल-पुथल के कारण अनेक राजवंशों का उत्थान तथा पतन हुआ है। राजपूतों के पतन के बाद तुर्की सुल्तानों, मुगलों तथा अंग्रेजों का शासन हुआ, परंतु इन परिवर्तनों ने सामाजिक जीवन को प्रायः प्रभावित नहीं किया। परिणामस्वरूप वैज्ञानिक उन्नति को छोड़ कर भारतीय समाज का मूलस्वरूप आज भी वही है जैसा गौतम बुद्ध तथा महावीर स्वामी के समय में था। भक्ति आंदोलन के समाज सुधारक रामानंद, कबीर, नानक तथा चैतन्य ने समाज सुधार के लिए अथक प्रयास किए। राजा राममोहन राय, महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू ने भी समाज-सुधार का प्रयास किया। संसद तथा विधान सभाओं ने अनेक नियम पारित किए। इतने प्रयासों के बावजूद भी सामाजिक स्वरूपों में कोई क्रांतिकारी परिवर्तन नहीं हुआ। यदि सामाजिक परिवर्तन को स्वीकार भी किया जाए तो भूमिगत जल-स्रोत की भाँति इसकी गति इतनी मंद और अगोचर रही है कि उसका सूक्ष्म निरूपण कठिन प्रतीत होता है।

1.2.5.3 आर्थिक इतिहास

आर्थिक इतिहास का क्षेत्र बहुत ही व्यापक है। इतिहास के इस क्षेत्र का समुचित अध्ययन अभी नहीं हो पाया है। आर्थिक इतिहास को महत्वपूर्ण बनाने में कोंदोरसे, काम्ते, बर्कले तथा कार्ल मार्क्स का सर्वाधिक योगदान रहा है। कार्ल मार्क्स द्वारा इतिहास की आर्थिक व्याख्या ने इतिहास के इस क्षेत्र पर विचार के लिए विद्वानों को बाध्य किया। समाज के प्रादुर्भाव के साथ ही अर्थतंत्र की समस्याएँ उदित हो गई थीं। व्यक्ति और समाज ने अपनी आजीविका के संसाधनों को किस प्रकार ढूँढ़ा और समय के साथ इसका किस प्रकार विकास हुआ, इसका ज्ञान आवश्यक है। इंग्लैंड की औद्योगिक क्रांति के बाद समाज के अर्थतंत्र पर विद्वानों ने सोचना शुरू किया। सबसे पहले आर. एच. टानी व एलीन पावर ने आर्थिक इतिहास लिखा। विलियम ऐश्ले ने आर्थिक इतिहास के स्वरूप के विषय में लिखा है कि मनुष्य ने आजीविका के साधनों के उत्पादन में अधिकतम संतोष प्राप्त करने के लिए क्या किया, यही आर्थिक इतिहास है। वास्तव में अर्थ का क्षेत्र बहुत ही व्यापक है। यह तो मात्र उसका एक पहलू है। आदिकाल से व्यक्ति एकाकी एवं व्यक्तिवादी नहीं रहा है। व्यक्ति किसी न किसी रूप में संगठन एवं सामूहिकता के तथ्यों

से संचालित होता रहा है। किसी भी वस्तु के उत्पादन में सर्वप्रथम संसाधन, श्रम और बड़े पैमाने पर उत्पादन के लिए पूँजी की आवश्यकता होती है। यहीं से अर्थतंत्र का इतिहास शुरू हो जाता है। आज आर्थिक इतिहास के अंतर्गत आजीविका के साधन, कृषि, उद्योग, व्यापार, यातायात के साधन, भू-राजस्व आदि विषयों का अध्ययन होता है। जी. एन. क्लार्क के अनुसार आधुनिक युग में आर्थिक इतिहास ने इतिहास के अध्ययन क्षेत्र के अंतर्गत एक उच्च स्थान प्राप्त कर लिया है।

बैंकों का अध्ययन इतिहास क्षेत्र के अंतर्गत आता है। सर जॉन क्लैफम ने बैंक ऑफ इंग्लैंड तथा इ. टी. मैकडेरमोट ने वेस्टर्न रेलवे का इतिहास लिखा है। मिस सदरलेंड ने अठारहवीं सदी का व्यापारी तथा रिचर्ड पेरीज ने वेस्ट इण्डिया फारच्यून लिखकर आर्थिक इतिहास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

आर्थिक इतिहास के अंतर्गत आजीविका के साधन, कृषि, यातायात के साधन, उद्योग व्यापार आदि विषयों का अध्ययन होता है। डारविन ने आर्थिक इतिहास को अस्तित्व के लिए संघर्ष तथा कार्ल मार्क्स ने आर्थिक नियतिवाद के सिद्धांतों का प्रतिपादन करके विषय को रोचक एवं आकर्षक बनाने का प्रयास किया है। 1917 की रूस की राज्यक्रांति के बाद आर्थिक इतिहास का महत्व द्रुत गति से बढ़ता जा रहा है। मार्क्सवादी विचारों से प्रभावित अनेक भारतीय विद्वानों ने आर्थिक इतिहासकार की विभिन्न शाखाओं का अध्ययन किया है। हिरेन मुखर्जी, रजनी पामदत्त, कोसाम्बी तथा इरफान हबीब ने आर्थिक इतिहास-लेखन को एक नवीन दिशा प्रदान की है।

आधुनिक आर्थिक सिद्धांत का आधार गणित तथा सांख्यिकी है, परंतु इतिहास में इन सिद्धांतों का प्रयोग इतिहास को अरुचिकर बना देगा। इतिहास को अर्थपूर्ण बनाने के लिए इनका कम से कम उपयोग आवश्यक है। गणित तथा सांख्यिकी का अधिक प्रयोग इतिहासकार को कैंची तथा गोंद शैली (Scissor and Cum a Cut and Paste) के लिए विवश कर देगा। संभावना है कि इतिहास अपना अस्तित्व खो बैठेगा। वैज्ञानिक इतिहासकारों ने भी प्रतिरोध की आवश्यकता की अनुभूति की है। आर्थिक इतिहास साक्ष्यों के आधार पर उपयोगी तथा बोधगम्य होना चाहिए। इतिहासकारों से यही अपेक्षा की जाती है। आर्थिक इतिहास के अनेक पहलू अब विकसित होते जा रहे हैं और कुछ तो अभी बिल्कुल अछूते हैं। आर्थिक इतिहास के समग्र पहलुओं पर चिंतन एवं लेखन होना चाहिए। जी. एन. क्लार्क का विचार है कि तकनीकी यंत्रों तथा कारखानों द्वारा उत्पादित वस्तुओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि उस वस्तु का उत्पादन सामूहिकता तथा संगठन का परिणाम है। वास्तव में उस वस्तु के उत्पादन में संसाधन अपनी भूमिका अदा करते हैं। स्पष्ट है कि वस्त्र उत्पादन में किसान, कोयला, मशीन, श्रम तथा पूँजी के पारस्परिक सहयोग की अपेक्षा होती है। इतिहासकार का दायित्व है कि वह आर्थिक इतिहास के सभी पक्षों पर विचार करे। श्रम के साथ ही उसे पूँजी एवं पूजीपतियों पर भी विचार करना होगा। इसी प्रकार उसे बैंक एवं बैंकिंग व्यवस्था का भी इतिहास लिखना होगा तभी आर्थिक इतिहास का अध्ययन आगे बढ़ सकेगा।

1.2.5.4 सांस्कृतिक इतिहास

सांस्कृतिक इतिहास समाज, धर्म, साहित्य और कला का मिश्रण है। इसके अंतर्गत रीति-रिवाज, संस्कार, शिक्षा, साहित्य, वास्तुकला, चित्रकला, संगीत तथा आमोद-प्रमोद के साधनों का विवरण रहता है। सांस्कृतिक इतिहास के अध्ययन को सरल तथा सुबोध बनाने के लिए इतिहासकारों ने इतिहास-क्षेत्र को प्राचीन, मध्ययुगीन तथा आधुनिक काल में विभक्त किया है। किसी भी महान सम्राट या राजवंश के शासन काल को सांस्कृतिक इतिहास का विषय बनाया जाता है। जैसे मौर्यकाल, गुप्तकाल, राजपूतकाल, मुगलकाल, ब्रिटिशकाल के सांस्कृतिक विकास का अध्ययन इतिहासकारों ने किया है।

भारतीय संदर्भ में संस्कृतविद् ए. एल. वाशम की पुस्तक 'अद्भुत भारत' (The wonder that was India,) राजनीतिक इतिहास से अराजनीतिक इतिहास अथवा सांस्कृतिक इतिहास की ओर एक प्रमुख मोड़ था। यही मोड़ डी. डी. कोशाम्बी की पुस्तक 'एन इण्ट्रोडक्शन टु द स्टडी ऑफ इण्डियन हिस्ट्री में भी परिलक्षित होता है जो बाद में 'एन्शिएन्ट इंडियन कल्चर एंड सिवलाइजेशन आउटलाइन में प्रचारित हुआ। कोशाम्बी ने सांस्कृतिक इतिहास को प्रमुखता देकर भारतीय इतिहास को एक नवीन आयाम दिया।

वर्तमान में अधिकांश इतिहासकार सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक पहलुओं के परिप्रेक्ष्य में सांस्कृतिक इतिहास पर विशेष जोर देते हुए उनका संबंध राजनीतिक गतिविधियों से जोड़ने का सराहनीय प्रयास करते हैं। भारत की सांस्कृतिक विरासत की बृहदता को देखते हुए सांस्कृतिक इतिहास को प्राचीन् मध्ययुगीन एवं आधुनिक भारत के सांस्कृतिक इतिहास में विभक्त कर लिया गया है। इस दिशा में दत्ता, राय चौधरी एवं मजूमदार की कृति 'भारत का बृहद् इतिहास भाग 1, 2 एवं 3 तथा चोपड़ा, पुरी एवं दास की कृति A Social Cultural and Economic History of India, Vol. 1, 2 and 3 विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन्होंने अपनी कृतियों में प्राचीन, मध्ययुगीन एवं आधुनिक भारत के सांस्कृतिक इतिहास को समेटा है।

सांस्कृतिक इतिहास के विस्तार क्षेत्र को देखते हुए कई इतिहासकारों ने काल विशेष एवं सम्राट विशेष के काल की संस्कृति के विविध पक्षों पर भी विशेष रूप से प्रकाश डाला है। रोमिला थापर कृत 'अशोक एण्ड द डिक्लाइन ऑफ मौर्य', राधाकुमुद मुखर्जी कृत 'चन्द्रगुप्त मौर्य और उसका काल', राहुल सांकृत्यायन कृत 'ऋग्वैदिक आर्य' एवं 'अकबर', मजूमदार एवं अल्तेकर कृत 'द वकाटक गुप्ता एज', मजूमदार कृत 'द हर्ष इरा', रामानन्द चटर्जी कृत 'राम मोहन राय एण्ड मार्डन इण्डिया', ए. आर, देसाई कृत 'सोशल बैकग्राउण्ड ऑफ इण्डियन नेशनलिज्म', कपिल कुमार कृत 'पीजेण्ट्स इन रिवोल्ट', ए. आर. देसाई कृत 'पीजेण्ट्स स्ट्रगल इन इण्डिया', आर. सी. दत्ता कृत 'द इकनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया' आदि कृतियाँ राजनीतिक इतिहास से सांस्कृतिक इतिहास की ओर एक प्रमुख रुझान प्रस्तुत करती हैं। इस दृष्टि से रामधारी सिंह दिनकर कृत 'संस्कृति के चार अध्याय' भी एक महत्वपूर्ण कृति है।

1.2.5.5 धार्मिक इतिहास

धर्म इतिहास का अत्यंत रोचक विषय है। अधिकांश इतिहासकारों ने धार्मिक भावना से प्रेरित होकर इस विषय पर अधिकाधिक चर्चा की है। वैदिक धर्म, बौद्ध धर्म, जैन धर्म, ईसाई धर्म, इस्लाम धर्म का इतिहास विभिन्न युगों में लिखा गया है। यूरोप में पुनर्जागरण तथा धर्मसुधार काल धार्मिक इतिहास-लेखन की दृष्टि से स्वर्णकाल माना जाता है। धार्मिक विषयों पर प्रोटेस्टेंट तथा कैथेलिक इतिहासकारों ने बहुत लिखा है।

मानव समाज को नैतिक रूप से संयमित एवं नियंत्रित करने में धर्म की महत्वपूर्ण भूमिका है। समस्याओं में जकड़े हुए समाज की प्राण वायु धर्म ही है। मानव समाज की धर्मसम्मत जिज्ञासाओं की पूर्ति के लिए धार्मिक इतिहास की महत्वपूर्ण भूमिका को देखते हुए इतिहासकारों का एक वर्ग धार्मिक इतिहास लेखन की ओर अग्रसर हुआ। आरंभ से लेकर अब तक होने वाले समस्त धार्मिक क्रियाकलाप धार्मिक इतिहास के अंतर्गत आते हैं। धर्म एवं धार्मिक इतिहास की दिशा में आरंभिक काल से ही भारत ने समस्त विश्व का आध्यात्मिक नेतृत्व किया है।

भारत के प्राचीन धार्मिक साहित्य वेद, वेदांग, पुराण, ब्राह्मण, स्मृतियाँ, गीता की धार्मिक इतिहास की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका है। वैदिक धर्म के पतन के काल में उसके पुनरोद्धारक श्री

शंकराचार्य ने गीता पर भाष्य लिखकर उसमें निहित तत्वज्ञान को सुस्पष्ट किया। प्राचीन भारतीय संदर्भ में छठी शताब्दी ई. पू. के धार्मिक आंदोलन, मध्य युग में भक्ति आंदोलन एवं सूफीवादी आंदोलन एवं आधुनिक युग में 19वीं शताब्दी के धार्मिक आंदोलन धार्मिक इतिहास लेखन के प्रमुख केंद्र रहे हैं। इस दृष्टिकोण से गोविन्द चन्द्र पाण्डेय कृत 'बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, आचार्य नरेन्द्र देव कृत 'बौद्ध धर्म दर्शन', राहुल सांकृत्यायन कृत 'बौद्ध दर्शन', कुआंग चाऊ सिआंग कृत 'चीनी बौद्ध धर्म का इतिहास', यू. डी. बरोडिया कृत 'History and Literature of Jainism', राहुल सांकृत्यायन कृत 'इस्लाम धर्म का इतिहास', तारा चन्द कृत 'The Influence of Islam on Indian Culture', G. H. Westcott कृत 'Kabir and the Kabir Panth' के. एन. निजामी कृत 'Some Aspects of Religion and Politics in India During the Thirteenth Century', J. Arberry कृत 'Doctrine of the Sufism', गम्भीरानन्द स्वामी कृत 'History of the Ramkrishna Math and Mission', रोमां रोलैण्ड कृत Ñr 'The Life of Vivekananda and the Universal Gospel', लाजपत राय कृत 'आर्य समाज', एम. जी. रनाडे कृत 'Religious and Social Reform' आदि विभिन्न कृतियों का धार्मिक इतिहास लेखन की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान है।

मानव के सर्वांगीण विकास में धार्मिक इतिहास की महत्वपूर्ण भूमिका है। वैदिक, बौद्ध, इस्लाम, क्रिश्चियन, सिक्ख एवं जैन धर्म के सिद्धांत आज भी पूर्णतः प्रासंगिक हैं। जातिगत भेद को दूर करने की दिशा में क्रिश्चियन समाज की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। भक्ति आंदोलन के प्रमुख प्रणेता नानक एवं कबीर की शिक्षाएँ वर्तमान में हिंदू-मुस्लिम सौहार्द्र की दिशा में उपयोगी एवं प्रासंगिक हैं।

1.2.5.6 संवैधानिक इतिहास

संवैधानिक इतिहास को लीगल हिस्ट्री भी कहते है। भारत में इसे विधान-संहिताएँ कहा गया, है यथा - मनुस्मृति आदि। परिवर्तित सामाजिक परिस्थितियों में विधि-विकास ने किस तरह सामंजस्य स्थापित किया है, इसे यही इतिहास बताता है। विधिक इतिहासकारों में ये नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं - गमालोविज, गिक, इहरिंग, बूनर, कोहलर, मेटलैण्ड, ब्लैकस्टोन, पोलक, जैंक्स, लास्की, डुगविट, इस्मे, चारमार्ट, बेकारो, होलम्स, विगमोर पाउण्ड आदि।

समाज को नैतिक रूप से नियंत्रित करने के लिए संवैधानिक इतिहास अत्यंत महत्वपूर्ण है। संवैधानिक इतिहास का राजनीतिक इतिहास से घनिष्ट संबंध है। परिवर्तित सामाजिक परिस्थितियों में संवैधानिक इतिहास की उपयोगिता से इन्कार नहीं किया जा सकता। मनुष्य अगर अपने अधिकारों के प्रति जागरूक है तो उसे समाज व राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्यों का भी बोध होना चाहिए और यह सब संवैधानिक इतिहास की सीमाओं में आता है।

प्राचीन भारत में मनु स्मृति एवं विज्ञानेश्वर कृत 'मिताक्षरा' आदि कुछ ऐसे ग्रंथों का सृजन हुआ जिसमें समाज के लिए कुछ नियम निर्धारित किए गए थे। प्राचीन काल में मनु स्मृति के अलावा याज्ञवल्क्य स्मृति, नारद स्मृति, पाराशर एवं बृहस्पति स्मृति भी संवैधानिक इतिहास की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। कालांतर में जैसे-जैसे सामाजिक जटिलताएँ बढ़ती गयीं, वैसे-वैसे विभिन्न स्मृतियों पर टीकाएँ लिखी गयीं। मनु स्मृति पर मेधातिथी, कुल्लुक एवं गोविन्दराज द्वारा 8वीं शताब्दी से 12वीं शताब्दी के बीच टीकाएँ लिखी गयीं। याज्ञवल्क्य स्मृति पर विज्ञानेश्वर की टीका 'मिताक्षरा' को तो हिंदू कानून का कोड ही कहा जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन काल से ही राष्ट्र एवं समाज में किसी न किसी रूप में संवैधानिक संस्थाएँ विद्यमान थीं। विश्व के परिप्रेक्ष्य में हमुरावी का कोड, जस्टनियन कोड, कोड ऑफ

नेपोलियन, मैकाले का इंडियन पैनल कोड, कार्नवालिस कोड इत्यादि संवैधानिक इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

आधुनिक समय में संवैधानिक इतिहास के महत्व को देखते हुए कई विद्वानों ने संवैधानिक इतिहास लेखन में विशेष रुचि दिखाई है। हैलम, कार्निवाल लेविस, अर्सकीन, कावेल, कीथ एवं मैटलैण्ड महोदय ने संवैधानिक इतिहास लेखन के क्षेत्र में महती भूमिका निभाई है। संवैधानिक इतिहास की दृष्टि से ए. बी. कीथ महोदय की कृति 'A Constitutional History of India', ए. सी. बनर्जी कृत 'Indian Constitutional Documents (3 Vol.)', वीरकेश्वर कृत 'भारत का संवैधानिक विकास एवं राष्ट्रीय आंदोलन', एच. एलेक्जण्डर कृत 'India Since Crips' इत्यादि कृतियाँ काफी महत्वपूर्ण हैं। विश्व परिपेक्ष्य में ब्लेकस्टोन कृत 'Commentries of Law of England' भी एक महत्वपूर्ण कृति है।

आज जबकि मनुष्य अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो गया है, अपने अधिकारों के बोध एवं कर्तव्यों के दायित्वों को समझने के लिए अब उसकी रुचि संवैधानिक इतिहास की ओर बढ़ रही है।

1.2.5.7 क्षेत्रीय इतिहास

क्षेत्रीय इतिहास से आशय भौगोलिक सीमाओं से बँधे क्षेत्र विशेष के इतिहास से है। इस क्षेत्रीय अर्थात् स्थानीय इतिहास का अपना महत्व है। इसमें संदेह नहीं कि ''इतिहास एवं संस्कृति के क्षेत्र में क्षेत्रीय इतिहास एवं संस्कृति का अपना महत्व है। भारतीय संस्कृति के बाग को आंचलिक संस्कृति के फूलों ने ही सजाया एवं सँवारा है और भारतीय इतिहास की रीढ़ को आंचलिक इतिहास ने ही पुष्ट किया है।'' इस प्रकार इतिहास के क्षेत्र में हम आंचलिक इतिहास एवं संस्कृति को नकार नहीं सकते। ई. एल. हस्लुक का विचार है कि इतिहास के अध्ययन के अंतर्गत स्थानीय इतिहास के कुछ पाठों का समावेश अवश्य होना चाहिए जिससे हम उस स्थान विशेष की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकें और अगर हमारा कस्बा, गाँव या नगर ऐतिहासिक वस्तुओं के लिए प्रसिद्ध है तब तो हमें उसकी संपूर्ण जानकारी होनी ही चाहिए, जैसे (1) उस मुख्य नगर या क्षेत्र का ऐतिहासिक विकास जिसमें हम रहते हैं। (2) उस नगर या क्षेत्र के पास-पड़ोस में घटित वे घटनाएँ जिनका राष्ट्रीय महत्व है। (3) राष्ट्रीय इतिहास के विकास में उस स्थान का योगदान। (4) स्थानीय परंपराएँ एवं रीति-रिवाज, ऐतिहासिक भवन, कला केंद्र आदि से भी परिचित होना चाहिए। जैसे अगर हम सागर (मध्यप्रदेश) में रहते हैं तो मध्यप्रदेश के साथ-साथ सागर का ऐतिहासिक विकास किस प्रकार हुआ, इसका ऐतिहासिक महत्व क्या है तथा इसका राष्ट्रीय इतिहास में क्या योगदान है, ये इतिहासकार के संज्ञान में होनी चाहिए। इस प्रकार क्षेत्रीय इतिहास का अपना महत्व है।

प्रादेशिक इतिहास के अध्येता का केवल ग्रंथालयों अथवा अभिलेखागारों में काम करना पर्याप्त नहीं है। उस प्रदेश की यात्राएँ कर प्रत्यक्ष जानकारी हासिल करनी होती है। इसके लिए सर्वेक्षण प्रणाली का उपयोग कर जानकारी एकत्रित की जा सकती है। इतिहासकार के लिए विस्तृत पठन-पाठन के अलावा चिकित्सक विश्लेषण की वृत्ति एवं ठोस बुनियाद भी आवश्यक है। संबंधित प्रदेशों की विशेषताएँ उजागर करने वाले प्रादेशिक इतिहास बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में बड़े पैमाने पर लिखे गए। स्थानीय इतिहास प्रादेशिक इतिहास का अधिक सूक्ष्म प्रकार माना जा सकता है। विदर्भ का इतिहास प्रादेशिक इतिहास माने तो नागपुर शहर का इतिहास स्थानीय इतिहास होगा। वस्तुतः प्रादेशिक इतिहास यह संज्ञा कुछ लचीली है। भारत के इतिहास के दृष्टिकोण से देखें तो दक्षिण भारत का इतिहास प्रादेशिक इतिहास होगा, जबकि चेन्नई, बंगलुरु जैसे शहरों के इतिहास स्थानीय इतिहास में शामिल होंगे। (वैश्विक इतिहास को (Macro Study) जबकि क्षेत्रीय इतिहास को (Micro Study) कहते हैं।)

1.2.5.8 विश्व-इतिहास

उन्नीसवीं सदी तक इतिहासकार एक देश के इतिहास का निरूपण किया करते थे। इसके बाद यातायात के साधन बढ़े, देशों के बीच व्यापार बढ़ा, फलस्वरूप इतिहासकारों की दृष्टि व्यापक होकर महाद्वीपों के इतिहास लिखे जाने लगे। उदाहरण के लिए यूरोप का इतिहास, एशिया का इतिहास, अफ्रीका का इतिहास आदि। बीसवीं सदी में यह प्रक्रिया अधिक विकसित हुई। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी में तीव्र विकास से विभिन्न महाद्वीप नजदीक आ गए। विभिन्न महाद्वीपों में विभिन्न देशों की राजनीति, आर्थिक तथा व्यापारिक संबंध आपस मेंइतने उलझते गए कि किसी भी देश का इतिहास उचित तरीके से समझने के लिए वैश्विक दृष्टि आवश्यक हो गई। इस संदर्भ में प्रो. एल्टन का यह प्रतिपादन कि ''सभी बेहतर ऐतिहासिक लेखन विश्व का इतिहास ही होता है, क्योंकि विश्व के एक भाग का अध्ययन करते समय विश्व का विचार करना ही होता है।'' वैश्विक दृष्टिकोण महत्वपूर्ण होता है। वर्तमान में तो सर्वत्र वैश्वीकरण के प्रवाह के कारण किसी भी एक देश का, प्रदेश का अथवा महाद्वीप का भी एकाकी विचार संभव ही नहीं है।

विश्व इतिहास उदारवादी दृष्टिकोण वाले इतिहासकारों की देन है और अंतरराष्ट्रीय स्नेह, सद्भावना एवं विश्वबंधुत्ववाद के अंतर्गत लिखा गया है। इसका जन्म यूनानी संस्कृति के रोमन जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों के फलस्वरूप हुआ। विश्व-इतिहास वास्तव में राष्ट्रीय इतिहास है जिसका नेता संपूर्ण राष्ट्र अथवा जाति थी। इस इतिहास के समर्थकों में विशुद्ध बुद्धिवादी पोलीबस का नाम विशेष आदर के साथ लिया जाता है जिस पर थ्यूसीडायडीज और अरस्तू की गहरी छाप पड़ी थी और जो कार्य-कारणवाद के सिद्धांत पर राजनीतिक घटनाओं और युद्धशास्त्रीय विवेचन में ही विशेष रुचि रखते थे।

इतिहास में एक समय ऐसा भी आया था जब उग्र राष्ट्रीयता की भावना ने विश्व-युद्ध की भेरी बजा दी, फलस्वरूप बहुत कुछ नष्ट-भ्रष्ट हो गया। तब मानव समाज की रक्षा के लिए विश्व-संस्थाओं की आवश्यकता अनुभव की गई और हेग-न्यायालय, राष्ट्रसंघ, संयुक्त राष्ट्रसंघ आदि की स्थापना कर विश्वबंधुत्ववाद को जागृत करने का इतिहासकारों ने प्रयास किया था। यहीं से विश्व-इतिहास लिखने की ओर लोगों का ध्यान गया अथवा इसके पूर्व किसी ने भी इस ओर ध्यान नहीं दिया था, किंतु 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जब लोगों ने विश्वभ्रातत्ववाद के सिद्धांत को स्वीकारा तब इतिहासकारों ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत की। सर वाल्टर रेले ने प्रथमतः इसके लिए प्रयास किया था। उनके अतिरिक्त एच. जी. वेल्स (आउटलाइन्स ऑफ हिस्ट्री) हेगल, स्पेंगलर, आयन्बी (दि स्टडी ऑफ हिस्ट्री, 12 भाग), आदि ने भी प्रयास किया। कालांतर में विथेल्म क्विकेन, वाल्टर गोट्ज, गुस्टेव क्लोज, लुइम हल्फेन, हेनकी बेर, पं. जवाहरलाल नेहरू आदि ने उपयुक्त विश्व-इतिहास प्रस्तुत किया। विलियम डूरण्ट का 'स्टोरी ऑफ सिविलाइजेशन' भी इस दिशा में सशक्त प्रयास है।

पं. नेहरू के 'विश्व इतिहास की झलक' को काफी सराहा भी गया है। टायन्बी ने विश्व सभ्यताओं को एक साथ देखने का प्रयास बहुत ईमानदारी से किया है। स्पेंगलर के शब्दों में, 'विश्व इतिहास अनंत निर्माणों और पुनर्निर्माण तथा मनुष्यों के अद्भुत उत्थान और पतन का चित्रपट है'। यहाँ हम स्पेंगलर को इतिहास को यांत्रिक, भौगोलिक और शारीरिक व्याख्याओं का संगम प्रस्तुत करते हुए पाते हैं। वे यूरोप को इतिहास का केंद्रस्थल नहीं मानते, अपितु पूरे विश्व को साथ लेते हैं और विश्व-संस्कृतियाँ का अध्ययन करते हैं। हेगल ने कॉन्ट और हेरदर की तरह विश्व-इतिहास का समर्थन किया है। उनके अनुसार विश्व का इतिहास एक बुद्धिसंगत प्रक्रिया है। अपनी इस मान्यता में हेगल का कहना है कि विश्व-इतिहास की मूल प्रवृत्तियाँ मानव-स्वतंत्रता का विकास है।

डॉ. गोविन्दचन्द्र पाण्डेय का कहना है प्रत्येक युग की ऐतिहासिक घटनाएँ चेतना द्वारा प्रभावित होती हैं और ये चेतना विश्व-मस्तिष्क को प्रभावित करके अपने अनुरूप कार्य करने के लिए प्रेरित, प्रोत्साहित तथा बाध्य करती है। विश्व इतिहास की यही वैचारिक-आचारिक प्रेरणा है, जिससे विश्वात्मा-विश्व चेतना में परिवर्तित हो जाती है, जिसे वह विश्व-इतिहास के रूप में जानते हैं।

इस तरह के विश्व इतिहास लेखन के प्रयास, व्यापक दृष्टि रखने वाले कुछ लेखकों द्वारा बीसवीं सदी में किए गए दिखाई देते हैं। एच. जी. वेल्स का विश्व इतिहास पर ग्रंथ प्रसिद्ध है। वह पूरा नहीं हो सका। विल ड्यूरंट का सभ्यता का इतिहास(History of Civilizations) नामक कई खंडों में प्रकाशित बृहद् ग्रंथ वैश्विक इतिहास का बेहतर उदाहरण है।

उपरोक्त के अतिरिक्त इतिहास विषय के विविध अन्य क्षेत्र भी हैं, जिनका भी अध्ययन होना चाहिए, जिससे इतिहास के प्रत्येक क्षेत्र का ज्ञान प्राप्त किया जा सके जैसे विधायी इतिहास, सैनिक इतिहास, राजनयिक इतिहास, संसदीय इतिहास, औपनिवेशिक इतिहास, कामनवेल्थ का इतिहास, विचारों का इतिहास, कला का इतिहास इत्यादि अनेक प्रकार के इतिहास के क्षेत्र हैं।

1.2.6 सारांश

1.2.6.1 इतिहास का स्वरूप

मानव जीवन के भूतकाल के सत्य को खोजना, उस सत्य की सामग्री को वैज्ञानिक पद्धति से संकलित करना और प्राप्त जानकारी को तार्किक रूप से, कालगणना को ध्यान में रखकर व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करना इतिहास का एक अन्य स्वरूप है एवं उसे प्रभावी, परिणामजनक एवं व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करना भी इतिहास के स्वरूप का एक महत्वपूर्ण भाग है। इसी कारण Approaches of History नामक ग्रंथ में फाइनबर्ग कहते हैं कि ''भूतकाल की मृत जानकारी को नीरस तरीके से प्रस्तुत करना इतिहास लेखन की विशेषता नहीं होनी चाहिए, बल्कि उस जानकारी पर भाष्य कर उस ऐतिहासिक प्रसंग का वर्णन रोचक ढंग से कर घटना को जीवंत कर देना ही इतिहास का स्वरूप होना चाहिए।'' अतः स्पष्टतः इसका अर्थ यह कि इतिहास का स्वरूप दो प्रकार का होता है - वैज्ञानिक एवं कलात्मक अर्थात् इतिहास विज्ञान भी है और कला भी।

1.2.6.2 इतिहास का अध्ययन क्षेत्र

भूतकालिक समाज संस्कृति एवं सभ्यता का चित्रण करना ही इतिहास का उद्देश्य होता है। किसी भी संस्कृति एवं सभ्यता से संबंधित भौगोलिक दशा, वातावरण, आर्थिक व्यवस्था, राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, प्रशासनिक, संवैधानिक, कानून, न्याय-व्यवस्था, सुरक्षा-व्यवस्था आदि का विवरण इतिहास में आवश्यक हो जाता है। इतिहासकार से अपेक्षा की जाती है कि इन सभी विषयों का उचित विवरण समाज के समक्ष प्रस्तुत करे। यदि संस्कृति एवं सभ्यता का क्षेत्र विस्तृत है तो इतिहासकार के लिए इन सभी प्रश्नों का उत्तर देना संभव नहीं है। इसीलिए आधुनिक इतिहासकारों ने इतिहास के अध्ययन क्षेत्र का वर्गीकरण किया है। इतिहास के अध्ययन क्षेत्र का यह वर्गीकरण वैज्ञानिक युग की देन है। ऐतिहासिक अन्वेषण की आधुनिक विधियों ने इतिहास के सामान्य ज्ञान की अपेक्षा विशिष्ट ज्ञान की उपादेयता को सिद्ध किया है। परिणामस्वरूप इतिहास का विभाजन न केवल प्राचीन मध्ययुगीन तथा आधुनिक काल में किया गया है बल्कि इसके अंतर्गत अनेक छोटी-छोटी शाखाओं पर शोध करके इतिहासकारों ने विशिष्ट ज्ञान प्राप्त किया है। इस प्रकार इतिहास का अध्ययन क्षेत्र निरंतर विकसित होता जा रहा है।

1.2.7 बोध प्रश्न

1.2.7.1 लघुउत्तरीय प्रश्न

1 इतिहास के स्वरूप के दो पक्ष बताइए।
2 'History is a story of things worthy to be remembered.' किसका कथन है?
3 'History is a narration of unique events.'किसका कथन है?
4 'History is not just a plain record of past events, but a significant record' किसका कथन है?
5 'History consists of ascertainable facts' किसका कथन है?
6 'Approaches to History' इस पुस्तक के लेखक कौन हैं?
7 'The writing of history is not simply a question of communicating dead information in a suitably dead manner, but of interpreting and bringing to life historical situations.' किसका कथन है?
8 'History as we know it today as a developed branch of learning-- is a comparatively new thing. It scarcerly existed before the 19th century.' किसका कथन है?
9 'Decline and fall of the Roman Empire' इस पुस्तक के लेखक कौन हैं ?
10 'घटनाएँ नहीं बोलतीं, इतिहासकार उन्हें बोलने लगता है।' किसका कथन है?

1.2.7.2 दीर्घउत्तरीय प्रश्न

1 इतिहास के स्वरूप की विस्तृत विवेचना कीजिए।
2 इतिहास के अध्ययन क्षेत्र से आप क्या समझते हैं? विवेचना कीजिए।
1 राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास की विवेचना कीजिए।
2 सामाजिक एवं धार्मिक इतिहास की विवेचना कीजिए।
3 आर्थिक एवं सामाजिक इतिहास की विवेचना कीजिए।
4 विश्व इतिहास के महत्व की विवेचना कीजिए।
5 क्षेत्रीय इतिहास के महत्व की विवेचना कीजिए।
6 संवैधानिक इतिहास की व्याख्या करते हुए उसके महत्व पर प्रकाश डालिए।
7 साँस्कृतिक इतिहास की व्याख्या करते हुए उसके महत्व पर प्रकाश डालिए।
8 राजनीतिक इतिहास से आप क्या समझते हैं? विस्तार से विवेचना कीजिए।

1.2.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शेख अली बी.: हिस्ट्री: इट्स थिओरी एंड मेथड, ट्रिनिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1978
2. शर्मा तेजराम: हिस्टोरिओग्राफी ए हिस्ट्री ऑफ हिस्टोरिकल राइटिंग, नई दिल्ली, 2005
3. कुप्पुरम जी. एवं कुमुदमनी के.: मेथड्स ऑफ हिस्टोरिकल रिसर्च, नई दिल्ली, 2002
4. मनिक्कम वी.: ऑन हिस्ट्री एंड हिस्टोरिओग्राफी, मदुरई, 2003
5. श्रीवास्तव बी. के.: इतिहास लेखन: अवधारणा, विधायें एवं साधन, आगरा, 2008
6. श्रीधरन ई.: इतिहास-लेख, नई दिल्ली, 2011

7. कोठेकर शांता: इतिहास तंत्र एवं विज्ञान, नागपुर, 2015
8. पान्डे जी. सी. (संपादित): इतिहास स्वरूप एवं सिद्धांत, जयपुर, 1973
9. राधेशरण: इतिहास और इतिहास लेखन, भोपाल, 2010
10. चौबे झारखंड: इतिहास दर्शन, वाराणसी, 2001
11. सिंह परमानंद इतिहास दर्शन, दिल्ली, 1992
12. कार ई. एच.: इतिहास क्या है, दिल्ली, 1962
13. दुबे जे. एन.: इतिहास विज्ञान, वाराणसी, 1988

खंड - 1 इतिहास व इतिहास लेखन
इकाई - 3 इतिहास तथा इसके सहायक शास्त्र
(पुरातत्व, अभिलेखशास्त्र, प्रतिमाशास्त्र एवं मुद्राशास्त्र)

इकाई की रूपरेखा

1.3.1 उद्देश्य
1.3.2 प्रस्तावना
1.3.3 इतिहास का अन्य विषयों से संबंध
1.3.3.1 इतिहास एवं अन्य विषय
1.3.3.2 इतिहास के संबद्ध शास्त्र
1.3.3.3 इतिहास के सहायक शास्त्र
1.3.4 इतिहास और पुरातत्वशास्त्र
1.3.5 इतिहास और पुरालेखशास्त्र
1.3.6 इतिहास और प्रतिमाशास्त्र
1.3.7 इतिहास और मुद्राशास्त्र
1.3.8 सारांश
1.3.9 बोध प्रश्न
1.3.9.1 लघुउत्तरीय प्रश्न
1.3.9.2 दीर्घउत्तरीय प्रश्न
1.3.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1.3.1 उद्देश्य

इतिहास एक विस्तीर्ण विषय है, उसकी प्रमुख विषय-वस्तु मानवीय कार्य व्यापार एवं समाज है। संपूर्ण मानवीय कार्य व्यापार एवं मानव समाज के अध्ययन की दृष्टि से इतिहास अन्यसभी विषयों यथा - पुरातत्व, भूगोल, मानवशास्त्र, समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान, दर्शनशास्त्र, भाषा विज्ञान, प्राकृतिक विज्ञान एवं अनुप्रयुक्त विज्ञान के साथ-साथ साहित्य से भी घनिष्ठ रूप से संबंधित है। इतिहास के इस फैलते हुए क्षितिज के मद्देनजर वर्तमान में एक इतिहासकार का कार्य दोहरा हो जाता है। एक इतिहासकार अथवा इतिहास के विद्यार्थी के लिए वर्तमान में आवश्यक है कि वह इतिहास के साथ-साथ अंत: अनुशासनात्मक उपागम (Inter-disciplinary Approach) के तहत इतिहास के सहायकशास्त्र जैसे पुरातत्व अभिलेखशास्त्र, प्रतिमाशास्त्र एवं मुद्राशास्त्र का भी अध्ययन करें। प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य इतिहास तथा उसके सहायक शास्त्रों पर प्रकाश डालना है।

1.3.2 प्रस्तावना

जिलर महोदय ने इतिहास को एक केंद्रीय विषय माना है, जबकि ट्रेवेलियन महोदय ने इतिहास को सभी विषयों का निवास गृह कहा है। जहाँ पुरातात्विक स्रोत इतिहास लेखन के सबसे प्रामाणिक साक्ष्य हैं, वहीं पुरातत्व इतिहास की सर्वश्रेष्ठ कसौटी है। इतिहास से संबंधित विषयों का वर्गीकरण इतिहास के विद्वान दो भागों में करते हैं। प्रथम भाग में राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र एवं

मनोविज्ञान आदि विषय शामिल होते हैं, जबकि द्वितीय भाग में भूगोल, मानवशास्त्र, पुरातत्वशास्त्र, अभिलेखशास्त्र, प्रतिमाशास्त्र एवं मुद्राशास्त्र आदि विषय शामिल होते हैं। प्रथम भाग को अंग्रेजी में Allied Subject (संबद्ध विषय) और द्वितीय भाग को Ancillary अथवा Auxiliary Subject (सहायक विषय) कहते हैं। प्रस्तुत इकाई में इतिहास तथा इसके सहायक शास्त्र पुरातत्व, अभिलेखशास्त्र, प्रतिमाशास्त्र एवं मुद्राशास्त्र का विवरण प्रस्तावित है साथ ही अंत में इकाई का सारांश, बोध प्रश्न एवं संदर्भ ग्रंथ सूची भी दी जाएगी।

1.3.3 इतिहास का अन्य विषयों से संबंध

सर्वविदित है कि इतिहास का विषय क्षेत्र बहुत ही व्यापक है। ब्यूरी ने कहा था कि इतिहास में न केवल राजनीति, अपितु धर्म, कला, शासन, कानून व परंपराओं के साथ ही व्यक्ति और समाज की बौद्धिक मौलिक और भावात्मक क्रियाओं का अध्ययन होता है। इसलिए इसका संबंध अन्य विषयों से होना स्वयं सिद्ध है। वास्तव में इतिहास मनुष्य के समस्त संगठित सामाजिक समूहों के सभी पहलुओं का अध्ययन करता है। गैरोन्सकी ने ठीक ही लिखा है कि ''इतिहास विगत मानवीय समाज का मानवतावादी एवं व्याख्यात्मक अध्ययन है जिसका उद्देश्य वर्तमान के विषय में अंतर्दृष्टि प्राप्त करना तथा अनुकूल भविष्य को प्रभावित करने की आशा है।'' इस प्रकार मानव समाज के अध्ययन की दृष्टि से इतिहास समस्त समाज विज्ञानों से घनिष्ठतया संबद्ध है।

1.3.3.1 इतिहास एवं अन्य विषय

श्री जॉन्सन महोदय के अनुसार इतिहास सभी अन्य सामाजिक विज्ञानों की पृष्ठभूमि अथवा संगम स्थल रहा है। ज्ञान की प्रत्येक शाखा (विषय) चाहे जितनी स्वतंत्र हो, लेकिन अन्य ज्ञानशाखाओं (विषयों) से कम या अधिक संबंधित होती ही है तथा वह अन्य ज्ञानशाखाओं (विषयों) को कुछ सीमा तक प्रभावित भी करती है। पिछले कुछ दशकों में अंतर विषयक के अध्ययन का महत्व विशेष रूप से दिखाई देता है। इतिहास के विषय में विचार करते समय इतिहास को शास्त्रीय विषयों में सम्मिलित करें या नहीं? क्या इतिहास शास्त्र है? यही नहीं, तो क्या इतिहास का समावेश सामाजिक शास्त्रों में करें या नहीं? इतिहास की लेखन प्रणाली शास्त्रीय है या नहीं? आदि अनेक विवादास्पद प्रश्न उठाए जाते हैं परंतु इतिहास भूतकालीन मानव जीवन का अध्ययन करने वाला विषय होने से और सभी विषय मानव जीवन से जुड़े होने से इतिहास का अन्य विषयों में केवल मानविकी शास्त्रों से ही नहीं, बल्कि भौतिक शास्त्रों से भी निकट का संबंध है अतः यह मुद्दा विवाद से परे है। प्रमुख विचारक बेकन के अनुसार ये सभी विषय मानव के विकास में अपने-अपने तरीके से योगदान देते हैं।

1.3.3.2 इतिहास के संबद्ध शास्त्र

इतिहास के संबद्ध शास्त्र या विषय अधिकांशतया मानव जीवन के विभिन्न अंगों का अध्ययन करने वाले विषय हैं, इसलिए उनका इतिहास से निकट का संबंध है। किसी भी काल, विषय अथवा व्यक्ति का इतिहास लिखना हो तो शोधकर्ता को तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक एवं भौगोलिक स्थिति, मूलभूत वैचारिक अवधारणा एवं व्यक्ति अथवा समूह की मानसिकता का अध्ययन करना होता है। अतः संबद्ध विषय का इतिहास से गहरा संबंध होता है क्योंकि उनके अध्ययन का केंद्रबिंदु भी मनुष्य ही होता है। किंतु इतिहास एवं उसके सहायक शास्त्रों के मध्य पारदर्शक दीवार होती है। भूगोल, मानवशास्त्र, पुरातत्वशास्त्र, अभिलेखशास्त्र, मुद्राशास्त्र, भाषाशास्त्र, प्रतिमाशास्त्र आदि शास्त्र इतिहास के सहायक शास्त्र माने जाते हैं, क्योंकि उनके अध्ययन का केंद मनुष्य नहीं है, लेकिन पूर्वकालीन मानव का

अध्ययन यथार्थ रूप से करने में ये शास्त्र मूल एवं निश्चित जानकारी इतिहासकार को देते हैं निष्कर्षतः उनके स्वतंत्र अनुसंधान से एकत्रित ज्ञान इतिहास लेखन को मूल लेखनकार्य में लाभप्रद होता है। ई एच. कार ने इसे 'कच्चा माल' कहा है।

इतिहास के सहायक शास्त्रों में मुख्य रूप से राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, साहित्य, भूगोल, मानवशास्त्र आदि का समावेश किया जाता है। 19 वीं सदी में लिओपोल्ड रांके जैसे इतिहास अध्येता ने इतिहास के शास्त्रीय स्वरूप पर बल दिया। अतः 20 वीं सदी में जे. बी. बरी, ई. एच. कार, मार्क ब्लॉच नामक इतिहासज्ञ इतिहास के सामाजिक शास्त्र होने पर दृढ़ता से बल देते दिखाई देते हैं।

1.3.3.3 इतिहास के सहायक शास्त्र

इतिहास लेखन के लिए मूल जानकारी प्रदान करने वाले इतिहास के सहायक शास्त्र भी बहुत महत्वपूर्ण हैं। विषयों के रूप में इन शास्त्रों का विकास विशेष रूप से बीसवीं सदी में हुआ। उनकी कार्य प्रणाली पूर्णतः वैज्ञानिक स्वरूप की है। उनके द्वारा अचूक ऐतिहासिक प्रमाण इतिहासकार को उपलब्ध होते हैं। उन्हें इतिहास के पूरक शास्त्र भी कहा जाता है। ऐसी अध्ययन शाखाओं में कालगणनाशास्त्र (Chronology), मुद्राशास्त्र (Numismatics), पुरातत्वशास्त्र (Archaeology), अभिलेखशास्त्र (Epigraphy), लिपिशास्त्र (Paleography), मानव शास्त्र (Anthropology) एवं प्रतिमाशास्त्र (Iconography) आदि का मुख्य रूप से समावेश होता है। इसके अलावा जीवविज्ञान (Biology), रसायनशास्त्र (Chemistry), भौतिकशास्त्र (Physics), पारिस्थितिकी शास्त्र (Ecology), आदि विज्ञान भी अचूक प्रमाण प्राप्त करने तथा प्रमाणों की विश्वसनीयता सिद्ध करने में उपयोगी होते हैं।

इतिहास तथा उसके सहायक शास्त्रों जैसे - पुरातत्व, पुरालेखशास्त्र, प्रतिमाशास्त्र और मुद्राशास्त्र का विवरण निम्नानुसार वर्णित है।

1.3.4 इतिहास और पुरातत्वशास्त्र

20 वीं सदी के उत्तरार्द्ध में पुरातत्व एक महत्वपूर्ण विषय के रूप में विकसित हुआ है यद्यपि स्वतंत्र विषय के रूप में इसे मान्यता प्राप्त करना अभी भी शेष है। पुरातत्व शब्द वास्तव में अंग्रेजी के आर्क्यालॉजी का समानार्थी है। अंग्रेजी का आर्क्यालॉजी यूनानी भाषा के आर्केयास + लोगस (Archaeos + logus) से निर्मित है जिसका शाब्दिक अर्थ पुरातन ज्ञान है। पुरातत्व का विषय के रूप में विकास पुरावशेषों के संकलन एवं अध्ययन से प्रारंभ होता है। समय के प्रवाह के साथ इसकी परिकल्पना एवं विषय विस्तार में परिवर्तन तथा परिवर्धन होता गया। पुरातत्व को अब प्रायः इतिहास के पुनर्निर्माण के निमित्त पुरावशेषों का वैज्ञानिक अध्ययन कहकर परिभाषित करते हैं। यह मानव संस्कृति एवं इतिहास को एक नवीन आयाम प्रदान करता है, विशेषतः कालक्रम तथा संस्कृति के परिप्रेक्ष में। लिपि की उत्पत्ति के पूर्व का संपूर्ण इतिहास जो प्रागैतिहास के अंतर्गत आता है, उसका एक मात्र आधार पुरातत्व है।

पुरातत्व तथा इतिहास दोनों का मूल उद्देश्य मानव के विकास का अध्ययन करना है इसीलिए दोनों अत्यंत सन्निकट हैं। दोनों की पद्धति भी समान है तथा कालानुक्रम (Chronology) उनकी आधारशिला है। पुरातत्व इतिहास का पूरक भी है। जहाँ इतिहास की गति अवरूद्ध हो जाती है वहाँ पुरातत्व ही प्रागैतिहास के माध्यम से इतिहास को आगे बढ़ाता है। इतिहास के संपूर्ण स्रोत प्रमाणों पर आधारित होते हैं। जबकि मानव के विकास के इतिहास में लिपि का आविर्भाव लगभग तीन हजार वर्षों पूर्व ही हुआ है जो मानव के विकास के संपूर्ण काल का 0.1 प्रतिशत से भी कम है। 99.9 प्रतिशत से भी अधिक काल प्रागैतिहास के अंतर्गत आता है जिसका स्रोत मात्र पुरातत्व है। यहाँ यह कहना अनुचित

नहीं होगा कि मानव विकास के इतिहास में प्रागैतिहासिक काल अत्यंत महत्वपूर्ण था क्योंकि आधुनिक विकास की आधारशिला का निर्माण इसी समय हुआ था। पशुपालन एवं कृषि, मृद-भाण्ड तथा चक्के आदि का आविष्कार भी इसी काल में हुआ था।

प्रागैतिहासिक एवं आद्यैतिहासिक काल के इतिहास लेखन के लिए जानकारी उपलब्ध कराने वाले शास्त्र के रूप में पुरातत्वशास्त्र का अत्यंत महत्व है। अति प्राचीन सभ्यता की लिखित जानकारी उपलब्ध न होने से उस काल की वस्तुओं, अवशेषों को खोजना, वहाँ उत्खनन कर पुरातन वस्तुओं के अवशेष इकट्ठा करना, उन पर वैज्ञानिक पद्धति से प्रक्रिया कर उनका काल निर्धारण करना पुरातत्वशास्त्र की कक्षा है। पुरातन सभ्यता के प्रदेश में उत्खनन से प्राचीन वस्तुओं के अवशेष प्राप्त किए जाते हैं। पत्थर अथवा विभिन्न धातुओं के छोटे-बड़े हथियार, मिट्टी के बर्तन, खपरैलों के टुकड़े, मूर्तियों के भग्नावशेष, मणि जैसी विभिन्न वस्तुएँ उत्खनन में हाथ लगती हैं। उन पर वैज्ञानिक प्रक्रिया कर पता किया जाता है कि वे किस कालखंड की हो सकती हैं, उनका उपयोग किस बात के लिए किया जाता होगा, इसी तरह की वस्तुएँ क्या अन्यत्र भी पाई जाती हैं, इन प्रश्नों के उत्तर वैज्ञानिक ढंग से खोज कर प्राचीन काल के मानव जीवन का चित्र रेखांकित करने में सहायता मिलती है। इसी तरह मंदिर, प्राचीन इमारतें, गुफाएँ, स्तूप, गढ़ियाँ आदि भूस्तर पर ध्वस्त अवशेषों का अध्ययन भी इस शास्त्र की कक्षा में आता है। इससे पूर्वकालीन जीवनशैली की जानकारी मिलती है।

ब्रिटिश शासकों ने भारत की प्राचीन सभ्यता की खोज करने के लिए 1861 ई. में अलेक्जेंडर कनिंघम नामक पुरातत्वविद् की नियुक्ति की थी और बाद में इस कार्य में गति लाने के लिए लॉर्ड कर्जन के शासन काल में एक स्वतंत्र विभाग स्थापित किया गया। इस दृष्टि से प्राचीन भारतीय सभ्यता की खोज का श्रेय ब्रिटिश शासकों को देना होगा। सिंधु सभ्यता पर प्रकाश डालने का मौलिक कार्य सर जॉन मार्शल एवं डॉ. राखालदास बॅनर्जी ने किया। बीसवीं सदी में पुरातत्वविदों की पीढ़ी यहाँ तैयार हुई। केंद्रीय एवं राज्य स्तर पर पुरातत्व विभाग कार्यरत हैं तथा प्रागैतिहासिक काल के मानव जीवन की खोज की जा रही है। शासकीय पुरातत्व विभाग जैसा ही मूल्यवान कार्य डेक्कन कॉलेज, पुणे का पुरातत्व विभाग एवं सागर विश्वविद्यालय का प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग कर रहा है। वर्तमान में समुद्री पुरातत्व (Navel archeology) का भी अध्ययन हो रहा है। अनेक स्थानों पर समुद्र तल में स्थित पुरावशेषों की खोज करने के प्रयास चल रहे हैं। इसी से द्वारिका की खोज हुई है। पुरातत्ववेत्ता पुरातन अवशेषों का वैज्ञानिक अध्ययन करने के लिए हवाई छायाचित्रण (Aerial Photography) जैसी आधुनिक तकनीकों का भी उपयोग कर रहे हैं। वास्तविकता तो यह है कि पुरातत्व के बिना इतिहास का सम्यक् ज्ञान संभव ही नहीं है।

1.3.5 इतिहास और पुरालेखशास्त्र

अभिलेख/पुरालेख एवं ताम्रपत्र इतिहास निर्माण के लिए अत्यंत उपयुक्त एवं विश्वसनीय साधन माने जाते हैं। प्राचीनकाल में महत्वपूर्ण घटनाएँ अभिलेखों में उत्कीर्ण की जाती थीं। ये लेख संक्षेप में होने के बावजूद उन पर दर्ज सूचनाएँ स्पष्ट रूप से एवं निःसंदिग्ध तरीके से तथा बिना किसी काट-पीट के होती हैं। उन पर घटना के साथ काल भी दर्ज होता था। अतः यह प्रमाण समकालीन होने से अत्यंत विश्वसनीय माना जाता है। किंतु अभिलेखों के निर्माण के लिए लिपि का ज्ञान होना अति आवश्यक था अतः संक्षेप में पुरालिपि शास्त्र पर विचार करना उचित होगा।

पुरालिपि शास्त्र बड़ा ही हृदयग्राही और शिक्षाप्रद विषय है। यह लेखन कला का अध्यनकर्ता है। सभ्यता की प्रगति में लेखन कला मनुष्य को पशु से अलग करती है। यही मनुष्य को पीढ़ी दर पीढ़ी जातीय धरोहर के परिरक्षण, संबर्द्धन और संप्रेषण का साधन देती है। यह उन महत्वपूर्ण आविष्कारों में से है जिससे मानव नियति का निर्माण हुआ है क्योंकि संस्कृति के विस्तार और ज्ञान के प्रसार का यही सबसे स्थायी साधन सिद्ध हुई है। ज्ञान की साधना के क्रम में मानवीय प्रयास के सही मूल्याकंन के लिए इस कला की उत्पत्ति और विकास का इतिहास जानना वांछनीय है।

भारत में पाए गए प्राचीन लेखन के सभी अवशेष पत्थर पर हैं। प्राचीन ब्राह्मण साहित्य और ग्रंथ पत्रों, छाल तथा बाद में हाथ से बनाए गए कागज पर लिखे जाते थे। इस प्रकार के अस्थिर और नश्वर पदार्थो की रक्षा सुदीर्घ काल तक नहीं की जा सकती। पुरानी हस्तलिखित प्रतियाँ कुछ समय बाद नष्ट हो जाती थी और नई पीढ़ी के लिए उनकी प्रतिलिपि कर ली जाती थी। इस प्रकार लिपि भी समयानुसार बदलती रहती थी।

इस प्रकार देश की परम्पराएँ, विदेशी लेखकों के साक्ष्य, साहित्यिक प्रमाण तथा अवशिष्ट लेख सभी भारत में लेखन की अति प्राचीनता को सिद्ध करते हैं। यह प्राचीनता ईसा पूर्व की चोथी सहस्त्राब्दी तक जाती है। प्राचीनतम भारतीय लेखन के उदाहरण, सुमेर, मिस्र और एलाम के उदाहरणों के समकालीन ठहरते हैं।

लेखन के लिए सामग्री का चुनाव दो बातों पर निर्भर था- (1) देश के विभिन्न भागों में उपयुक्त सामग्री की सुलभता, यद्यपि जब एक सामग्री देश के एक भाग में प्रचलित हो जाती है तो वह दूसरे भागों में पहुँच ही जाती है तथा (2) अभिलेखों की प्रकृति, उदाहरणार्थ लंबी-लंबी पुस्तकें तथा साधारण पत्र लचीले कोमल तथा शीघ्र नष्ट होने वाली सामग्री पर तथा धार्मिक अनुशासन, राजाओं की प्रशस्तियाँ, व्यावहारिक लेख इत्यादि पत्थर, ताँबा, लोहा, चाँदी जैसी चिरस्थायी वस्तुओं पर उत्कीर्ण किए जाते थे। ये सामग्रियाँ उपयुक्त विवरण के साथ नीचे निर्दिष्ट की गई है।

सामान्य रूप से अभिलेखों के दो प्रकार थे (1) राजकीय या आधिकारिक (2) लौकिक या व्यक्तिगत। प्राचीन भारतीय अभिलेखों का वर्गीकरण इन शीर्षकों के अंतर्गत हो सकता है। बाद के धर्मशास्त्र ग्रंथ भी इस वर्गीकरण को पुष्ट करते हैं। उदाहरण के लिए स्मृतिचन्द्रिका में उद्धृत वसिष्ठ कहते हैं ‘‘ लेख दो प्रकार के हैं, लौकिक (लोगों के) और राजकीय (राजाओं के)’’। संग्रहकार के रूप में उद्धृत कुछ लेखकों का वसिष्ठ से मतैक्य है, वे दो भागों में लेखों (अभिलेखों) को विभाजित करते हैं-(1) राजकीय और जनपदीय (जनपद संबंधी)। राजकीय लेख या तो स्वयं राजाओं द्वारा या उनके सामंतों, प्रांतीय शासकों तथा उच्च मंत्रियों द्वारा लिखवाए जाते थे, जिन्हें ऐसा करने का अधिकार था। लौकिक लेखों के लिए जनसाधारण उत्तरदायी थे। यद्यपि अनेक अंशों में वे राजकीय लेखों का अनुसरण करते थे। राजकीय लेख पुनः चार भागों में विभाजित किए जाते थे।

(1) शासन (मध्यकाल में भूमिदानपत्र के अर्थ में इसका प्रयोग होता था)

(2) जयपत्र (व्यावहारिक निर्णय)

(3) आज्ञापत्र (आदेश)

(4) प्रज्ञापन पत्र (घोषणा)

अशोक का कलिंग शिलालेख कलिंग युद्ध की जानकारी देने की दृष्टि से महत्वपूर्ण सिद्ध होता है। इस तरह उत्कीर्ण लेख, स्तंभों, किलों, मंदिरों आदि पर मिलते हैं। ताम्रपत्र अर्थात् ताँबे के पतरे पर

लिखा गया लेख, मुख्य रूप से आज्ञापत्र, वचनपत्र, दानपत्र के रूप में होता है। कभी-कभी उन पर घटनाएँ भी दर्ज होती हैं।

इन शिलालेखों तथा ताम्रपत्रों पर उत्कीर्ण शब्द ब्राह्मी, खरोष्टी जैसी प्राचीन लिपियों में होते हैं। इन लिपियों की जानकारी के बिना उनका अर्थ स्पष्ट नहीं होता। ब्राह्मी लिपि का स्पष्टीकरण इंग्लिश ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन काल में ब्रिटिश अधिकारी जेम्स प्रिन्सेप नामक अभिलेखशास्त्री ने परिश्रमपूर्वक किया। उसने और उसके बाद आए विशेषज्ञों ने अनेक अभिलेखों एवं ताम्रपत्रों का अर्थ स्पष्ट किया। मध्ययुगीन भारत के कुछ उत्कीर्ण लेख पर्शियन भाषा में भी मिलते हैं। आज भी किसी इमारत का शिलान्यास करते समय अथवा किसी परियोजना की बुनियाद रखते समय अथवा उद्घाटन करते समय, संगमरमर पर उस प्रसंग की तिथि की और किसके हाथों शिलान्यास हुआ इसकी स्पष्ट जानकारी दर्ज होती है। कल के इतिहास लेखन के लिए यह निःसंदिग्ध प्रमाण है। भारत में बड़े पैमाने पर इस तरह के उत्कीर्ण लेख प्राप्त हुए हैं एवं उन्हें एकत्रित तथा संकलित करने का कार्य पुरातत्वविदों ने किया है।

पत्थर और ताँबे पर के जो प्राचीनतम अभिलेख प्राप्त हुए हैं वे स्वाभाविक और सरल है। उनमें कोई नियमबद्ध वाक्यपद्धति, शैली स्वरूप या विषय नहीं था। कालांतर में भारतीय लिपि विज्ञान द्वारा कपितय सिद्धांतों का विकास हुआ जिससे उसका स्वरूप और विषय नियंत्रित होता था। लेखकों और खोदने वालों ने साधारणतः इस प्रकार से विकसित सिद्धांतों का अनुसरण किया। इस विकास का कारण साहित्यिक, धार्मिक और व्यावहारिक आवश्यकताएँ थीं। अतः स्पष्ट है कि इतिहास एवं अभिलेखशास्त्र एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

1.3.6 इतिहास और प्रतिमाशास्त्र

प्रतिमाशास्त्र द्वारा प्राचीन भारतीय धार्मिक स्थिति एवं कला पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। भारत का प्राण धर्म ही है। अतएव साहित्यिक रचना में धार्मिक चर्चा की उपलब्धि स्वाभाविक है। इससे स्पष्ट होता है कि भारत के धार्मिक इतिहास को जानने में प्रतिमाशास्त्र का विशेष योगदान है। मठ अथवा मंदिरों के समस्त विषयों की चर्चा करें तो उससे किसी भी प्रतिमा के लक्षण का परिज्ञान हो जाता है। प्राचीन साहित्य की कई रचनाओं के रचयिता ऋषि कहे गए हैं। उन रचनाओं में प्रतिमा लक्षण की चर्चा है। अतएव ऋषियों को मूर्तिशास्त्र का जन्मदाता कह सकते हैं। अतः प्राचीन भारतीय कला एवं धर्म का शोधपरक अध्ययन के लिए प्रतिमाशास्त्र का महत्वपूर्ण योगदान है। इसीलिए प्रतिमाशास्त्र को इतिहास का सहायक विषय कहा जाता है।

प्रतिमाशास्त्र की जानकारी पुराणों, आगम तथा तंत्र साहित्य से हो जाती है। पुराणों में मत्स्यपुराण के अंतर्गत मूर्तिविज्ञान की विस्तृत चर्चा की गई है। इसके दस अध्यायों में मूर्तियों की बनावट एवं माप आदि का वर्णन है। मूलतः यह सत्य है कि मूर्ति से पूर्व प्रतीक का पूजन होता था, जैसे-शालिग्राम, शिवलिंग आदि। मत्स्यपुराण में शिव के मनुष्याकार प्रतिमा-संबंधी विवरण प्रमुख रूप से प्रस्तुत किया गया है। अग्निपुराण का विस्तृत वर्णन भी पठनीय है। कुल सोलह अध्यायों में तेरह अध्याय प्रतिमा निर्माण की चर्चा करते हैं। इसमें वैष्णव एवं शैव मूर्तियों के अतिरिक्त सूर्य तथा देवियों की प्रतिमा-संबंधी विवरण मिलता है। इस प्रसंग में विष्णुधर्मोत्तर पुराण द्वारा विश्लेषणात्मक ढंग से विस्तार-पूर्वक बहुत ही सुंदर रीति से प्रतिमा निर्माण पर प्रकाश डाला गया है।

प्रसिद्ध विद्वान श्री गोपीनाथ राव ने आगम साहित्य का सविस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है। पुराणों के सदृश इस ग्रंथसमूह में वास्तु एवं तक्षण कला का वर्णन है। भारतीय संस्कृति में दो स्वरूप से पूजा का

विधान है। वैदिकी तथा तांत्रिकी। प्रथम प्रकार में यज्ञ तथा अग्नि में हवन की परिपाटी है तथा तांत्रिकी में यंत्र का पूजन तथा मंत्र उच्चारण होता है। तंत्र शब्द, शास्त्र का भी बोधक है, अतः वैष्णव, शैव तथा शाक्त तंत्र का उल्लेख मिलता है। वैष्णव मत का संकलन पंचरात्र संहिता में तथा शैव उपदेशों का संग्रह आगम में मिलता है। कालांतर में तंत्र का सीधा संबंध शाक्तमत से मान लिया गया। तंत्र साहित्य भी प्रतिमा निर्माण का एक प्रधान स्रोत है जिसका समुचित अध्ययन न हो पाया है। तंत्र साहित्य भी लंबाचौड़ा है। उनका अनुशीलन ब्राह्मण देवी-देवता की प्रतिमा पर पर्याप्त प्रकाश डालता है। उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्रतिमाशास्त्र, इतिहास का सहायक विषय है एवं दोनों आपस में घनिष्ठ रूप से संबंधित हैं।

1.3.7 इतिहास और मुद्राशास्त्र

भारतीय इतिहास में सिक्कों का महत्तवपूर्ण स्थान है। सिक्कों पर अंकित लेखों से ही भारतीय लिपि का ज्ञान प्राप्त हुआ। यद्यपि शिलाओं तथा स्तंभों पर अशोक की प्रशस्तियाँ खुदी थीं, परंतु उससे किसी को कुछ पता न चल सका। सर्वप्रथम पश्चिमोत्तर प्रांत से प्राप्त सिक्कों पर क्रमशः यूनानी तथा खरोष्ठी लिपि थी। पुरातत्त्ववेत्ताओं ने यूनानी लिपि के आधार पर खरोष्ठी लिपि की वर्णमाला तैयार की। जिन सिक्कों पर एक ओर खरोष्ठी लिपि तथा दूसरी ओर ब्राह्मी लिपि पाई गई, उसके सहारे खरोष्ठी लिपि की वर्णमाला के आधार पर ब्राह्मी लिपि का ज्ञान हो गया। इसका मूल कारण यह था कि दोनों लिपियों में एक ही बात लिखी गई थी। राजा के नाम तथा उपाधि एक से थे। अतः खरोष्ठी लिपि को जानकर ब्राह्मी लिपि के अक्षरों का पता लगाना सरल हो गया। यदि सिक्कों पर लेख न खुदे रहते तो शायद भारतीय लिपियों का ज्ञान असंभव था।

पूर्वकालीन घटनाओं पर प्रकाश डालने के लिए मुद्राशास्त्र का उपयोग होता है। प्राचीन एवं मध्यकाल में राज्यारोहण, युद्ध विजय जैसे महत्वपूर्ण प्रसंगों पर नई मुद्राएँ ढाली जाती थीं। उन पर कभी कुछ शब्द अथवा प्रतिमा उत्कीर्ण होती थी। इससे उस काल की लिपि तथा धार्मिक संकल्पनाओं की जानकारी मिलती है। इसी तरह मुद्रा के लिए प्रयुक्त धातु से तत्कालीन आर्थिक स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है। संपन्नता के काल में सोने-चाँदी के सिक्के ढाले जाते थे। कम मूल्य की मुद्राएँ तांबे की हुआ करती थीं। इसी तरह भारत में मिले यूनानी सिक्कों से सातवाहन काल में भारत का विदेशों से व्यापार का पता चलता है। पुरातात्विक उत्खनन से प्राप्त गुप्त काल तथा मुगल काल में प्रचलित स्वर्ण एवं रजत मुद्राएँ तत्कालीन आर्थिक प्रगति तथा संपन्नता की सूचक हैं।

भारतवर्ष में विभिन्न वंश के शासकों ने राजकीय सिक्के तैयार कराए। शासकों ने अपने विचारधारा के अनुकूल सिक्कों पर चित्र आदि अंकित करवाए तथा धर्म-विश्वास के अनुसार देवी या देवता को उस पर स्थान दिया। सिक्कों तथा मुहरों पर अंकित पशु, पक्षी अथवा देवता की आकृति से उस शासक की धार्मिक भावनाएँ ज्ञात हो जाती हैं।

इस तथ्य में कोई संशय नहीं है कि इतिहास निर्माण में सिक्के कितने सहायक होते हैं। इसके अतिरिक्त सिक्कों के अध्ययन से विभिन्न काल में भारत में प्रचलित धार्मिक मतों का परिचय भी मिलता है। ये तत्कालीन धार्मिक संप्रदाय तथा राजधर्म की ओर संकेत करते हैं। सिक्कों पर अंकित चित्र(चिह्न) तथा खुदे हुए लेखों से उस काल में प्रचलित धार्मिक मत के विषय में अनेक बातें कही जा सकती हैं। भारत के सबसे प्राचीन सिक्कों (कार्षापण) पर जो चिह्न खुदे हैं वे सब किसी न किसी उस राजवंश, स्थान, श्रेणी (संघ) अथवा सुनार से संबंध रखते हैं जिन्होंनें मुद्राओं का निर्माण किया था। उन चिह्नों से धर्म की

कोई निश्चित बातें नहीं कही जा सकतीं किंतु चक्र से सूर्य, वृषभ से शैवमत एवं स्वस्तिक से ब्राह्मण धर्म का अनुमान लगाया जा सकता है।

सिक्कों के अध्ययन से इतिहास तथा धर्म-संबंधी तथ्यों की चर्चा की जा चुकी है। इनसे कुछ ऐसे तथ्यों का पता लगता है जो साधारणतया मालूम नहीं होते, परंतु सूक्ष्म रूप से विचार करने पर प्रकट हो जाते हैं। इसका ज्ञान हो जाना चाहिए कि सिक्के किस अवसर पर तैयार किए गए थे। कार्षापण पर जो चिह्न मिलते हैं, उनका संबंध स्थान तथा श्रेणी विशेष से था। उन्हीं सिक्कों पर 'मेरू पर्वत' का चिह्न मुद्रा के इतिहास में विशेष स्थान रखता है। यह एक प्रकार से सिद्ध हो चुका है कि 'मेरू पर्वत' मौर्यवंश का राज्य चिह्न था। इसको उत्तरी भारत तथा दक्षिणी भारत के शासकों ने भी अपनाया। पश्चिम भारत के शक क्षत्रप राजाओं ने मेरू पर्वत को मध्य में रखकर सूर्य तथा चन्द्र से सीमित कर दिया। इस तरह छः सौ वर्षो तक यह चिह्न विभिन्न राजवंशों के सिक्कों पर स्थान पाता रहा। अतः इन विवरणों से भली भांति यह स्पष्ट हो जाता है कि मुद्राशास्त्र, इतिहास का सहायकशास्त्र है एवं दोनों घनिष्ठ रूप से संबंधित हैं।

1.3.8 सारांश

इतिहास से संबंधित विषयों का वर्गीकरण इतिहास के विद्वान दो भागों में करते हैं। प्रथम भाग में राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र एवं मनोविज्ञान आदि विषय शामिल होते हैं, जबकि द्वितीय भाग में भूगोल, मानवशास्त्र, पुरातत्वशास्त्र, अमिभलेखशास्त्र, प्रतिमाशास्त्र एवं मुद्राशास्त्र आदि विषय शामिल होते हैं।

सर्वविदित है कि इतिहास का विषय क्षेत्र बहुत ही व्यापक है। ब्यूरी ने कहा था कि इतिहास में न केवल राजनीति, अपितु धर्म, कला, शासन, कानून व परंपराओं के साथ ही व्यक्ति और समाज की बौद्धिक मौलिक और भावात्मक क्रियाओं का अध्ययन होता है। इसलिए इसका संबंध अन्य विषयों जैसे पुरातत्वशास्त्र, अभिलेखशास्त्र, प्रतिमाशास्त्र एवं मुद्राशास्त्र से होना स्वयं सिद्ध है।

पुरातत्वशास्त्र

जिलर महोदय ने इतिहास को एक केंद्रीय विषय माना है, जबकि ट्रेवेलियन महोदय ने इतिहास को सभी विषयों का निवास गृह कहा है। जहाँ पुरातात्विक स्रोत इतिहास लेखन के सबसे प्रामाणिक साक्ष्य हैं, वहीं पुरातत्व इतिहास की सर्वश्रेष्ठ कसौटी है। पुरातत्व तथा इतिहास दोनों कामूल उद्देश्य मानव के विकास का अध्ययन करना है इसीलिए दोनों अत्यंत संनिकट हैं। दोनों की पद्धति भी समान है तथा कालानुक्रम (Chronology) उनकी आधारशिला है। पुरातत्व इतिहास का पूरक भी है। जहाँ इतिहास की गति अवरूद्ध हो जाती है वहाँ पुरातत्व ही प्रागैतिहास के माध्यम से इतिहास को आगे बढ़ाता है। इतिहास के संपूर्ण स्रोत प्रमाणों पर आधारित है।

पुरालेखशास्त्र

पुरालेख/अभिलेख एवं ताम्रपत्र इतिहास निर्माण के लिए अत्यंत उपयुक्त एवं विश्वसनीय साधन माने जाते हैं। प्राचीनकाल में महत्वपूर्ण घटनाएँ अभिलेखों पर उत्कीर्ण की जाती थीं। ये लेख संक्षेप में होने के बावजूद उन पर दर्ज सूचनाएँ स्पष्ट रूप से एवं निःसंदिग्ध तरीके से तथा बिना किसी काट-पीट के होती हैं। उन पर घटना के साथ काल भी दर्ज होता था। अतः यह प्रमाण समकालीन होने से अत्यंत विश्वसनीय माना जाता है। सामान्य रूप से अभिलेखों के दो प्रकार थे (1) राजकीय या आधिकारिक और (2) लौकिक या व्यक्गित। प्राचीन भारतीय अभिलेखों का वर्गीकरण इन शीर्षकों के अंतर्गत हो सकता है। कालांतर में लिखित धर्मशास्त्र ग्रंथ भी इस वर्गीकरण को पुष्ट करते है।

प्रतिमाशास्त्र

प्राचीन साहित्य की कई रचनाओं के रचयिता ऋषि कहे गए हैं। उसमें प्रतिमा लक्षण की चर्चा है। अतएव ऋषियों को मूर्तिशास्त्र का जन्मदाता कह सकते हैं। अतः प्राचीन भारतीय कला एवं धर्म का शोधपरक अध्ययन के लिए प्रतिमाशास्त्र का महत्वपूर्ण योगदान है। इसीलिए प्रतिमाशास्त्र को इतिहास का सहायक विषय कहा जाता है।

सुप्रसिद्ध विद्वान श्री गोपीनाथ राव ने आगम साहित्य का सविस्तृत विवरण उपस्थित किया है। पुराणों के सदृश इस ग्रंथसमूह में वास्तु एवं तक्षण कला का वर्णन है। इनमें विशेषतया शैवमत की प्रशंसा तथा शिव-प्रतिमाओं का वर्णन भरा पड़ा है। भारत के विभिन्न भागों से हजारों की संख्या में हिंदू जैन एवं बौद्ध प्रतिमायें प्राप्त हुई हैं जिनके अध्ययन से भारतीय इतिहास, धर्म एवं संस्कृति को जानने में विद्वानों को सफलता प्राप्त हुई है। अतः इतिहास और प्रतिमाशास्त्र का निकटतम संबंध है।

मुद्राशास्त्र

पूर्वकालीन घटनाओं पर प्रकाश डालने के लिए मुद्राशास्त्र का उपयोग होता है। प्राचीन एवं मध्यकाल में राज्यारोहण, युद्ध विजय जैसे महत्वपूर्ण प्रसंगों पर नई मुद्राएँ ढाली जाती थीं। उन पर कभी कुछ शब्द अथवा प्रतिमा उत्कीर्ण होती थी। इससे उस काल की लिपि तथा धार्मिक संकल्पनाओं की जानकारी मिलती है। इसी तरह मुद्रा के लिए प्रयुक्त धातु से तत्कालीन आर्थिक स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है। संपन्नता के काल में सोने-चाँदी के सिक्के ढाले जाते थे जबकि कम मूल्य की मुद्राएँ तांबे की हुआ करती थीं।

भारतवर्ष में विभिन्न वंश के शासकों ने राजकीय सिक्के तैयार कराए जो अत्यधिक संख्या में उत्खननों में प्राप्त हुए हैं। शासकों ने अपनी विचारधारा के अनुकूल सिक्कों पर चित्र आदि अंकित करवाए तथा धर्म-विश्वास के अनुसार देवी या देवता को उस पर स्थान दिया। सिक्कों तथा मुहरों पर अंकित पशु, पक्षी अथवा देवता की आकृति से उस शासक की धार्मिक भावनाएँ ज्ञात हो जाती हैं।

1.3.9 बोध प्रश्न

1.3.9.1 लघुउत्तरीय प्रश्न

1. ''इतिहास सभी विषयों का निवासगृह है।'' किसका कथन है?
2. ''इतिहास सभी अन्य सामाजिक विज्ञानों की पृष्ठभूमि अथवा संगम स्थल रहा है।'' किसका कथन है?
3. इतिहास के संबद्ध विषयों पर प्रकाश डालिए।
4. इतिहास के सहायक विषयों पर प्रकाश डालिए।
5. अभिलेखों से आप क्या समझते हैं?
6. एलेक्जेंडर कनिघंम के विषय में आप क्या जानते हैं?

1.3.9.2 दीर्घउत्तरीय प्रश्न

1. इतिहास का अन्य सहायक विषयों से समवाय के महत्व की विवेचना कीजिए।
2. इतिहास एवं पुरातत्व के सह-संबंधोंके महत्व पर प्रकाश डालिए।
3. इतिहास एवं अभिलेखशास्त्र के सह-संबंधों की व्याख्याकीजिए।
4. इतिहास एवं प्रतिमाशास्त्र के सह-संबंधों प्रकाशडालिए।
5. इतिहास एवं मुद्राशास्त्र के सह-संबंधों की विवेचनाकीजिए।

6. इतिहास का उसके सहायक शास्त्रों के साथ संबंधों पर एक निबंध लिखिये।

1.3.10 संदर्भग्रंथ

1. शेख अली बी.: हिस्ट्री: इट्स थिओरी एंड मेथड, ट्रिनिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1978
2. शर्मा तेजराम: हिस्टोरिओग्राफी ए हिस्ट्री ऑफ हिस्टोरिकल राइटिंग, नई दिल्ली, 2005
3. कुप्पुरम जी. एवं कुमुदमनी के.: मेथड्स ऑफ हिस्टोरिकल रिसर्च, नई दिल्ली, 2002
4. मनिक्कम वी.: ऑन हिस्ट्री एंड हिस्टोरिओग्राफी, मदुरई, 2003
5. श्रीवास्तव बी. के.: इतिहास लेखन: अवधारणा, विधायें एवं साधन, आगरा, 2008
6. श्रीधरन ई.: इतिहास लेख, नई दिल्ली, 2011
7. कोठेकर शांता: इतिहास तंत्र एवं विज्ञान, नागपुर, 2015
8. पांडे जी. सी. (संपादित): इतिहास स्वरूप एवं सिद्धांत, जयपुर, 1973
9. राधेशरण: इतिहास और इतिहास लेखन, भोपाल, 2010
10. चौबे झारखण्ड: इतिहास दर्शन, वाराणसी, 2001
11. सिंह परमानंद इतिहास दर्शन, दिल्ली, 1992
12. कार ई. एच.: इतिहास क्या है, दिल्ली, 1962
13. दुबे जे. एन.: इतिहास विज्ञान, वाराणसी, 1988

खंड-1 : इतिहास व इतिहास लेखन
इकाई-4 : इतिहास और इसका अन्य अनुशासनों से संबंध

इकाई की संरचना

1.4.01. उद्देश्य
1.4.02. प्रस्तावना
1.4.03. इतिहास और भूगोल
1.4.03.1. भौगोलिक खोजों एवं उपकरणों का इतिहास में महत्व
1.4.03.2. इतिहास लेखन में भूगोल की भूमिका
1.4.03.3. ऐतिहासिक घटनाओं पर भौगोलिक कारकों का प्रभाव
1.4.04. इतिहास और मानवविज्ञान
1.4.04.1. इतिहास एवं मानवविज्ञान में समानताएँ
1.4.04.2. इतिहास और मानवविज्ञान में अंतर
1.4.04.3. निष्कर्ष
1.4.05. इतिहास और समाजशास्त्र
1.4.05.1 इतिहास और समाजशास्त्र में अंतर
1.4.06. इतिहास और अर्थशास्त्र
1.4.06.1. समान उद्देश्य
1.4.06.2. इतिहास की अर्थशास्त्र को देन
1.4.06.3. अर्थशास्त्र की इतिहास को देन
1.4.07. इतिहास और राजनीति विज्ञान
1.4.07.1. राजनीति विज्ञान की परिभाषा
1.4.07.2. राजनीति विज्ञान और इतिहास का सहसंबंध
1.4.07.3. इतिहास और राजनीति विज्ञान में अंतर
1.4.08. सारांश
1.4.09. अपनी प्रगति की जाँच करें
1.4.10. अभ्यासार्थ प्रश्न
1.4.11. संदर्भ ग्रंथ सूची

1.4.01. उद्देश्य

इस इकाई के लेखन के उद्देश्य निम्नलिखित हैं —

1. छात्रों को इतिहास का अन्य विषयों के साथ संबंधों की जानकारी देना।
2. इतिहास किस प्रकार पुरातत्व विज्ञान के साथ सहसंबंधित है इसकी विवेचना करना।
3. इतिहास एवं भूगोल के सहसंबंध पर प्रकाश डालना।
4. इतिहास एवं मानवविज्ञान के सहसंबंध की जानकारी प्रदान करना।
5. इतिहास एवं समाजशास्त्र के मध्य विद्यमान संबंधों का परिचय प्रदान करना।
6. छात्रों को इतिहास के अर्थशास्त्र के साथ सहसंबंध की जानकारी प्रदान करना।

7. आज की राजनीति कल का इतिहास है एवं आज का इतिहास अतीत की राजनीति को प्रतिबिंबित करता है, छात्रों को इस तथ्य से परिचित/अवगत कराना।
8. इतिहास के राजनीति के साथ सहसंबंध से छात्रों को अवगत कराना।

1.4.02. प्रस्तावना

विद्वानों ने इतिहास को सभी विषयों के निवास ग्रह की संज्ञा दी है। अर्नोल्ड जे. टायन्बी (Arnold J. Toynbee) ने लिखा है- "मानव जीवन से संबंधित समस्त कार्य-व्यापार इतिहास की विषय-वस्तु है।" ए.एल. राउज (A.L. Rowse) ने इतिहास की विषय-वस्तु के अंतर्गत भौगोलिक, राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, भू-व्यवस्था, प्रशासनिक व्यवस्था, उद्योग व्यापार आदि सभी पक्षों को रखा है। इस प्रकार स्पष्ट है कि इतिहास की परिधि अत्यंत व्यापक है। इतिहास एक ऐसा विषय है, जिसे कभी पुरातत्व से, कभी भूगोल से, कभी मानवविज्ञान से, कभी समाजशास्त्र से, कभी अर्थशास्त्र से तो कभी विज्ञान के साथ सहसंबंधित किया जाता है। इन विषयों के साथ इतिहास का सहसंबंध कई महत्वपूर्ण तथ्य उजागर करता है। डा. जॉन्सन ने तो इतिहास को सभी विज्ञानों की पृष्ठभूमि कहा है।

समय के साथ इतिहास लेखन की परंपरा में भी परिवर्तन आया है। आज इतिहास मात्र राजा-रानियों की गाथा एवं उत्थान पतन की कहानी न होकर मानव के सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक संबंधों का लेखा-जोखा भी है। राजनैतिक इतिहास के स्थान पर आज सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक इतिहास लेखन पर जोर दिया जा रहा है। आज इतिहास मात्र अतीत की घटनाओं का लेखा-जोखा न रहकर सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों को समाज के समक्ष प्रस्तुत करने का दायित्व निभा रहा है। वर्तमान में प्रखर अर्थशास्त्री एवं राजनीतिज्ञ समस्याओं का समाधान अतीत के उदाहरणों अर्थात् इतिहास में खोजने का प्रयास करते हैं। अर्थशास्त्रियों एवं राजनीतिज्ञों द्वारा प्रस्तुत समाधान ही आगामी इतिहास की पृष्ठभूमि का निर्माण करता है।

पुरातत्व इतिहास की सर्वश्रेष्ठ कसौटी है। इतिहास के अध्ययन में भौगोलिक मानचित्र का अध्ययन अति आवश्यक है। अतः इतिहास के अध्ययन में सभी विषयों का अध्ययन आवश्यक है। ट्रेवेलियन (Trevelyan) महोदय ने इतिहास को सभी विषयों का आवास स्थल बताया है। ऐतिहासिक तथ्यों की व्याख्या में विभिन्न विषयों का समवाय उन्हें सहज, सरल एवं बोधगम्य बनाता है। अतः इस इकाई में हम इतिहास के पुरातत्व विज्ञान, मानवविज्ञान, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र एवं राजनीति विज्ञान के साथ सहसंबंध की विस्तृत विवेचना प्रस्तुत करेंगे।

1.4.03. इतिहास और भूगोल

एक विषय के रूप में इतिहास के अध्ययन के लिए भूगोल का अध्ययन अति आवश्यक प्रतीत होता है। जान्सन महोदय ने लिखा है कि भूगोल के बिना इतिहास तथा इतिहास के बिना भूगोल दोनों की ही कल्पना करना असंभव है। इतिहास के चार प्रमुख साधनों व्यक्ति, स्थान, घटना एवं काल में से प्रथम तीन साधनों (व्यक्ति, स्थान एवं घटना) का संबंध भूगोल से ही है। इतिहास में हम मानवीय कार्य व्यापार का अध्ययन करते हैं और भौगोलिक कारक भारतीय कार्य व्यापार को प्रभावित करते हैं, अतः एक इतिहासकार को भौगोलिक कारकों के परिप्रेक्ष्य में ही मानवीय कार्य व्यवहार का अध्ययन करना होता है। इतिहास में हम कुछ ऐसे विशिष्ट स्थानों का भी अध्ययन करते हैं जहाँ विशिष्ट घटनाएँ घटित हुई हों। घाटे महोदय के अनुसार- "मानव को अपनी भूमिका अभिनय करने के लिए भूगोल (स्थान के रूप में) एक

रंगमंच प्रस्तुत करता है।'' यही नहीं, विभिन्न ऐतिहासिक घटनाओं को भी भौगोलिक कारकों ने प्रभावित किया है।

1.4.03.1. भौगोलिक खोजों एवं उपकरणों का इतिहास में महत्व

इतिहास को गति, दिशा एवं अर्थ प्रदान करने में भौगोलिक खोजों एवं भौगोलिक उपकरणों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। भौगोलिक खोजों का आधुनिक इतिहास में बड़ा महत्व है, क्योंकि इनके परिणामस्वरूप विश्व में एक नवीन युग का प्रादुर्भाव हुआ। यूरोप एवं एशिया की जो सभ्यताएँ पहले एक दूसरे से अलग थीं, भौगोलिक खोजों के द्वारा वे एक दूसरे के घनिष्ठ रूप से संपर्क में आई। इस प्रकार समुद्र से दूर यूरोपीय राष्ट्रों की भौगोलिक खोजों संबंधी उपलब्धियों के फलस्वरूप विश्व इतिहास के उत्कर्ष का आरंभ हुआ।

चौदहवीं शताब्दी के पहले यूरोप्यिों का भौगोलिक ज्ञान न केवल अपूर्ण था, अपितु अंधविश्वासों से युक्त था। मध्ययुग में वे पृथ्वी को चपटी मानते थे, परंतु भौगोलिक अनुसंधानों से उन्हें इस वास्तविकता का पता चला कि पृथ्वी गोल है एवं पश्चिम की ओर समुद्र में यात्रा करके भी पूर्व में पहुँचा जा सकता है। वैज्ञानिक उपकरणों की खोज ने अब समुद्र में यात्रा करना सुगम बना दिया। 13वीं शताब्दी के अंत में यूरोप्यिों को सर्वप्रमुख भौगोलिक उपकरण 'कुतुबनुमा' (दिशासूचक यंत्र) का ज्ञान हुआ। उसके बाद वे एस्ट्रोलेव (Astrolabe) (अक्षांश जानने का उपकरण) से भी परिचित हुए। विश्व इतिहास को दिशा एवं गति प्रदान करने में इन भौगोलिक उपकरणों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अब यूरोप्यिों ने समुद्र यात्रा पर विजय प्राप्त कर ली। आवश्यकता आविष्कार की जननी होती है, इस कथन के परिप्रेक्ष्य में नौचालन उपकरणों में सुधार हुआ एवं अधिक पालों और पतवारों वाले जहाज निर्मित किए जाने लगे।

पुर्तगाल के राजकुमार हेनरी (1394-1460 ई.) जिसे 'हेनरी द नेवीगेटर' भी कहा जाता है, ने भौगोलिक खोजों को प्रोत्साहन दिया। पुर्तगाल के बार्थोलोम्यू दियाज, स्पेन के क्रिस्टोफर कोलंबस, पुर्तगाल के वास्को-द-गामा एवं मैगलन (Magellan) आदि के प्रयासों ने सारे विश्व को भौगोलिक अनुसंधानों द्वारा खोज निकाला। इन खोजों के परिणामस्वरूप लोग समूचे संसार से परिचित हुए और विश्व के देश एक दूसरे के संपर्क में आए। यूरोप के आर्थिक इतिहास की दृष्टि से उक्त भौगोलिक खोजों ने उनके व्यापार एवं वाणिज्य में क्रांतिकारी परिवर्तन किए और इन्हीं भौगोलिक खोजों ने यूरोप के लोगों को इतिहास में प्रमुखता प्रदान की व समस्त विश्व का भाग्य विधाता बना दिया।

वर्तमान में भी न केवल इतिहासकारों को अपितु इतिहास के शिक्षक, विद्यार्थियों एवं पाठकों को भी इतिहास लिखने, पढ़ने एवं समझने के लिए भौगोलिक मानचित्र, रेखाचित्र, एटलस, ग्लोब आदि काफी सहयोग कर सकते हैं। विश्व के प्रमुख युद्धों, विभिन्न साम्राज्यों के सीमा विस्तार को भौगोलिक मानचित्रों द्वारा आसानी से समझा जा सकता है। विभिन्न युद्धों में रेखाचित्रों द्वारा दोनों पक्षों की सेना की जमावट को देखकर हम युद्ध की जीत हार का सूक्ष्म विश्लेषण कर सकते हैं। कई युद्धों की जीत-हार में भौगोलिक परिस्थितियों ने भी महती भूमिका निभाई है। अतः बिना भूगोल के इतिहास को लिखना, समझना एवं आत्मसात करना काफी मुश्किल कार्य है।

1.4.03.2. इतिहास लेखन में भूगोल की भूमिका

राहुल सांकृत्यायन इतिहास लेखन में भौगोलिक अध्ययन को महत्वपूर्ण मानते थे। उनके अनुसार, "ऐतिहासिक अनौचित्य से बचने के लिए जिस तरह तत्कालीन ऐतिहासिक सामग्री और इतिहास का अच्छी तरह अध्ययन आवश्यक है, वैसे ही भौगोलिक अध्ययन की भी आवश्यकता है।" इतिहास लेखन के समय भौगोलिक मानचित्रों की महत्ता प्रतिपादित करते हुए उन्होंने यह भी लिखा था कि "जिस तरह ऐतिहासिक मानदंड स्थापित करने के लिए तत्कालीन राजाओं के राज्य और शासनकाल की पहले से ही तालिका बनाकर उसमें वर्णनीय घटनाओं के अध्याय क्रम को टांक लेना जरूरी है, उसी तरह भौगोलिक स्थानों, उनकी दिशाओं और दूरियों का ठीक-ठीक अंदाज रखने के लिए तत्संबंधी नक्शे का खाका हर वक्त हमारे सामने रखना चाहिए। नक्शा तो बल्कि हमारे मानस पटल पर अंकित हो जाना चाहिए।"

इतिहास लेखन में भौगोलिक मानचित्रों एवं रेखाचित्रों का प्रयोग वर्तमान समय की प्रमुख माँग है। आज का इतिहास का विद्यार्थी एवं पाठक वही इतिहास पढ़ना पसंद करता है, जो भौगोलिक मानचित्रों एवं रेखाचित्रों से परिपूर्ण हो। वस्तुतः इतिहास की कुछ घटनाएँ यदि भूगोल की मदद से समझाई जाएँ तो पाठकों के लिए वे आसानी से बोधगम्य हो जाती हैं। उदाहरण के लिए, सिकंदर का भारत पर आक्रमण का मार्ग, फा-हियान एवं हुआन सांग की भारत यात्रा का मार्ग, प्राचीन भारत के व्यापारिक मार्ग, समुद्रगुप्त का दिग्विजय अभियान, नेपोलियन बोनापार्ट का विजय अभियान, भौगोलिक खोजें, अशोक के अभिलेख प्राप्ति स्थल, हड़प्पा सभ्यता के प्रमुख स्थल, अशोक, समुद्रगुप्त, अलाउद्दीन खिलजी, अकबर, औरंगजेब एवं डलहौजी के समय भारतीय साम्राज्य की सीमाएँ, 1815 ई. की वियना कांग्रेस की व्यवस्था, बर्लिन सम्मेलन में परिवर्तित मानचित्र व्यवस्था, पेरिस शांति सम्मेलन द्वारा निर्धारित सीमाएँ, प्रथम एवं द्वितीय अफीम युद्ध में चीन में अंग्रेजों द्वारा प्राप्त बंदरगाह आदि को यदि मानचित्र व रेखाचित्र द्वारा भी समझाया दिया जाए तो उक्त सभी घटनाक्रम को पाठक आसानी के साथ समझ सकेगा। भौगोलिक मानचित्रों एवं रेखाचित्रों द्वारा ऐतिहासिक घटनाक्रम को हवा की स्थिति से वास्तविक धरातल पर लाया जा सकता है। यहाँ यह अवश्य ध्यान रखा जाना चाहिए कि मानचित्रों एवं रेखाचित्रों का उपयोग प्रकरण को लिखते समय उपयुक्त स्थल पर किया जाना चाहिए। जिस स्थान पर हम यह जिक्र कर रहे हैं कि 1842 ई. की नानकिंन संधि द्वारा अंग्रेज़ों ने चीन में केंटन, फूचो, निंगपो, शंघाई आदि पाँच बंदरगाहों में व्यापार हेतु सुविधाएँ प्राप्त कीं, तो इसी स्थान पर पाँच बंदरगाहों का मानचित्र लगाया जाना चाहिए।

1.4.03.3. ऐतिहासिक घटनाओं पर भौगोलिक कारकों का प्रभाव

विश्व की विभिन्न ऐतिहासिक घटनाओं पर भौगोलिक कारकों का प्रभाव स्पष्टतः देखा जा सकता है। किसी-न-किसी रूप में भौगोलिक कारक इतिहास पर अनुकूल या प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। भूगोल एक स्वयं सिद्ध विज्ञान है, जिसके उपयोग से विभिन्न ऐतिहासिक घटनाओं के कारण, प्रभाव और कार्यों को बोधगम्य तरीके से समझा व समझाया जा सकता है। इतिहास में वर्णित विभिन्न सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं अन्य प्रकार की घटनाएँ किसी-न-किसी रूप में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्षतः भौगोलिक कारणों से प्रभावित होती हैं।

अन्य कारणों के साथ-साथ भौगोलिक कारक किस प्रकार इतिहास की दिशा बदलते हैं, इसका भारतीय संदर्भ में एक अच्छा उदाहरण शेरशाह सूरी द्वारा हुमायूँ की चौसा एवं बिलग्राम के युद्ध में हुई

पराजय के रूप में मिलता है। इन दोनों ही युद्धों में भौगोलिक कारकों का लाभ उठाकर शेरशाह सूरी ने न केवल हुमायूँ को परास्त किया, अपितु भारत में मुगल साम्राज्य को कुछ समय के लिए समाप्त कर अफगान साम्राज्य की स्थापना की। हुमायूँ चौसा के युद्ध के समय तीन माह (अप्रैल से 26 जून, 1939 ई. तक) शेरशाह के सामने सेना सहित डटा रहा, लेकिन आक्रमण नहीं किया। उधर चतुर शेरशाह बरसात के मौसम आने का इंतजार कर रहा था, क्योंकि मुगल शिविर कर्मनाशा और गंगा नदी के बीच निचले स्थान पर था। हुमायूँ अदूरदर्शी था, अतः वह यह तथ्य न समझ पाया। जैसे ही वर्षा आरंभ हुई, मुगल शिविर में पानी भरने के कारण अव्यवस्था फैल गई, शेरशाह ने 26 जून, 1539 ई. को आक्रमण कर हुमायूँ को परास्त कर दिया। इससे भी हुमायूँ ने कोई सबक नहीं सीखा और एक बार पुनः 17 मई, 1540 ई. को बिलग्राम के युद्ध में यही भौगोलिक कारक उसकी हार का कारण बने। मुगल शिविर बिलग्राम के निकट गंगा से तीन मील की दूरी पर लगा था। 15 मई, 1540 ई. को भारी वर्षा के कारण मुगल कैंप में पानी भर गया। इससे पहले कि मुगल ऊँचे स्थल पर शिविर लगाने की सोचते, शेरशाह ने उक्त भौगोलिक कारकों को अपने पक्ष में भुनाते हुए एक तीव्र आक्रमण कर न केवल हुमायूँ को परास्त किया, अपितु भारत में अफगान साम्राज्य की स्थापना की। इस उदाहरण से स्पष्ट है कि साम्राज्यों के उत्थान एवं पतन में भी किसी हद तक भौगोलिक कारक अपनी भूमिका निभाते हैं।

भारत में बाबर द्वारा मुगल साम्राज्य की स्थापना पानीपत के प्रथम युद्ध 21 अप्रैल, 1526 ई. में इब्राहीम लोदी को परास्त कर की गई थी। इस युद्ध में बाबर की विजय का एक कारण युद्ध स्थल पर तुग्लमा का प्रयोग एवं सेना के अग्रभाग की रक्षा के लिए जंजीर से बँधी हुई गाड़ियों की कतार से संपन्न सैन्य जमावट थी। इस कुशल सैन्य सजावट पर प्रकाश डालते हुए डॉ. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव ने लिखा है कि ''बाबर ने सात सौ गतिशील गाड़ियों की पंक्तियों को गीला खाल के रस्सों से आपस में बाँध कर अपनी सेना की रक्षार्थ फौज के आगे खड़ा कर दिया था। गाड़ियों के बीच उसने काफी रास्ता छोड़ रखा था, जिससे होकर उसके सैनिक आक्रमण कर सकें। उसने तोपों के प्रत्येक जोड़े के मध्य छह सात गतिशील बचाव स्थान खड़े कर रखे थे, जिससे तोपचियों को शरण प्राप्त हो सके। इस रक्षात्मक श्रेणी के पीछे ही तोपखाना व्यवस्थित था। उस्ताद अली प्रमुख तोपची दाहिनी ओर था और मुस्तफा प्रमुख तोपची बाँयी ओर। तोपखाने के पीछे उसके अग्रगामी रक्षकों का जमाव था, जिसकी कमान खुसरू कोकुल्ताश और मुहम्मद अली जंग के हाथों में थी। इसके पीछे सेना का केंद्र स्थल (गुल) था जहाँ बाबर स्वयं संचालक के रूप में उपस्थित था। यह केंद्र दाहिना केंद्र और बाँया केंद्र के नाम से दो खंडों में विभाजित था। बाबर की सेना का दाहिना अंग कटे हुए पेड़ों तथा मिट्टी की दीवार और खाइयों से सुरक्षित किया गया था। सेना के दाहिने अंग की कुछ दूरी पर तुग्लमा नियुक्त किया गया था और सेना के बाएँ अंग की बाईं तरफ कुछ दूर दूसरे तुग्लमा को स्थान दिया गया था। इस पंक्ति की दाहिनी ओर ठीक सिरे पर किलेबंदी करने वाला दाहिना दल (दाहिना तुग्लमा) अवस्थित था।''

बाबर की सेना की उक्त जमावट से स्पष्ट है कि उसने युद्ध क्षेत्र में एक कुशल वैज्ञानिक प्रणाली का समन्वय किया था। मगर मात्र लिखकर हम इस सैन्य जमावट को अच्छी तरह से अपने पाठकों को नहीं समझा सकते। इसे यदि भौगोलिक रेखाचित्र द्वारा समझाया जाए तो पाठक आसानी से इसे समझ सकते हैं।

ठीक इसी प्रकार अहमदशाह अब्दाली एवं सदाशिव राव भाऊ के बीच 1761 ई. में संपन्न पानीपत के तृतीय युद्ध की सैन्य जमावट को रेखाचित्र द्वारा आसानी से समझा जा सकता है।

युद्ध स्थिति को प्रदर्शित करने वाले रेखाचित्रों के द्वारा युद्ध स्थल की भौगोलिक जमावट को आसानी से समझाया जा सकता है। इनका सूक्ष्म अवलोकन कर पाठक स्वविवेक से भी समझ सकता है कि विजयी पक्ष क्यों जीता एवं पराजित पक्ष की हार क्यों हुई।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इतिहास लेखन, इतिहास शिक्षण एवं इतिहास अध्ययन तीनों में ही भौगोलिक मानचित्रों का प्रयोग इतिहास को एक ठोस धरातल प्रदान करता है। इतिहास में मानव के कार्य व्यवहार का अध्ययन किया जाता है एवं मानवीय कार्य व्यापार भौगोलिक कारकों द्वारा प्रभावित रहता है, अतः इतिहास में भौगोलिक परिस्थितियों के सापेक्ष में ही घटनाओं को समझा जाना चाहिए। जॉनसन महोदय ने तो काल एवं भूगोल को इतिहास का नेत्र बताकर इतिहास तथा भूगोल के संबंधों के महत्व को रेखांकित किया है। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि इतिहास एवं भूगोल एक दूसरे के पूरक हैं। वे अन्योन्याश्रित रूप से एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से संबद्ध हैं। अतः इतिहास तथा भूगोल एक दूसरे को परस्पर प्रभावित करते हैं। अंततः भूगोल के अनुप्रयोग द्वारा इतिहास लेखन, शिक्षण एवं अध्ययन को वैज्ञानिकता के साथ-साथ सहज, सरल एवं सुबोध बनाया जा सकता है।

अपनी प्रगति की जाँच करें

प्रश्न क्र. 1. इतिहास के बिना भूगोल एवं भूगोल के बिना इतिहास दोनों की ही कल्पना करना असंभव है। किसका

कथन है?

प्रश्न क्र. 2. इतिहास में 15वीं एवं 16वीं सदी के भौगोलिक अनुसंधान क्यों महत्वपूर्ण हैं।

प्रश्न क्र. 3. इतिहास अध्ययन में भूगोल किस प्रकार महत्वपूर्ण है?

1.4.04. इतिहास और मानवविज्ञान

एक विषय के रूप में मानवविज्ञान इतिहास का प्रमुख अंग है। यह कहना भी अतिशयोक्ति न होगी कि मानवविज्ञान इतिहास का एक ऐसा अंग है, जिसे पृथक् नहीं किया जा सकता। इतिहास एवं मानवविज्ञान दोनों के ही अध्ययन का प्रमुख केंद्र मानव है। इतिहास में जहाँ हम मानव के क्रियाकलापों के अध्ययन पर जोर देते हैं, वहीं मानवविज्ञान के तहत हम मानव के उद्भव एवं विकास का अध्ययन करते हैं, परंतु मानव एवं उसकी संस्कृति का अध्ययन इतिहास तथा मानवविज्ञान दोनों की ही प्रमुख विषय वस्तु है।

एक स्वतंत्र वैज्ञानिक अध्ययन के रूप में मानवविज्ञान का विकास उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में हुआ, इससे पूर्व यह विषय सामान्यतः इतिहास का ही अंग माना जाता है। संभवतः मानवविज्ञान का एक स्वतंत्र विषय के रूप में उद्भव इतिहास संबंधी वैज्ञानिक अवधारणा19वीं शताब्दी की देन है। डिल्थे (Dilthey) महोदय के अनुसार- "मानवविज्ञान के तहत प्रकृति का अध्ययन किया जाता है तथा इतिहास में अध्ययन का प्रमुख केंद्र मानव होता है। सर जॉन मायर्स के अनुसार- "प्रकृति तथा मनुष्य का संबंध इतना घनिष्ठ है कि एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। अतः इतिहास को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करने के पीछे एकमात्र निहित लक्ष्य समाज में मानवीय अवस्था एवं परिस्थितियों को नियंत्रित करने वाले कारकों का प्रकटीकरण था। विज्ञान प्रकृति का अध्ययन है, अतः अन्य परिस्थितियों के साथ-साथ प्राकृतिक परिवेश में भी मानवीय कार्यों एवं उपलब्धियों का अध्ययन इतिहास में किया जाता है।"

उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में प्राकृतिक विज्ञानों का विकास आरंभ हुआ। प्राणी जगत के अन्य सदस्यों के साथ मनुष्य जाति के भिन्न-भिन्न समूहों के वैज्ञानिक वर्गीकरण के प्रथम प्रयत्न इसी समय हुए। मनुष्य को प्रकृति का अंग मानकर उसका अध्ययन करने के इन प्रारंभिक प्रयत्नों में मानवविज्ञान का जन्म हुआ। मानववैज्ञानिक (Anthropologist) शब्द अरस्तू द्वारा गढ़ा गया है। अठारहवीं शताब्दी के जर्मन आदर्शवादी कांट (Kant) ने 1789 ई. में 'एंथ्रोपोलॉजी' शीर्षक की एक पुस्तक लिखी, जिसमें उन्होंने मनुष्य की पशु उत्पत्ति को प्रस्तावित किया। 1822 ई. में ब्रिटिश इनसाइक्लोपीडिया में इस शब्द का समावेश हुआ। अंग्रेज़ी भाषा में एंथ्रोपोलॉजी (मानवविज्ञान) शब्द की उत्पत्ति दो मूल शब्दों एंथ्रोपॉस और लॉगॉस से हुई है, जिनके अर्थ क्रमशः मानव और विज्ञान हैं। एडवर्ड टाइलर ऐसे प्रथम व्यक्ति थे, जिन्हें आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी में 1884 ई. में शिक्षक का स्तर मिला। एडवर्ड टाइलर मानवविज्ञान के महान प्रणेताओं में से एक थे। सामान्य मानवविज्ञान का पहला पाठ्यक्रम वर्माण्ट (Vermont) यूनिवर्सिटी में सर्वप्रथम 1885 ई. में लागू किया गया।

1.4.04.1. इतिहास एवं मानवविज्ञान में समानताएँ

इस प्रकार हम देखते हैं कि मानवविज्ञान वस्तुतः इतिहास की ही संतति है। अतः इतिहास से मानवविज्ञान को पूर्णतः पृथक करके नहीं देखा जा सकता। अब हम इतिहास एवं मानवविज्ञान की कुछ परिभाषाओं के परिप्रेक्ष्य में इनके सहसंबंध को देखने का प्रयास करेंगे।

ई.ए. होबल (E.A. Hoebel) ने अपनी कृति 'मैन इन प्रिमिटिव वर्ल्ड' में मानवविज्ञान को परिभाषित करते हुए लिखा है- "मानवविज्ञान मानव एवं उसके संपूर्ण कार्यों का अध्ययन है।'

राल्फ बील्स (Ralf Beals) के अनुसार- "मानवविज्ञान मनुष्य के शारीरिक और सांस्कृतिक विकास के नियमों तथा सिद्धांतों का अनुसंधान करने वाला विज्ञान है।'

टी.के. पन्निमेन (Penniman) के अनुसार- "मानवविज्ञान मानव का विज्ञान है। एक दृष्टिकोण से यह प्राकृतिक इतिहास की एक शाखा है, जिनके अंतर्गत जीवन प्रकृति के क्षेत्र में मानव की उत्पत्ति और स्थान का अध्ययन आता है। दूसरे दृष्टिकोण से मानवविज्ञान इतिहास का विज्ञान है।"

फ्रैंज बोआस (Franz Boas) के अनुसार- "मानवविज्ञान मानव का अध्ययन एक सामाजिक प्राणी के रूप में करता है।"

ई.ए. होबल (E.A. Hoebel) के अनुसार- "सामाजिक मानवविज्ञान सामाजिक व्यवहार और सामाजिक समूहों के संगठन अथवा समाज रचना के अध्ययन पर अपना लक्ष्य केंद्रित करता है।"

अब हम इतिहास की कुछ परिभाषाओं का अध्ययन करेंगे।

सर चार्ल्स फर्थ के अनुसार- "इतिहास मानव समाज का लेखा जोखा है। यह उन परिवर्तनों को बतलाता है, जिनसे समाज गुजरा है। यह उन विचारों को भी बतलाता है, जिसने समाज के क्रियाकलापों तथा भौतिक दशाओं को प्रभावित किया है।"

ए.एल.राउज (A. L. Rowse) के अनुसार- "इतिहास प्रधानतः समाज में मानव का, उसके भौगोलिक एवं भौतिक पर्यावरणों का लेखा-जोखा है"।

आर. जी. कॉलिंगवुड महोदय के अनुसार "इतिहास अतीत संबंधी मानवीय कार्यों का अध्ययन है।''

प्रो. गुस्तावन ने तो इतिहास को मानव ज्ञान की शिखर चोटी (Mountain Top Of Human Knowledge) की संज्ञा दी है।

मानवविज्ञान एवं इतिहास की उक्त परिभाषाओं का अध्ययन करें तो ये दोनों ही विषय एक दूसरे से पूरी तरह सहसंबंधित (Co-related) प्रतीत होते हैं। ई.ए. होबल की मानवविज्ञान की एवं कॉलिंगवुड की इतिहास की परिभाषाओं को देखें तो दोनों ही विषयों का संबंध मानवीय कार्यों के अध्ययन से है। होबल की सामाजिक मानवविज्ञान की परिभाषा एवं फ्रैंज बोआस की मानवविज्ञान की परिभाषा, चार्ल्स हार्डिंग फर्थ (Charles Harding Firth) एवं ए.एल. राउज की इतिहास की परिभाषाओं से मिलती जुलती हैं, जिनका प्रमुख केंद्र मानव समाज का अध्ययन है। इस प्रकार हम देखते हैं कि इतिहास एवं मानवविज्ञान की परिभाषाओं में स्थूल रूप से देखने पर समानताएँ दृष्टिगोचर होती हैं।

मानवविज्ञान के विस्तृत विषय क्षेत्र को देखते हुए सुविधा हेतु इसे चार भागों में विभाजित किया गया है। यह विभाजन निम्नानुसार हैं —

1. सामाजिक-सांस्कृतिक मानवविज्ञान
2. जैविक/शारीरिक मानवविज्ञान
3. प्रागैतिहासिक मानवविज्ञान
4. भाषा का मानवविज्ञान

मानवविज्ञान के उक्त विभाजन में जैविक/शारीरिक मानवविज्ञान इतिहास से बहुत कुछ स्वतंत्र प्रतीत होता है, किंतु सामाजिक-सांस्कृतिक मानवविज्ञान एवं प्रागैतिहासिक मानवविज्ञान इतिहास से घनिष्ठ रूप से संबद्ध दिखाई देता है। इतिहास की भाँति ही सामाजिक-सांस्कृतिक मानवविज्ञान का विस्तार क्षेत्र भी व्यापक है, जिसमें समाज व्यवस्था, कला, साहित्य, धर्म एवं अर्थव्यवस्था का अध्ययन किया जाता है।

इतिहास की शाखा प्रागैतिहासिक एवं मानवविज्ञान की शाखा प्रागैतिहासिक मानवविज्ञान का विषय क्षेत्र एक ही है। दोनों की समानता को देखते हुए उन्हें पृथक करना लगभग असंभव है।

1.4.04.2. इतिहास और मानवविज्ञान में अंतर

इस प्रकार हम देखते हैं कि मानवविज्ञान एवं उसकी शाखाएँ किसी-न-किसी रूप में इतिहास अथवा उसकी शाखा से संबंधित हैं। अब प्रश्न उठता है कि जब मानवविज्ञान इतिहास का ही अंग है तो पृथक रूप से मानवविज्ञान एक विषय के रूप में अस्तित्व में क्यों आया। अतः निश्चित रूप से इतिहास एवं मानवविज्ञान में कुछ मूलभूत अंतर अवश्य होंगे। ये सूक्ष्म अंतर निम्नानुसार हैं—

1. इतिहास में मात्र मनुष्य के कार्यों का ही अध्ययन नहीं होता, अपितु उससे संबंधित अन्य घटनाक्रमों, यथा- साम्राज्यों का उत्थान-पतन, युद्ध, शांति समझौते इत्यादि का अध्ययन भी किया जाता है, जबकि मानवविज्ञान में प्रत्येक अध्ययन मनुष्य के इर्द-गिर्द ही घूमता है। ए.एल.क्रोबर (A.L. Kroeber) एवं जी. क्लूखोन (C. Kluckhohn) महोदय के अनुसार- "मनुष्य के विभिन्न पक्षों का अध्ययन करने वाले समस्त विज्ञानों में से मानवविज्ञान ही एक ऐसा विज्ञान है जो मनुष्य के संपूर्ण अध्ययन के सबसे निकट है।"

2. इतिहास में मनुष्य के कार्यों पर अधिक जोर दिया जाता है, जबकि मानवविज्ञान में मानव की उत्पत्ति एवं शारीरिक विकास पर अधिक जोर दिया जाता है। जेकेब्स (Jacobs) एवं स्टर्न के अनुसार- "मानवविज्ञान मानव जाति के जन्म से लेकर वर्तमान तक का मानव के शारीरिक, सामाजिक एवं

सांस्कृतिक विकास एवं व्यवहारों का वैज्ञानिक अध्ययन है।' श्यामाचरण दुबे के अनुसार- "विशाल प्राणीवर्ग के अनेक प्राणियों में से केवल मानव के विकास तथा उसकी शारीरिक तथा उसकी शारीरिक विशेषताओं का अध्ययन शारीरिक मानवविज्ञान के रूप में स्वतंत्र दिशा में विकसित हुआ है।''

3. इतिहास की तुलना में मानवविज्ञान मानवीय समूहों में पाई जाने वाली विषमताओं के अध्ययन पर विशेष बल देता है। इस हेतु सांस्कृतिक मानवविज्ञान के तहत नृजातिविज्ञान (Ethnology) एवं भाषा विज्ञान (Linguistics) के आधार पर मानववैज्ञानिक जन समूहों का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए उनका वर्गीकरण प्रस्तुत किया जाता है।
4. इतिहास में हम मुख्य बल उन समाजों के अध्ययन पर देते हैं, जिनकी कोई ऐतिहासिक पृष्ठभूमि हो तथा जिन्होंने इतिहास को गति, दिशा एवं अर्थ दिया हो, जबकि सामाजिक मानवविज्ञान में ऐसे समाजों के अध्ययन पर विशेष बल दिया जाता है, जिनके बारे में न तो कोई प्रमाण मिलते हैं और न जिनकी कोई ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है। एस.एफ. नडेल के अनुसार- "सामाजिक मानवविज्ञान इतिहासविहीन (Without History) समाजों का और अपरिचित (Exotic) प्रकृति की संस्कृतियों का अध्ययन है। अतः सामाजिक मानवविज्ञान ऐसी संस्कृतियों का अध्ययन है, जिनके आवरण में ढँके लोग सभ्य समाजों के लिए अपरिचित जैसे हैं। इसीलिए सामाजिक मानवविज्ञान में मुख्यतः आदिम जनजातियों का अध्ययन किया जाता है।"
5. इतिहास में कालक्रम का विशेष महत्व होता है, अतः इतिहासकार काल के सापेक्ष में गतिशील अवस्था में विभिन्न संस्कृतियों का अध्ययन करता है, जबकि सांस्कृतिक मानवविज्ञान में स्थिर अवस्था में एक संस्कृति विशेष के काल विशेष का ही अध्ययन किया जाता है। अतः एक सांस्कृतिक मानववैज्ञानिक विभिन्न संस्कृतियों के अपने अध्ययन में कालक्रम का ध्यान नहीं रखता, तथापि उसका अध्ययन संपूर्ण संस्कृति के बारे में होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जहाँ इतिहास एवं मानवविज्ञान एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से सहसंबंधित हैं, वहीं सैद्धांतिक रूप से इनमें कुछ सूक्ष्म अंतर भी स्पष्टतः परिलक्षित होते हैं।

1.4.04.3. निष्कर्ष

एक स्वतंत्र सामाजिक विज्ञान के रूप में मानवविज्ञान का विकास 19वीं सदी के मध्य में हुआ। इससे पूर्व मानवविज्ञान प्रमुखतः इतिहास का ही एक अंगथा। अब चूँकि मानवविज्ञान, इतिहास की ही संतति है, अतः इसे इतिहास से पूर्णतः पृथक नहीं किया जा सकता। विभिन्न विषय होते हुए भी ये एक दूसरे से कहीं-न-कहीं संबंधित ही प्रतीत होते हैं। सामाजिक मानवविज्ञान के अध्ययन की एक पद्धति ऐतिहासिक पद्धति भी है। विद्वानों के मतानुसार ऐतिहासिक पद्धति सामाजिक मानवविज्ञान के तहत विभिन्न युगों से गुजरते हुए मानव जीवन के प्रवाह को समझने में सहायक है। एएल. क्रोबर महोदय के अनुसार- "ऐतिहासिक व्याख्या की तुलना उस सीमेंट से कर सकते हैं, जो मानव इतिहास के पृथक तथा अर्थहीन तथ्यों में घटनाओं को एक अर्थपूर्ण प्रतिमान से संयुक्त करता है।''

मनुष्य के व्यवहार का अध्ययन, विशेषकर उसके जटिल सामाजिक संबंधों का विश्लेषण् प्राकृतिक विज्ञान की अध्ययन शैली द्वारा भलीभाँति नहीं किया जा सकता। इस दिशा में मानवविज्ञान ने इतिहास की शैली को ही अपनाया। यूरोप के महादेश में संस्कृति के विकास का अध्ययन इतिहास की शोध-प्रणालियों द्वारा किया गया। तथ्यों के अभाव में ऐतिहासिक अनुमान द्वारा प्राचीन संस्कृतियों की

पुनर्रचना के प्रयत्न भी वहाँ हुए। अमरीका में भी संस्कृतियों का अध्ययन इतिहास से प्रभावित था। अतः मानवविज्ञान के लिए किसी-न-किसी रूप में इतिहास की उपयोगिता बनी हुई है। मनुष्य को मूलतः ऐतिहासिक जीव कहने का तात्पर्य भी यही है कि इतिहास में मानवविज्ञान समाया हुआ है।

इतिहास एक इतना विस्तीर्ण एवं व्यापक विषय है कि इसको विभिन्न शाखाओं में बाँटकर ही इसका विस्तृत अध्ययन किया जा सकता है। इतिहास से 19वीं सदी में मानवविज्ञान के एक विषय के रूप में पृथक हो जाने से आज इतिहास को भी लाभ हुआ है। अब इतिहासकार विभिन्न मानवों एवं समाजों के क्रियाओं एवं व्यवहार को समझने के लिए सामाजिक मानवशास्त्रों के निष्कर्षों से लाभ उठा सकता है। अब एक इतिहासकार इतिहास में मानवशास्त्रियों के निष्कर्षों का लाभ उठाकर विश्व के विभिन्न देशों के समाजों की प्रकृति को आसानी से समझ सकता है।

डिल्थे (Dilthey) महोदय के अनुसार- "ऐतिहासिक वास्तविकता व्यक्ति तथा व्यक्तियों द्वारा निर्मित विश्व के बीच की अंतर्क्रिया है। ऐतिहासिक विश्व मस्तिष्क प्रभावित अथवा मस्तिष्क निर्मित विश्व है। अतः इतिहास की विषय-वस्तु में वह सब कुछ है, जो मनुष्य ने किया है। मनुष्य ने जो कुछ किया है, उसकी सांगोपांग विवेचना मानवविज्ञान के तहत विस्तृत रूप से की जाती है, क्योंकि मानवविज्ञान में विभिन्न मानव समाजों के सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्रियाकलापों का स्थिर अवस्था में अध्ययन कर निष्कर्ष निकाले जाते हैं और एक इतिहासकार अपनी आवश्यकतानुसार इन मानवशास्त्रीय निष्कर्षों का लाभ उठाकर व्यक्ति तथा व्यक्तियों द्वारा निर्मित विश्व के बीच की अंतर्क्रिया को आसानी से समझ सकता है।"

इस प्रकार हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि इतिहास व मानवविज्ञान एक दूसरे के पूरक हैं। इतिहास के बिना मानवविज्ञान का एवं मानवविज्ञान के बिना इतिहास का अध्ययन पूर्णता को प्राप्त नहीं कर सकता। अतः इतिहास को मानवविज्ञान के साथ सहसंबंधित माना जा सकता है। हम यह भी कह सकते हैं कि किसी अन्य विषय की तुलना में मानवविज्ञान, इतिहास से कहीं अधिक घनिष्ठ रूप से सहसंबंधित है।

अपनी प्रगति की जाँच करें

प्रश्न क्र. 4. इतिहास लेखन में मानववैज्ञानिक उपागम किस प्रकार महत्वपूर्ण है?

प्रश्न क्र. 5. इतिहास एवं मानवविज्ञान में समानताओं पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न क्र. 6. इतिहास को मानव ज्ञान की शिखर चोटी किसने कहा है?

1.4.05.4. इतिहास और समाजशास्त्र

मानवविज्ञान में सामाजिक मानवविज्ञान जिस प्रकार से इतिहास से सहसंबंधित है, ठीक उसी प्रकार समाजशास्त्र भी इतिहास से घनिष्ठ रूप से सहसंबंधित है।20 वीं सदी में अधिकांश इतिहासकारों ने सामाजिक इतिहास की ओर विशेष ध्यान देना आरंभ किया है। यद्यपि इतिहास में मानवीय कार्य व्यापार का अध्ययन किया जाता है तथापि इतिहास का विकास व्यक्तियों तथा राष्ट्रों से नहीं, बल्कि विभिन्न युगीन समाजों से हुआ है। अतः इतिहास की प्रमुख आधारशिला समाज को ही माना जाता है। ट्रेवेलियन महोदय के अनुसार सामाजिक इतिहास के तहत अतीत में मनुष्यों के दैनिक जीवन, परिवार का स्वरूप, आर्थिक सहसंबंध, गृहस्थ जीवन, श्रमिकों की दशा, सांस्कृतिक जीवन, प्रकृति के प्रति मानवीय

दृष्टिकोण, सामान्य परिस्थितियों में उत्पन्न धर्म, साहित्य, संगीत, शिक्षा एवं साहित्य का अध्ययन किया जाता है।

इस प्रकार सामाजिक इतिहास को अत्यधिक लोकप्रिय बनाने का श्रेय ट्रेवेलियन महोदय को जाता है। ट्रेवेलियन महोदय द्वारा सामाजिक इतिहास की यह परिभाषा समाजशास्त्र की भी परिभाषा प्रतीत होती है। समाजशास्त्र में भी एक सामाजिक प्राणी के रूप में मानव का उसके समाज के साथ अंतर्संबंधों का अध्ययन किया जाता है। वस्तुतः समाजशास्त्र का विकास सामाजिक इतिहास के परिवेश में हुआ है। सामाजिक विकास तथा परिवर्तन की गतियों का अध्ययन समाजशास्त्र के माध्यम से प्रारंभ हुआ है। काम्टे (Comte) महोदय के अनुसार- "इतिहास सामाजिक भौतिकशास्त्र है, जिसके तहत मानवीय व्यवहार के सामान्य नियमों का अध्ययन किया जाता है। मानवीय व्यवहार के सामान्य नियमों का अध्ययन एक समाजशास्त्री भी समाजशास्त्र के तहत करता है। अतः मानव, मानव का सामाजिक व्यवहार एवं उसके सामाजिक क्रियाकलाप आदि सभी इतिहास के साथ-साथ समाजशास्त्र के अध्ययन की भी मुख्य विषय-वस्तु हैं। इस दृष्टि से इतिहास एवं समाजशास्त्र एक दूसरे से संबद्ध प्रतीत होते हैं।

1870 ई. से व प्रथम विश्व युद्ध के वर्षों से ही सामाजिक विज्ञान के विषयों का आरंभ होता है। ये इस विश्वास पर आधारित हैं कि मानव जीवन की व्याख्या निर्वैयक्तिक और व्यवस्थित प्रणाली से की जा सकती है। मैक्स वेबर महोदय का मानना है कि यदि मनुष्य का संपूर्ण रूप में सरलता से अध्ययन नहीं किया जा सकता तो मानव अस्तित्व के विभिन्न वर्गों सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक पक्ष को समष्टि से निकालकर अलग-अलग समझा जा सकता है। वेबर महोदय की प्रमुख रुचि समाजशास्त्र में थी, जिसमें मनुष्य का सामाजिक जीवन के रूप में अध्ययन किया जाता है। यह मनुष्य को उसके सामाजिक अस्तित्व तथा उसकी संपूर्ण अंतर्संबंद्धता में समझने के प्रयास के रूप में इतिहास के सबसे निकट है।

टायन्बी महोदय के अनुसार भी इतिहास का निर्माण सामाजिक अणुतत्वों से हुआ है। मार्क्स महोदय ने भी मनुष्य की परिभाषा वर्ग संघर्ष के आधार पर की और यह दावा किया कि मनुष्य वर्ग के सदस्य की तरह सामूहिक रूप से कार्य करते हैं और उनके समान मूल्य होते हैं। फ्रैंक वैन आल्स्ट महोदय ने मार्क्स की उक्त परिभाषा के संदर्भ में लिखा है, "मनुष्य का समाज के सदस्य के रूप में अध्ययन का यह प्रयास एक सीमा तक इतिहासकार भी करते हैं। इसी सादृश्य के कारण इतिहास और समाजशास्त्र एक दूसरे का अतिव्यापन करते हुए दृष्टिगत होते हैं और वस्तुतः जर्मनी में इतिहास ही समाजशास्त्र बन जाता है।"

वर्तमान में इतिहासकार अतीत के समाज को एक समाजशास्त्री की भाँति समग्र रूप में समझने का प्रयास करते हैं, ताकि आधुनिक समाज के व्यवहार को भी अतीत के परिप्रेक्ष्य में समझा जा सके। पालवर्थ महोदय के अनुसार- "संस्कृति और संस्थाओं का इतिहास समाजशास्त्र को समझने और उसकी सामग्री जुटाने में सहायक होता है।" आर्नाल्ड टायन्बी (Arnold Toynbe) ने सामाजिक अणुतत्वों से इतिहास का निर्माण तो माना ही है, साथ ही अपनी सर्वप्रसिद्ध कृति 'ए स्टडी ऑफ हिस्ट्री' में सभ्यता को ऐतिहासिक अध्ययन की प्रमुख इकाई माना है।

विभिन्न सभ्यताओं के उत्थान एवं पतन में एक इतिहासकार जब राजनैतिक एवं आर्थिक कारकों के अलावा सामाजिक कारकों का अध्ययन करता है तो उसे समाजशास्त्रियों के तत्संबंधी निष्कर्षों से विशेष लाभ मिलता है, क्योंकि सभ्यताओं के उत्थान व पतन का मूल्यांकन एक समाजशास्त्री द्वारा बेहतर ढंग से किया जा सकता है। वर्तमान में एक इतिहासकार अंत: अनुशासनात्मक उपागम (Interdisciplinary Approach) के तहत बेहतर परिणाम पाने के लिए अपने ऐतिहासिक अध्ययन में

सामाजिक संगठन के सिद्धांत पर समाजशास्त्रियों के निष्कर्षों का लाभ उठाते हुए अपनी सामग्री को संयोजित करता है। यही नहीं, समाजशास्त्री भी ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में विभिन्न सामाजिक अंतर्संबंधों को समझने का प्रयास करते हैं। इस प्रकार इतिहास और समाजशास्त्र एक दूसरे से घनिष्ठतः सहसंबंधित प्रतीत होते हैं।

1.4.05.1. इतिहास और समाजशास्त्र में अंतर

एक विषय के रूप में जो अंतर इतिहास एवं सामाजिक मानवविज्ञान में हमने पूर्व में उल्लिखित किए हैं, लगभग वही अंतर हमें इतिहास एवं समाजशास्त्र में भी दृष्टिगोचर होते हैं। इतिहास एवं समाजशास्त्र के कुछ मौलिक अंतरों को हम निम्नानुसार देख सकते हैं

1. फ्रेंक वैन आल्स्ट महोदय के अनुसार- ''इतिहास समाजशास्त्र की तरह मनुष्य को सामाजिक अंतर्संबंधों के साथ ही नहीं देखता, अपितु उसको भी समय के प्रवाह में रखकर निरंतर परितर्वनशील विकास में भी देखता है। समाजशास्त्री मनुष्य को समय के प्रवाह से अलग करके देखता है, वह समय को स्थिर कर देता है और यही कारण है कि यह अध्ययन यथार्थ से दूर हो जाता है- मनुष्य समय के प्रवाह में जीता है और उसके जीवन का निष्कर्ष यही है कि वह गतिशील है''।
2. सामान्यतः इतिहास में कुछ विशिष्ट उल्लेखनीय एवं असाधारण सामाजिक घटनाओं का अध्ययन किया जाता है, जिन्होंने इतिहास की गति एवं दिशा को प्रभावित किया हो, जबकि समाजशास्त्र उन सामाजिक घटनाओं का अध्ययन करता है, जिसकी पुनरावृत्तियाँ अधिक हुई हों।
3. इतिहास देश, काल एवं परिस्थिति के परिप्रेक्ष्य में घटनाओं का विश्लेषण करता है और संभावित निष्कर्ष निकालता है, जबकि समाजशास्त्र देश, काल एवं परिस्थिति के अनुसार घटनाओं से मर्यादित न रहकर सार्वभौमिक एवं सर्वकालिक निष्कर्ष निकालता है।
4. इतिहास की प्रमुख विषय-वस्तु अतीतकालीन समाज का अध्ययन है, जबकि समाजशास्त्र की प्रमुख विषय-वस्तु वर्तमान समाज का अध्ययन है। एक समाजशास्त्री अतीत के समाज के अध्ययन में वहीं तक रुचि रखता है, जहाँ तक कि उन घटनाओं से वर्तमान समाज को समझने में मदद मिल सकती हो।
5. इतिहास में यर्थाथता पर विशेष बल रहता है। अतः वह ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर अतीत का अध्ययन करता है और कुछ संभावित निष्कर्ष निकालने का प्रयास करता है, जबकि समाजशास्त्र वैज्ञानिक पद्धति एवं प्रयोगात्मक तरीकों से सामाजिक घटनाओं का अवलोकन करता है। समाजशास्त्र सामाजिक समस्याओं के विश्लेषण के साथ-साथ उन्हें सुलझाने हेतु सुझाव भी प्रस्तुत करता है।
6. पार्क महोदय के अनुसार- ''इतिहास मानव एवं मानव प्रकृति का एक मूर्त विज्ञान है, जबकि समाजशास्त्र इन्हीं का एक अमूर्त विज्ञान है।'' इतिहास अतीत में घटी हुई किसी भी घटना के घटने के पश्चात् उनके कारणों एवं परिस्थितियों का विश्लेषण करता है, जबकि समाजशास्त्र कई घटित घटनाओं का प्रायोगिक परीक्षण कर उन प्रक्रियाओं का अध्ययन करता है, जिनके कारण घटनाएँ घटती हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इतिहास एवं समाजशास्त्र परस्पर घनिष्ठ रूप से संबंधित होते हुए भी इनमें सैद्धांतिक रूप से कुछ मूलभूत अंतर भी है। इतिहास एवं समाजशास्त्र दोनों में ही अतीतकालीन

समाज का अध्ययन होता है। इतिहास काल के सापेक्ष में गतिशील समाज का अध्ययन करता है एवं समाजशास्त्र काल से निरपेक्ष रहते हुए स्थिर अवस्था में समाज का अध्ययन करता है। इतिहास में ऐतिहासिक पद्धति को महत्व दिया जाता है और संभावित निष्कर्ष निकाले जाते हैं। समाजशास्त्र में वैज्ञानिक पद्धति का अवलंबन कर सार्वजनिक निष्कर्ष निकाले जाते हैं। इतिहास इस तथ्य को रेखांकित करता है कि घटना क्यों घटी, जबकि समाजशास्त्र यह बताता है कि घटनाएँ क्यों घटती हैं? इस संदर्भ में इतिहास एक मूर्त एवं समाजशास्त्र अमूर्त विज्ञान है। इतिहास एवं समाजशास्त्र में कुछ मौलिक अंतर होते हुए भी दोनों परस्पर घनिष्ठ रूप से सहसंबंधित हैं।

अपनी प्रगति की जाँच करें

प्रश्न क्र. 7. इतिहास लेखन में समाजशास्त्र की उपयोगिता पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न क्र. 8. समाजशास्त्र एवं इतिहास के संबंधों पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न क्र. 9. इतिहास एवं समाजशास्त्र में क्या अंतर है?

1.4.06. इतिहास और अर्थशास्त्र

आज के भौतिकवादी युग में मनुष्य की जिस प्रकार से भौतिक प्रगति हुई है तथा मानवीय आवश्यकताओं में निरंतर उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है, उसके परिणामस्वरूप आर्थिक अध्ययन एक आवश्यकता बन चुका है। सामाजिक विज्ञान के सभी क्षेत्रों में अर्थशास्त्र ही एक ऐसा विज्ञान है जिसकी गणना सामाजिक कल्याण (Social Welfare) व मानवीय प्रगति के लिए अग्रिम श्रेणी में की जाती है।

वास्तविकता तो यह है कि आज की दुनिया की संपूर्ण आर्थिक संरचना (Economic Structure) केवल आर्थिक धुरी के ऊपर विद्यमान है। यदि किसी भी समस्या का गहराई से विश्लेषण किया जाए तो आज की दुनिया में प्रत्येक समस्या के जड़ में आर्थिक कारण ही विद्यमान है। चाहे वह समस्या श्रम और पूँजी के विवाद के रूप में हो, चाहे साम्राज्यवाद और स्वतंत्रता की लड़ाई हो अथवा समाजवाद और पूँजीवाद का मामला हो, सभी विवादों के मूल कारण आर्थिक ही हैं।

इतिहास और अर्थशास्त्र के पारस्परिक संबंध के विषय में हम कह सकते हैं कि अतीत की कोई भी घटना क्यों न हो, चाहे वहाँ किसी साम्राज्य का उत्थान हो या पतन, चाहे कोई युद्ध, सभी के मूल में आर्थिक कारण प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से निहित रहते हैं। भारतीय इतिहास के संदर्भ में महमूद ग़ज़नवी, मुहम्मद गोरी, तैमूरलंग एवं नादिर शाह आदि के भारत पर आक्रमण का एक प्रमुख कारण भारतीय धन-समृद्धि को लूटना भी था।

इतिहास अर्थशास्त्र का संबंध भी उतना ही प्राचीन है जितना कि मानव सभ्यता का इतिहास। इतिहास में मुख्य रूप से मनुष्य तथा उससे संबंधित क्रियाकलापों का अध्ययन किया जाता है। अर्थात् मनुष्य के प्रादुर्भाव के साथ ही इतिहास का आरंभ हो जाता है। आदि मानव ने अपनी जीविका को चलाने के लिए जैसे-जैसे साधनों के खोज में प्रगति की, इसके परिणामस्वरूप इतिहास को भी गति, दिशा एवं अर्थ मिलता गया। उस समय आजीविका के साधन ही अर्थव्यवस्था के प्रमुख आधार थे।

समाज की अर्थव्यवस्था ही प्रागैतिहासिक काल से लेकर ऐतिहासिक काल तक इतिहास की प्रमुख विषयवस्तु रही है।

पाषाणकालीन मानव की आजीविका का प्रमुख स्रोत आखेट एवं खाद्य संग्रह था। सिंधु घाटी की सभ्यता में विभिन्न स्थलों पर हुए उत्खनन से हमें पता चलता है कि इस सभ्यता की अर्थव्यवस्था व्यापार प्रधान थी।

ऋग्वैदिक काल में कृषि एवं पशुपालन ही अर्थव्यवस्था के प्रमुख आधार माने गए। अतः हम कह सकते हैं कि, 'इतिहास एवं अर्थशास्त्र' की विषयवस्तु में एकरूपता है, क्योंकि इतिहास के अध्ययन में, अर्थशास्त्र की प्रमुख विषयवस्तु 'अर्थव्यवस्था' को उपेक्षित नहीं किया जा सकता। उदाहरणार्थ मध्यकालीन भारतीय इतिहास के अध्ययन में अलाउद्दीन खलजी की बाजार व्यवस्था एवं उसके आर्थिक सुधारों को अनदेखा नहीं कर सकते। कुछ प्रमुख इतिहासकार व अर्थशास्त्रियों की कृतियों का अध्ययन आधुनिक भारतीय इतिहास को भली भाँति समझने के लिए आवश्यक है, जैसे दादाभाई नौरोजी द्वारा लिखित पुस्तक (Poverty and Un-British rule in India) एवं आर.सी. दत्त की कृति (Economic History of India in the Victorian Age) का अध्ययन अति आवश्यक है। इसी प्रकार आधुनिक भारतीय इतिहास को समझने के लिए एम.जी. रानाडे एवं दिनशावाचा के आर्थिक विचार भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

1929-30 ई. में आई विश्वव्यापी आर्थिक मंदी आज भी इतिहासकारों के अध्ययन की विषयवस्तु है। इसी प्रकार अर्थशास्त्र में भी 1929-30 में आई आर्थिक मंदी के कारणों का अध्ययन विश्लेषण किया जाता है।

अतः उपरोक्त विश्लेषण के परिणामस्वरूप हम प्रसिद्ध अर्थशास्त्री मार्शल के शब्दों में कह सकते हैं कि "अर्थशास्त्र जीवन के साधारण व्यापार में मनुष्य का अध्ययन है।'' यह व्यक्तिगत और सामाजिक कार्यों के उस भाग का परीक्षण करता है, जिनका भौतिक पदार्थों की प्राप्ति एवं उनके प्रयोग के साथ अत्यंत घनिष्ठ संबंध है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि इतिहास तथा अर्थशास्त्र में वैसी ही निकटता है जैसा कि इतिहास और राजनीति में। दोनों के अध्ययन का विषय मनुष्य व्यवहार ही है। दोनों में भिन्नता केवल इस बात की है कि अर्थशास्त्र में जहाँ इसके निर्णय (विधायक पक्ष) का अध्ययन किया जाता है, वहीं इतिहास इसके उन्नति विधायक (Progress Moping) पहलू का अध्ययन करता है। इसके अतिरिक्त कुछ विषयों में दोनों का अध्ययन किया जाता है। उदाहरणार्थ- आर्थिक इतिहास एक ऐसा विषय है, जिसका सामान्य अध्ययन इतिहास में तथा विशेष अध्ययन अर्थशास्त्र में किया जाता है।

दोनों की पारस्परिक निर्भरता के संबंध में सर जॉन सीले (John Seeley) महोदय का निम्नलिखित कथन सही प्रतीत होता है कि "अर्थशास्त्र के बिना इतिहास नींव रहित है और इतिहास के बिना अर्थशास्त्र फलहीन है।"

1.4.06.1. समान उद्देश्य

उद्देश्य की दृष्टि से भी इतिहास और अर्थशास्त्र का सहसंबंध सिद्ध होता है। इतिहास का उद्देश्य सामाजिक कल्याण है। इतिहास के अध्ययन में हम अपने अतीत की घटनाओं का अध्ययन करके एवं उनका विश्लेषण कर वर्तमान को सुखी बना सकते हैं तथा अतीत की भूलों को न दोहराकर भविष्य के लिए कल्याणकारी मार्ग प्रशस्त कर हम सामाजिक कल्याण की ओर अग्रसर होते हैं। इसी प्रकार अर्थशास्त्र का उद्देश्य आर्थिक कल्याण करना है।

मार्शल के मतानुसार- "अर्थशास्त्री के सम्मुख जो नैतिक मान्यता सदैव रहनी चाहिए, वह यह है कि उत्पादन तथा मौद्रिक व्यवस्थाएँ, दोनों ही इस प्रकार से संगठित की जाएँ, ताकि एक सुसंस्कृत व उत्कृष्ट जीवन के लिए भौतिक साधन उपलब्ध हो सकें।"

राज्य की नीति आर्थिक अवस्थाओं पर निर्भर :- उदाहरण स्वरूप अलाउद्दीन खिलजी साम्राज्य का विस्तार करना चाहता था। इसके लिए उसे भारी संख्या में सैनिकों की भर्ती की आवश्यकता पड़ी। किंतु उसके इस कदम से राज्य पर आर्थिक दबाव पड़ता, क्योंकि इतने सारे सैनिकों को पारिश्रमिक देना पड़ता। अतः उसने इस समय एक अर्थशास्त्री की भाँति सोचते हुए अपने साम्राज्य विस्तार की नीति के लिए वस्तुओं के मूल्यों को नियंत्रित किया, अर्थात् कम कर दिया, ताकि सैनिकों को पारिश्रमिक देने का अतिरिक्त आर्थिक भार राज्य पर न पड़े। 18वीं सदी में इंग्लैंड और यूरोप के अन्य देशों में जो औद्योगिक क्रांति हुई उसके परिणामस्वरूप ही इन देशों ने उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद की नीति अपनाई।

ऐतिहासिक घटनाएँ आर्थिक गतिविधियों का परिणाम :- अनेक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाएँ आर्थिक गतिविधियों के परिणामस्वरूप ही घटित हुई हैं। स्पेन की गणतंत्रीय सरकार ने श्रमिक वर्ग के हित में 1935 ई. में जब कानून बनाने का प्रयत्न किया तो सामंत वर्ग, चर्च के पादरी और सेना ने जनरल फ्रेंको के नेतृत्व में संगठित होकर गणतंत्रीय सरकार का तख्ता पलट दिया। इसी प्रकार1930 ई. की विश्वव्यापी आर्थिक मंदी के परिणामस्वरूप हिटलर का उदय तथा द्वितीय विश्वयुद्ध की भूमिका तैयार हुई।

समाजवाद, उपनिवेशवाद तथा साम्राज्यवाद जैसी विचारधाराओं की उत्पत्ति के मूल में प्रमुख कारण आर्थिक गतिविधियाँ ही रहीं हैं।

1.4.06.2. इतिहास की अर्थशास्त्र को देन

प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक की अर्थव्यवस्था अथवा आर्थिक नीतियों का अवलोकन हम इतिहास के अंतर्गत करते हैं। वर्तमान के अर्थशास्त्री इन अध्ययनों का लाभ उठाकर वर्तमान अर्थशास्त्र संबंधी नीतियों का निर्धारण करते हैं। ऐतिहासिक अर्थव्यवस्थाओं का अध्ययन आज हमारे आर्थिक नियोजन का प्रमुख आधार बन गया है। रूस की क्रांति 1917 ई. के पश्चात् वहाँ पर अपनाई गई आर्थिक नियोजन प्रणाली से प्रेरणा लेकर भारत में पंचवर्षीय योजनाओं का प्रारंभ किया गया है।

1.4.06.3. अर्थशास्त्र की इतिहास को देन

कार्ल मार्क्स ने अर्थशास्त्र को इतिहास की आधारशिला माना है। उनके शब्दों में- "इतिहास की व्याख्या केवल आर्थिक घटनाओं के माध्यम से की जा सकती है। किसी भी शासन-व्यवस्था के संबंध में सही ज्ञान प्राप्त करने के लिए, यह सदैव आवश्यक है कि देश की तत्कालीन आर्थिक घटनाओं और दशाओं का ज्ञान हो।"

इतिहास की दिशा एवं गति को प्रभावित करने में अर्थव्यवस्था की भूमिका को देखते हुए वर्तमान में आर्थिक इतिहास के लेखन पर विशेष बल दिया जा रहा है। अर्थशास्त्र में भी आर्थिक विचारों का इतिहास और विभिन्न देशों के आर्थिक इतिहास का अध्ययन किया जाने लगा है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि इतिहास तथा अर्थशास्त्र एक-दूसरे से घनिष्ठ रूप से सहसंबंधित हैं। अर्थशास्त्र के सही मूल्यांकन के लिए इतिहास का ज्ञान आवश्यक है तथा इतिहास के सही मूल्यांकन

के लिए अर्थशास्त्र का ज्ञान आवश्यक है। वर्तमान में अंत:अनुशासनात्मक उपागम (Interdisciplinary approach) के तहत एक अर्थशास्त्री आज इतिहास का अवलोकन कर अर्थशास्त्र के सिद्धांतों का प्रतिपादन कर सकता है। वास्तव में ये दोनों विषय एक-दूसरे के पूरक हैं। फलस्वरूप इन दोनों के संबंध में यह कथन सही प्रतीत होता है कि "अर्थशास्त्र के बिना इतिहास नींव रहित है और इतिहास बिना अर्थशास्त्र फलविहीन है।"

अपनी प्रगति की जाँच करें

प्रश्न क्र. 10. 'अर्थशास्त्र के बिना इतिहास नींव रहित है और इतिहास के बिना अर्थशास्त्र फलविहीन' यह कथन किसका है?

प्रश्न क्र. 11. अर्थशास्त्र की इतिहास को क्या देन है?

1.4.07. इतिहास और राजनीति विज्ञान

1.4.07.1. राजनीति विज्ञान की परिभाषा

इतिहास और राजनीति विज्ञान के संबंधों को जानने से पहले हमें सर्वप्रथम यह जानना होगा कि राजनीति विज्ञान क्या है? इस संबंध में विभिन्न विचारकों के भिन्न-भिन्न मत हैं।

राजनीति विज्ञान का अर्थ

'राजनीति' का पर्यायवाची अंग्रेजी शब्द पॉलिटिक्स (Politics) यूनानी भाषा के 'Polis' शब्द से बना है, जिसका तात्पर्य उस भाषा में नगर अथवा राज्य होता है। उस समय यूनान छोटे-छोटे नगर राज्यों में विभाजित था और इसी कारण यूनान के लोग नगर तथा राज्य में कोई अंतर नहीं समझते थे। कालांतर में राज्य का स्वरूप बदला और आज इन राज्यों का स्थान राष्ट्रीय राज्यों ने ले लिया है। अतः राज्य के इस विकसित और विस्तृत स्वरूप का अध्ययन जिस विषय के अंतर्गत किया गया उसे राजनीति विज्ञान कहा जाने लगा। किंतु सीले (Seley) और स्टीफन लीकाक आदि विद्वानों ने सरकार के अध्ययन को राजनीति विज्ञान की संज्ञा दी।

इसके विपरीत गिलक्राइस्ट (Gilchrist) महोदय ने राजनीति विज्ञान की परिभाषा देते हुए कहा है "राजनीति विज्ञान राज्य और सरकार की सामान्य समस्याओं का अध्ययन करता है।"

लेकिन उपरोक्त परिभाषाएँ मानवीय पक्ष की अवहेलना के कारण अपूर्ण नजर आती है, क्योंकि कोई भी समाजविज्ञान, मानवीय तत्व के अध्ययन के बिना पूरा नहीं हो सकता। फिर राजनीति विज्ञान में तो राज्य और सरकार का विस्तृत अध्ययन इसलिए किया जाता है, क्योंकि ये संस्थाएँ मानवीय जीवन को बहुत अधिक प्रभावित करती हैं। एनसाइक्लोपेडिया ऑफ सोशल साइंसेज में 'हरमन हेलेट' ने तो यहाँ तक कहा है कि "राजनीति विज्ञान के संपूर्ण स्वरूप का निर्धारण उसकी मानव विषयक मौलिक मान्यताओं द्वारा ही होता है।"

राजनीति विज्ञान की तर्क संगत परिभाषा देते हुए यह कहा जा सकता है कि राजनीति विज्ञान समाज विज्ञान का वह अंग है, जिसमें मानवीय जीवन के राजनैतिक पक्ष से संबंधित संस्थाओं राज्य सरकार तथा अन्य संगठनों का अध्ययन किया जाता है।

द्वितीय महायुद्ध के बाद ज्ञान के क्षेत्र में नवीन दृष्टिकोणों का प्रादुर्भाव हुआ फलस्वरूप राजनीति विज्ञान की परिभाषा में इस परंपरागत स्वरूप को अस्वीकार किया जाने लगा। इन वर्षों में यह स्वीकार किया जाने लगा कि मानव जीवन के विविध पक्षों (राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक) को एक-दूसरे से

विभक्त नहीं किया जा सकता। अतः राजनीति विज्ञान को ऐसा विषय नहीं समझना चाहिए जो केवल मनुष्य की राजनैतिक गतिविधियों का ही अध्ययन करता है, अपितु यह कहना उचित प्रतीत होता है कि राजनीति विज्ञान मुख्यतः व्यक्ति के राजनैतिक क्रियाकलापों तथा इसके संदर्भ में मानव जीवन के धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक तथा अन्य पक्षों का अध्ययन करता है।

राजनीति विज्ञान की परंपरागत और आधुनिक परिभाषाओं में समन्वयवादी दृष्टिकोण अपनाते हुए पिनॉक और स्मिथ महोदय लिखते हैं- "इस प्रकार राजनीति विज्ञान किसी भी समाज में उन सभी शक्तियों, संस्थाओं तथा संगठनात्मक ढाँचों से संबंधित होता है जिन्हें उस समाज की सुव्यवस्था की स्थापना और संधारण अपने सदस्यों के अन्य सामूहिक कार्यों के संपादन तथा उनके मतभेदों का समाधान करने के लिए सर्वाधिक अंतर्भावी (Inclusive) और अंतिम माना जाता है।"

1.4.07.2. राजनीति विज्ञान और इतिहास का सहसंबंध

राजनीति विज्ञान और इतिहास एक-दूसरे से स्वाभाविक रूप से संबंधित हैं। इतिहास में व्यक्ति, समाज एवं राज्य के भूतकालिक जीवन का अध्ययन किया जाता है और राजनीति विज्ञान में राज्य के तीनों कालों भूत, वर्तमान और भविष्य का अध्ययन किया जाता है। इन दोनों विषयों का पारस्परिक संबंध बतलाते हुए 'सीले' महोदय लिखते हैं कि "राजनीति विज्ञान के बिना इतिहास का मूल नहीं और इतिहास के बिना राजनीति विज्ञान का कोई मूल नहीं।" अर्थात् प्राचीन काल से लेकर वर्तमान समय तक इतिहास को गति दिशा एवं अर्थ देने का कार्य राजनीति विज्ञान ने ही किया है।

प्राचीन काल में राजनैतिक संस्थाएँ एवं राज्य ही इतिहास लेखन की मुख्य विषय वस्तु थी, उदाहरणार्थ ऋग्वैदिक काल में 'सभा', 'समिति' एवं 'विदथ' जैसी राजनैतिक संस्थाओं को इतिहासकारों ने अपने अध्ययन की विषयवस्तु बनाया, जिसके परिणामस्वरूप राजनैतिक इतिहास को गति एवं दिशा मिली।

अतः हम कह सकते हैं कि इतिहास तत्कालीन राजनैतिक घटनाओं का साक्षी है। सीले महोदय का कथन है कि "इतिहास मूल है और राजनीति विज्ञान फल है।" ए.एल. राउज महोदय ने तो "राजनीति विज्ञान को इतिहास की रीढ़ माना है।"

राजनीति विज्ञान में जिन समस्याओं का अध्ययन किया जाता है उनके गर्भ में उनका अपना इतिहास छिपा होता है। अतः इतिहास से परिचित हुए बिना न तो इन समस्याओं को ठीक रूप से समझा जा सकता है और न ही हल किया जा सकता है, क्योंकि कोई भी राज्य, राजनैतिक संस्था, राजनैतिक घटना का निर्माण एक विशेष समय पर नहीं होता, बल्कि इनका निर्मित होना एक विकास प्रक्रिया का ही परिणाम है और किसी भी घटना, संस्था, राज्य इत्यादि को पूर्णतया समझने के लिए इतिहास के आधार पर उनके विकास का क्रमबद्ध ज्ञान प्राप्त किया जाना आवश्यक है। अतः इतिहास का ज्ञान आवश्यक है।

हम कह सकते हैं कि राजनीति विज्ञान इतिहास पर निर्भर है, क्योंकि वर्तमानकालीन राजनैतिक व्यवस्था का अध्ययन और भविष्य के लिए आदर्श व्यवस्था का चित्रण ऐतिहासिक अध्ययन के आधार पर ही किया जा सकता है।

इतिहास राजनीति की प्रयोगशाला या पथ प्रदर्शक भी है। विभिन्न समयों में मानवों द्वारा अपने जीवन में राजनैतिक क्षेत्र में अनेक कार्य किए गए जिनके परिणाम और सफलता-असफलता का वर्णन इतिहास से प्राप्त होता है। राजनैतिक क्षेत्र के ये भूतकालीन कार्य, एक प्रयोग के समान ही होते हैं और ये भूतकालीन प्रयोग भविष्य के लिए पथ प्रदर्शन का कार्य करते हैं। उदाहरणार्थ भारतीय इतिहास के

अध्ययन से हमें अकबर की धार्मिक सहिष्णुता की नीति का पता चलता है, जिसके आधार पर अकबर ने एक विशाल एवं मजबूत साम्राज्य की स्थापना की। इसके विपरीत औरंगजेब के द्वारा धार्मिक पक्षपात की नीति अपनाने का परिणाम यह हुआ कि साम्राज्य पतन की ओर अग्रसर हो गया।

जियाउद्दीन बर्नी सल्तनत काल का प्रमुख इतिहासकार था। उसने सर्वप्रमुख कृति 'तारीख-ए-फिरोजशाही' में लिखा है- "यदि मेरे ग्रंथ में प्रशासन के नियमों एवं संघर्ष समाप्त करने के उपायों को खोजा जाएगा तो वे इसमें मिलेंगे।'' बर्नी का मानना था कि वर्तमान शासक यदि अतीत के शासकों के क्रियाकलाप एवं उनकी समस्याओं को इतिहास द्वारा समझ लें तो वे इस प्रकार की समस्याओं से निजात पा सकते हैं। बर्नी का यह कथन इतिहास एवं राजनीति विज्ञान के सहसंबंध को रेखांक्ति करता है।

मनुष्य अपने ऐतिहासिक अनुभव के आधार पर वर्तमान राजनैतिक जीवन में सुधार करते हुए भविष्य के लिए मार्ग निश्चित कर सकता है। लार्ड एक्टन (Lord Acton) के शब्दों में कहा जा सकता है कि "राजनीति विज्ञान इतिहास की धारा में उसी भाँति संचित है जैसे कि नदी की रेत में सोने के कण।" इतिहास एवं राजनीति का सहसंबंध प्राचीन काल से ही चला आ रहा है। कौटिल्य ने अपने ग्रंथ 'अर्थशास्त्र' में राजाओं को राजधर्म की शिक्षा ऐतिहासिक उदाहरणों के आधार पर ही दी थी।

इतिहास एवं राजनीति के सहसंबंध का उल्लेख करते हुए हम कह सकते हैंकि इतिहास संपूर्ण भूतकालीन जीवन का ब्यौरा प्रस्तुत करता है, लेकिन प्रमुख रूप से इसमें मानव की राजनैतिक गतिविधियों का ही अध्ययन किया जाता है।

भारत के इतिहास में से यदि चन्द्रगुप्त, अशोक, बाबर, अकबर, शाहजहाँ, औरंगजेब इत्यादि के राजनैतिक कार्यों और उपलब्धियों को अलग कर दिया जाए तो उसमें शेष क्या रह जाएगा। 17वीं सदी का यूरोप का इतिहास, राष्ट्रवाद, व्यक्तिवाद, साम्राज्यवाद और समाजवाद जैसी राजनैतिक विचारधाराओं के अध्ययन के बिना महत्वहीन ही माना जाएगा। इसी प्रकार यदि हम 20वीं सदी के भारतीय इतिहास का अध्ययन करना चाहते हैं तो हमें राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना, सांप्रदायिक निर्वाचन का प्रारंभ और मुस्लिम लीग का उदय, भारतीय शासन अधिनियम, द्वैध शासन, साइमन कमीशन, नेहरू रिपोर्ट, सविनय अवज्ञा आंदोलन, गोलमेज सम्मेलन, क्रिप्स मिशन, भारत छोड़ो आंदोलन, केबिनेट मिशन, अंतरिम सरकार की स्थापना, भारत की स्वतंत्रता, भारत के वर्तमान संविधान का निर्माण और भारतीय संविधान के अंतर्गत हुए आम चुनाव का अध्ययन अनिवार्य है। इस प्रकार लीकॉक महोदय के शब्दों में हम कह सकते हैं कि "इतिहास का बहुत कुछ भाग राजनीति विज्ञान है।"

राजनीति विज्ञान के द्वारा इतिहास को वह दृष्टिकोण प्रदान किया जाता है, जिसके परिपेक्ष्य में घटनाओं को उनके वास्तविक अर्थों में समझा जा सकता है।

एस.के. कोचर (S.K. Kochhar) महोदय ने इतिहास तथा राजनीति के सहसंबंध को दर्शाते हुए लिखा है कि "शासन और इतिहास का संबंध कुछ ऐसा हीहै जैसा कि वनस्पति शास्त्र का वनस्पति से तथा जीव शास्त्र का प्राणियों से।"

इतिहास एवं राजनीति के सहसंबंध में हम यह भी कह सकते हैं कि ऐतिहासिक घटनाएँ राजनैतिक विचारधाराओं का परिणाम होती हैं अर्थात् राजनैतिक विचारधाराएँ ऐतिहासिक घटनाओं को जन्म देती हैं। उदाहरणार्थ कार्ल मार्क्स के विचारों का सोवियत रूस की राज्य क्रांति पर तथा महात्मा गांधी के विचारों का भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन पर निर्णायक प्रभाव पड़ा।

स्वतंत्रता, समानता और सामाजिक न्याय जैसे राजनैतिक विचार भूतकाल से लेकर आज तक ऐतिहासिक घटनाओं को प्रभावित कर रहे हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि इतिहास और राजनीति अन्योन्याश्रित है। दोनों की पारस्परिक निर्भरता के विषय में उल्लेख करते हुए सीले महोदय लिखते हैं कि "राजनीति उच्श्रृंखल हो जाती है, यदि इतिहास द्वारा उसे उदार नहीं बनाया जाता और इतिहास कोरा साहित्य रह जाता है, यदि राजनीति से उसका संबंध विच्छेद हो जाता है।' इसी प्रकार बर्गेस (Burgess) महोदय भी लिखते हैं कि "यदि राजनीति विज्ञान और इतिहास का संबंध विच्छेद कर दिया जाए तो उसमें से एक मृत नहीं तो पंगु अवश्य हो जाएगा और दूसरा केवल आकाश कुसुम बनकर रह जाएगा।"

1.4.07.3. इतिहास एवं राजनीति विज्ञान में अंतर

इतिहास एवं राजनीति विज्ञान एक-दूसरे से घनिष्ठ रूप से संबंधित होते हुए भी एक-दूसरे से, कुछ भिन्नता लिए हुए भी हैं।

प्रो. बार्कर (Barker) के शब्दों में - "यद्यपि इतिहास तथा राजनीति विज्ञान की सीमाएँ प्रारंभ से अंत तक समान हैं, परंतु वास्तव में ये दोनों भिन्न तथा स्वतंत्र हैं।'

इन दोनों विज्ञानों में निम्नलिखित अंतर प्रमुख हैं—

अध्ययन पद्धति का अंतर :- इतिहास का अध्ययन वर्णनात्मक पद्धति के आधार पर किया जाता है, क्योंकि इसमें घटनाओं का क्रमबद्ध रूप से अध्ययन किया जाता है, जबकि राजनीति विज्ञान में पहले विषयवस्तु अर्थात् अध्ययन सामग्री का चयन किया जाता है। तत्पश्चात् पर्यवेक्षात्मक और विचारात्मक पद्धति के आधार पर अध्ययन सामग्री का अध्ययन किया जाता है।

क्षेत्र का अंतर :- तुलनात्मक रूप से इतिहास का क्षेत्र राजनीति विज्ञान की अपेक्षा बहुत अधिक विस्तृत रूप लिए हुए है। इतिहास मनुष्य के भूतकालीन जीवन के विविध पक्षों जैसे राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक और सामाजिक सभी पहलुओं का अध्ययन करता है।

उद्देश्य का अंतर :- इतिहास का उद्देश्य घटनाओं को उनके मूल रूप में तथा क्रमिक रूप में प्रस्तुत करना है, किंतु अमुक घटना का भविष्य में क्या परिणाम होना चाहिए इस बात की जानकारी हमें इतिहास से नहीं मिलती अर्थात् 'भविष्य में क्या होना चाहिए' इस बात से इतिहास संबंध नहीं रखता, जबकि इसके विपरीत राजनीति विज्ञान काल की तीनों अवस्थाओं भूत, वर्तमान तथा भविष्य का अध्ययन करता है। अतः हम कह सकते हैं कि इतिहास का अध्ययन यथार्थ पर आधारित है, जबकि राजनीति विज्ञान का अध्ययन आदर्शात्मक है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि इतिहास तथा राजनीति विज्ञान एक-दूसरे से घनिष्ठ रूप से इतने जुड़े हुए हैं कि उनके सीमा क्षेत्र कहीं एक-दूसरे को छूते और कहीं-कहीं एक-दूसरे का अतिक्रमण करते हैं। लेकिन फिर भी दोनों विषय अलग-अलग हैं।

अपनी प्रगति की जाँच करें

प्रश्न क्र. 12. 'इतिहास मूल है और राजनीति विज्ञान फल' यह कथन किसने कहा?

प्रश्न क्र. 13. राजनीति विज्ञान को इतिहास की रीढ़ किसने माना है?

प्रश्न क्र. 14. इतिहास को भूतकाल की राजनीति किसने कहा है?

प्रश्न क्र. 15. इतिहास एवं राजनीति विज्ञान किस प्रकार एक दूसरे से घनिष्टतः सहसंबंधित हैं?

4.08. सारांश

मानवीय कार्य-व्यापार इतिहास की प्रमुख विषय वस्तु है। चूँकि सभी विषय मानव समाज को समझने के लिए आवश्यक हैं, अतः इतिहास मानवीय व्यवहार को प्रभावित करने वाले विभिन्न विषयों से सहायता प्राप्त करता है। पुरातत्व विज्ञान, भूगोल, घनिष्टतः इतिहास से सहसंबंधित हैं। पुरातत्व एवं राजनीतिशास्त्र को तो इतिहास की रीढ़ कहा गया है। पुरातात्विक स्रोतों एवं भौगोलिक जानकारी के बिना प्रामाणिक इतिहास की कल्पना भी नहीं की जा सकती। भौगोलिक परिस्थितियाँ मानवीय कार्य-व्यापार को प्रभावित करती है। इतिहास के अध्ययन में मानचित्र एवं भौगोलिक क्षेत्रों की जानकारी आवश्यक है।

मानवविज्ञान तो इतिहास का ही एक अंग है। मानव की शारीरिक संरचना एवं सामाजिक संबंधों के निर्माण के विविध सोपानों को मानवविज्ञान एवं समाजशास्त्र के अध्ययन द्वारा स्पष्ट किया जाता है।

आज की राजनीति कल का इतिहास बनेगी एवं अतीत की राजनीति ही आज का इतिहास है यह वाक्य इतिहास एवं राजनीतिशास्त्र के सहसंबंध को दर्शाता है। जहाँ तक इतिहास का अर्थशास्त्र के साथ सहसंबंध का प्रश्न है तो हमें इसका उत्तर सर जॉन सीले के इस कथन में मिलता है कि अर्थशास्त्र के बिना इतिहास नींव रहित है एवं इतिहास के बिना अर्थशास्त्र फलविहीन, निष्कर्षतः पुरातत्व विज्ञान, भूगोल, मानवविज्ञान, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र एवं राजनीतिशास्त्र इतिहास के साथ घनिष्टतः सहसंबंधित हैं।

1.4.09. अपनी प्रगति की जाँच करें प्रश्नों के उत्तर

1. जॉन्सन
2. विश्व इतिहास के निर्माण में 15वीं और 16वीं सदी के भौगोलिक अनुसंधान इतिहास के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण साबित हुए। पुर्तगाल के राजकुमार हेनरी 1394-1460 ई. जिसे 'हेनरी द नेवीगेटर' कहा जाता है, ने भौगोलिक खोजों को प्रोत्साहन दिया। पुर्तगाल के बार्थोलोम्यू दियाज, स्पेन के क्रिस्टोफर कोलंबस, पुर्तगाल के वास्को-द-गामा एवं मैगलन आदि के प्रयासों से सारे विश्व को भौगोलिक अनुसंधानों द्वारा खोज निकाला गया। इन खोजों के परिणामस्वरूप लोग समूचे संसार से परिचित हुए और विश्व के देश एक दूसरे के संपर्क में आए। यूरोप के आर्थिक इतिहास की दृष्टि से उत्पन्न भौगोलिक खोजों ने उनके व्यापार एवं वाणिज्य में क्रांतिकारी परिवर्तन किए और इन्हीं भौगोलिक खोजों ने यूरोप के लोगों को इतिहास में प्रमुखता प्रदान की व समस्त विश्व का भाग्य विधाता बना दिया।
3. जॉन्सन ने लिखा है कि भूगोल के बिना इतिहास एवं इतिहास के बिना भूगोल दोनों ही की कल्पना करना असंभव है। वर्तमान में न केवल इतिहासकारों को, अपितु इतिहास के शिक्षक विद्यार्थियों एवं पाठकों को भी इतिहास लिखने, पढ़ने एवं समझने के लिए भौगोलिक मानचित्र, रेखाचित्र, एटलस, ग्लोब आदि काफी सहयोग कर सकते हैं। विश्व के प्रमुख युद्धों, विभिन्न साम्राज्यों के सीमा विस्तार को भौगोलिक मानचित्रों द्वारा आसानी से समझा जा सकता है। विभिन्न युद्धों में रेखा चित्रों द्वारा दोनों पक्षों की सेना की जमावट को देखकर हम युद्ध की जीत-हार का सूक्ष्म विश्लेषण कर सकते हैं। कई युद्धों की जीत-हार में भौगोलिक परिस्थितियों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। अतः भूगोल की मूल भूत जानकारी के द्वारा इतिहास लिखना, पढ़ना, समझना एवं आत्मसात करना आसान हो जाता है।

4. इतिहास लेखन में मानवशास्त्रीय उपागम आज अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्ध हो रहा है। जब इतिहास लेखन अभिजात वर्ग से सामान्य वर्ग की ओर उन्मुख हुआ तब मानवविज्ञान की अत्यधिक आवश्यकता महसूस हुई। आज राजनैतिक इतिहास के स्थान पर सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास लेखन पर जोर दिया जा रहा है। आज इतिहास से मात्र राजा, रानी, योद्धाओं या नायकों का ही अध्ययन नहीं किया जाता, अपितु आम मानव एवं समुदाय के भूतकालीन जीवन के बारे में भी सूचनाएँ संकलित की जाती हैं। इन परिस्थितियों में मानवविज्ञान उपागम इतिहास लेखन में अत्यंत महत्वपूर्ण साबित होता है। इतिहासकार कई तथ्यों को मानवविज्ञान के अध्ययन द्वारा आसानी से समझ सकता है। उदाहरण के लिए जटिल धार्मिक क्रियाएँ, शपथ-ग्रहण, राजा का दैवीय अधिकार, जादू-टोना, युवाग्रह इत्यादि से संबंधित जनजातीय विश्वासों को जानने-समझने में मानवविज्ञान, इतिहासकार के लिए अत्यंत उपयोगी सामग्री उपलब्ध कराता है।
5. एक विषय के रूप में मानवविज्ञान इतिहास का ही प्रमुख अंग है। मानवविज्ञान को इतिहास से अलग करके नहीं देखा जा सकता। इतिहास एवं मानवविज्ञान दोनों के ही अध्ययन का प्रमुख केंद्र मानव ही है। मानव एवं उसकी संस्कृति का अध्ययन इतिहास एवं मानवविज्ञान दोनों की ही प्रमुख विषयवस्तु है। मानवविज्ञान की उत्पत्ति इतिहास से ही हुई है। ई.ए. होबल ने अपनी कृति 'मेन इन प्रिमिटिव वर्ल्ड' में मानवविज्ञान को परिभाषित करते हुए लिखा है- "मानवविज्ञान मानव एवं संपूर्ण कार्यों का अध्ययन है।'' टी.के पन्निमेन ने मानवविज्ञान की परिभाषा इस प्रकार दी है- "मानवविज्ञान मानव का विज्ञान है। एक दृष्टिकोण से यह प्राकृतिक इतिहास की एक शाखा है, जिसके अंतर्गत जीवन प्रकृति के क्षेत्र में मानव की उत्पत्ति और स्थान का अध्ययन आता है। दूसरे दृष्टिकोण से मानवविज्ञान इतिहास का विज्ञान है।" इस तरह हम देखते हैं कि मानवविज्ञान की परिभाषाएँ, इतिहास की भी परिभाषाएँ प्रतीत होती हैं। मानवविज्ञान में मुख्यतः जनजातीय संस्कृति का अध्ययन होता है। इतिहास में भी हम विभिन्न जनजातीय समाज एवं जनाजातीय आंदोलनों का अध्ययन कर सकते हैं। इस प्रकार इतिहास एवं मानवविज्ञान में कई समानताएँ स्पष्टतः देखी जा सकती हैं।
6. प्रो गुस्तावसन ने
7. इतिहास में विभिन्न काल खंड़ों में मानव के समाज-संगठन रीति-रिवाज एवं प्रथाओं के विकास के बारे में वर्णन होता है। समाज की किसी भी परंपरा, नियम या संस्कार के विकास की पृष्ठभूमि समझकर इतिहासकार प्रामाणिक इतिहास लिख सकता है। इस पृष्ठभूमि को समझने में इतिहासकार यदि समाजविज्ञान की मदद ले तो उसे आसानी होगी। इससे इतिहास सामाजिक विकासक्रम को आसानी से समझ सकता है। परिवार, विवाह, नातेदारी, धर्म, जादू, टोटम एवं समुदाय आदि के विकास क्रम का समुचित समाधान इतिहासकार समाजशास्त्र की मदद से ही पा सकता है। प्रो. नेल्सन (Nelson) ने समाज को क्रमशः चार अवस्थाओं में विभाजित किया है-

   1. वन्यता 2. यायावर पशुचारण 3. स्थायी कृषि 4 संचय

   इस विभाजन के अनुरूप जैसे-जैसे समाज का विकास हुआ रीति-रिवाज में परिवर्तन एवं विविधता आई। समाजशास्त्र के समुचित उपयोग से ही एक इतिहासकार इस विकासक्रम को भलीभाँति समझ सकता है।
8. इतिहास एवं समाजशास्त्र के संबंध के विषय में फ्रेंक वैन आल्स्ट ने लिखा है- "मनुष्य का समाज के सदस्य के रूप में अध्ययन का यह प्रयास एक सीमा तक इतिहासकार भी करते हैं। इसी सादृश्य के कारण इतिहास और समाजशास्त्र एक दूसरे का अतिव्यापन करते हुए दृष्टिगत होते हैं और जर्मनी में

इतिहास ही समाजशास्त्र बन जाता है।" रेनियर (Renier) ने सामाजिक इतिहास को आर्थिक इतिहास की पृष्ठभूमि एवं राजनैतिक इतिहास की कसौटी कहा है। राजनैतिक एवं आर्थिक इतिहास के प्रेरक तत्वों को सामाजिक इतिहास की सहायता से समझा जा सकता है। इतिहासकार बी. शेख अली (B. Sheik Ali) ने भी लिखा है- "समाजशास्त्र का विकास सामाजिक इतिहास के परिप्रेक्ष में हुआ है और सामाजिक विकास व परिवर्तन की प्रवृत्तियों का अध्ययन समाजशास्त्र के माध्यम से ही प्रारंभ हुआ है।" विश्लेषणात्मक प्रविधि यद्यपि समाजशास्त्र में अपनाई जाती है, तथापि यह इतिहास में भी उपयोगी होती है। इतिहासकार सामाजिक संगठनों की सामग्री समाजशास्त्रीय सिद्धातों के आधार पर प्राप्त कर सकते हैं। प्रख्यात वैज्ञानिक डार्विन के अनुसार- "इतिहास समाज के गतिशील विकास की एक कथा है, जिसके प्रत्येक अंग एक दूसरे से संबंधित हैं।" इस प्रकार हम देखते हैं कि इतिहास एवं समाजशास्त्र एक दूसरे से घनिष्टतः सहसंबंधित है।

9. इतिहास एवं समाजशास्त्र में भिन्नता स्पष्ट करते हुए फ्रेंक वेन आल्स्ट ने कहा है- "इतिहास समाजशास्त्र की भाँति मनुष्य को सामाजिक अंतर्संबंधों के साथ ही नहीं देखता, अपितु उनको भी समय के प्रवाह में रखकर निरंतर परिवर्तनशील विकास में देखता है.....समाजशास्त्री समाज को समय के प्रवाह से अलग करके देखता है, वह समय को स्थिर कर देता है और यही कारण है कि वह अध्ययन यथार्थ से दूर हो जाता है। मनुष्य समय के प्रवाह में जीता है और उसके जीवन का निष्कर्ष यही है कि वह गतिशील है।''

इतिहास देश काल एवं परिस्थिति के परिप्रेक्ष्य में घटनाओं का विश्लेषण करता है और संभावित निष्कर्ष निकालता है, जबकि समाजशास्त्र देश, काल एवं परिस्थिति के अनुसार घटनाओं से मर्यादित न रहकर सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक निष्कर्ष निकालता है। निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि इतिहास एवं समाजशास्त्र दोनों में ही अतीतकालीन समाज का अध्ययन होता है। इनमें मूलभूत अंतर यह है कि इतिहास काल के सापेक्ष में गतिशील समाज का अध्ययन करता है एवं समाजशास्त्र में काल से निरपेक्ष रहते हुए स्थिर अवस्था में समाज का अध्ययन किया जाता है।

10. सर जॉन सीले ने

11. कार्ल मार्क्स ने अर्थशास्त्र को इतिहास की आधारशिला माना है। उन्होंने इतिहास की आर्थिक व्याख्या प्रस्तुत की है। इतिहास में विभिन्न समाजों का अध्ययन उनकी अर्थव्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में किया जाता है। इतिहास की दिशा एवं गति को प्रभावित करने में अर्थव्यवस्था की भूमिका को देखने हुए ही वर्तमान में आर्थिक इतिहास के लेखन पर विशेष बल दिया जा रहा है।

12. सर जॉन सीले ने

13. ए.एल. राउज

14. फ्रीमेन (Freeman) ने

15. अतीत की राजनीति आज का इतिहास है एवं आज की राजनीति भविष्य का इतिहास बनेगी। प्राचीन काल से ही राजनीतिशास्त्र इतिहास से घनिष्टतः सहसंबंधित रहा है। प्राचीनकाल में राज्य, राजा एवं राजनैतिक संस्थाएँ ही इतिहास की प्रमुख विषय वस्तु थे। ए.एल. राउज, एक्टन एवं सीले महोदय ने इतिहास एवं राजनीति विज्ञान के सह संबंधों पर विस्तार से प्रकाश डाला है। एसके. कोचर महोदय ने कहा है कि शासन तथा इतिहास का संबंध कुछ ऐसा ही हैजैसे कि वनस्पतिशास्त्र का वनस्पति से तथा जीवाश्म का प्राणियों से। प्राचीन काल से लेकर वर्तमान तक विभिन्न साम्राज्यों की राजनैतिक

गतिविधियों ने ही इतिहास को गति, दिशा एवं अर्थ प्रदान किया है। इस प्रकार इतिहास एवं राजनीति विज्ञान एक दूसरे से घनिष्टतः सहसंबंधित है।

1.4.10. अभ्यासार्थ प्रश्न

1.4.10.1. लघु उत्तरीय प्रश्न

1. इतिहास का अन्य विषयों से समवाय के संबंध को रेखांकित कीजिए।
2. प्रतिपादक के रूप में पुरातत्व, इतिहास लेखन में किस प्रकार सहयोगी है?
3. समर्थक के रूप में पुरातत्व की इतिहास लेखन में क्या उपयोगिता है?
4. भौगोलिक परिस्थितियाँ किस प्रकार इतिहास को प्रभावित करती है?
5. सामाजिक इतिहास की विवेचना में समाजशास्त्र किस प्रकार उपयोगी है?
6. इतिहास एवं मानवविज्ञान की असमानताओं का उल्लेख कीजिए।
7. राजनीतिशास्त्र को इतिहास की रीढ़ क्यों कहा गया है?
8. अर्थशास्त्र किस प्रकार इतिहास लेखन में उपयोगी है?

1.4.10.2. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. ऐतिहासिक गवेषणा में अध्ययन की अन्य शाखाएँ किस प्रकार सहयोगी सिद्ध होती है?
2. इतिहास एवं पुरातत्व के संबंधों की व्याख्या कीजिए।
3. इतिहास एवं भूगोल के संबंधों की व्याख्या कीजिए।
4. इतिहास एवं मानवविज्ञान के संबंध की विवेचना कीजिए।
5. इतिहास एवं समाजशास्त्र के संबंध का वर्णन कीजिए।
6. इतिहास एवं राजनीति विज्ञान के संबंधों की व्याख्या कीजिए।
7. इतिहास एवं अर्थशास्त्र के संबंधों का सविस्तार वर्णन कीजिए।
8. इतिहास एवं मानवविज्ञान के बीच समानता एवं असमानाओं का वर्णन कीजिए।

1.4.11. संदर्भ ग्रंथ सूची

01. Arthur, Marwic. (1973).*The Nature of History*.
02. Butterfield, H. (1951).*History and Human Relation*. London.
03. Brauce, H.M. (1937). *A History of Historical Writing.*
04. Croce, Benedetto. (1960). *History, its Theory and Practice.* New York.
05. Douring, Folke. (1960). *History as a Social Science.* Hagne.
06. Durkheim, Emile. (1969).*The Rules of Sociological Method.* New York : the Free Press.
07. Johnson. Teaching of History
08. Kochhar S.K. (1984).*Teaching of History.* Delhi.
09. Renier, G.J. (1961). *History its Purpose and Method.* London.
10. Rowse, A.L. (1963).*The Use of History.* London.
11. कुमार, रवीन्द्र. (1997). *आधुनिक भारत का सामाजिक इतिहास.* ग्रंथ : शिल्पी, दिल्ली।

12. कार, ई.एच. (1993). *इतिहास क्या है.* नई दिल्ली : मैकमिलन।
13. चौबे, रमेश. (1994). *पुरातात्विक मानवविज्ञान*. भोपाल म.प्र. हिंदी ग्रंथ अकादमी।
14. दुबे, श्यामा चरण. (1993). *मानव और संस्कृति.* दिल्ली : राजकमल प्रकाशन।
15. पाण्डेय गोविन्द चंद्र. (2003). इतिहास : स्वरूप एवं सिद्धांत जयपुर राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी।
16. पाण्डेय, जयनारायण. (1997). *पुरातत्व विमर्श. विद्यासागर प्रकाशन*, इलाहाबाद।
17. पाण्डेय, राकेश प्रकाश. (1994). भारतीय पुरातत्व. भोपाल : म.प्र. हिंदी ग्रंथ अकादमी।
18. मजूमदार, डी.एन., एवं मदन टी.एन. (1952). *सामाजिक मानवविज्ञान परिचय.* दिल्ली : मयूर पेपर बैक्स।
19. श्रीवास्तव, बी.के. (2009). *इतिहास लेखन : अवधारणात्मक विधाएँ एवं साधन.* आगरा : एस.बी.पी.डी. पब्लिशिंग हाउस।
20. सांकृत्यायन, राहुल. (1956). *अतीत से वर्तमान.* वाराणसी : विद्या मंदिर प्रेस।

खंड-2 : इतिहास की शोध पद्धति

इकाई–1 : इतिहास के स्रोत — प्राथमिक एवं द्वितीयक

इकाई की रूपरेखा

2.1.1. उद्देश्य
2.1.2. प्रस्तावना
2.1.3. प्राथमिक स्रोत
2.1.3.1. प्राचीन भारतीय इतिहास के प्राथमिक स्रोत
2.1.3.2. मध्यकालीन भारतीय इतिहास के प्राथमिक स्रोत
2.1.3.2.1. दिल्ली सल्तनत काल के प्राथमिक स्रोत
2.1.3.2.2. मुगलकालीन इतिहास के प्राथमिक स्रोत
2.1.3.2.3. विदेशी यात्रिकों के विवरण
2.1.3.3. आधुनिक भारतीय इतिहास के प्राथमिक स्रोत
2.1.3.4. प्राथमिक स्रोतों का महत्व
2.1.4. द्वितीयक स्रोत
2.1.4.1. प्राचीन भारतीय इतिहास के द्वितीयक स्रोत
2.1.4.2. मध्यकालीन भारतीय इतिहास के द्वितीयक स्रोत
2.1.4.3. आधुनिक भारतीय इतिहास के द्वितीयक स्रोत
2.1.4.4. द्वितीयक स्रोत का महत्व
2.1.5. प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों का उपयोग
2.1.6. सारांश
2.1.7. बोध प्रश्न
2.1.8. संदर्भ ग्रंथ

2.1.1. उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप –

1. प्राथमिक स्रोत को जान पाएँगे।
2. द्वितीयक स्रोत के बारे में जान पाएँगे।
3. शोध विषय में प्रयुक्त होने वाले मुख्य रूप से स्रोतों के दो प्रकारों से परिचित हो पाएँगे।

2.1.2. प्रस्तावना

किसी भी विषय के अध्ययन या शोध हेतु हमें उस विषय विशेष की जानकारी की आवश्यकता होती है और यही जानकारी स्रोत के रूप में जानी जाती है। चूँकि स्रोत सूचनाओं या जानकारियों का अनुभाग होते हैं और शोधकर्ता द्वारा किसी निष्कर्ष पर पहुँचने हेतु प्रयोग किए जाते हैं।

किसी भी विषय पर शोध कार्य हेतु मुख्य रूप से दो प्रकार के स्रोत प्राथमिक एवं द्वितीयक प्रयोग में लाए जाते हैं, ठीक इसी तरह से इतिहास विषय में भी इनका प्रयोग इसी रूप में किया जाता है।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में स्रोत निम्नानुसार हैं :-

(i) प्राथमिक स्रोत – शिलालेख, सिक्के, ताम्रपात्र आदि।

(ii) द्वितीयक स्रोत – समाचार पत्र, लेख आदि।

प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोत शोध कार्य में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। प्राथमिक स्रोत वे होते हैं, जिन्हें शोधार्थी या अध्ययनकर्ता स्वयं घटनास्थल या अध्ययन स्थल पर जाकर एकत्रित करते हैं और अपने शोध विषय के अनुरूप संकलित तथ्यों का प्रयोग करते हैं, जो कि अपने मूलरूप में उपस्थित होते हैं, जबकि इन प्राथमिक या मूल स्रोतों का अध्ययन कर नए दृष्टिकोण, नई विचारधारा और भिन्न तर्कों के साथ विश्लेषण के आधार पर जो स्रोत प्रस्तुत किए जाते हैं, उन्हें द्वितीयक स्रोत कहा जाता है।

2.1.3. प्राथमिक स्रोत

प्राथमिक स्रोतों को प्राथमिक इसलिए कहा जाता है, क्योंकि अनुसंधानकर्ता पहली बार सामग्री को मूल स्रोतों से प्राप्त करता है और स्वयं घटनास्थल पर जाकर जानकारी एकत्रित करता है तथा संबंधित लोगों से संपर्क स्थापित करता है।

अन्य शब्दों में हम कहें तो प्राथमिक स्रोत वे होते हैं, जो किसी घटना, वस्तु, व्यक्ति या कार्य प्रणाली से सीधे जुड़े होते हैं। इसमें ऐतिहासिक तथ्य एवं साक्ष्य वैधानिक दस्तावेज प्रत्यक्षदर्शी के दस्तावेज, प्रयोगों के परिणाम, ऑडियो-वीडियो क्लिप तथा संबंधित अन्य साधन जो व्यक्तिगत रूप से सीधे संबंधित हों, आते हैं।

पीटर एच. मैथ के अनुसार – ''प्राथमिक स्रोत हमें प्रथम स्तर पर संकलित की गई तथ्य सामग्री प्रदान करते हैं अर्थात् जिन लोगों ने उनको इकट्ठा किया है, उनके द्वारा प्रस्तुत की गई सामग्री के ये भौतिक स्वरूप हैं''।

श्रीमति यंग के अनुसार – ''प्राथमिक तथ्य सामग्री प्रथम स्तर पर एकत्रित की जाती है एवं इसके संकलन तथा प्रकाशन का उत्तरदायित्व उस अधिकारी पर रहता है, जिसने मौलिक रूप से उन्हें एकत्र किया था।''

इतिहास में प्राथमिक स्रोत –

(i) लिखित साधन – जीवनी, शिलालेख, कथा, वंशावलियाँ, सिक्के, मुद्राएँ, ताम्रपात्र आदि।

(ii) मौखिक परंपराएँ – गाथाएँ, कहानियाँ आदि।

(iii) कलात्मक प्रदर्शनी – जैसे ऐतिहासिक चित्र, मूर्तियाँ, सिक्के आदि।

(iv)अवशेष – मानव अवशेष, भवन, अस्त्र-शस्त्र आदि।

प्राथमिक स्रोतों के अंतर्गत विद्वानों द्वारा लिखित ग्रंथ, सर्वेक्षण रिपोर्ट, संस्मरण, यात्रा वर्णन, पत्र, डायरी, ऐतिहासिक प्रलेख, सरकारी आँकड़े तथा रिकार्ड, अन्य अप्रकाशित रिकार्ड आदि सम्मिलित हैं। इन सभी स्रोतों को मोटे तौर पर दो भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(i) व्यक्तिगत प्रलेखीय स्रोत,

(ii) सार्वजनिक प्रलेखीय स्रोत

(iii) व्यक्तिगत प्रलेखीय स्रोत – आत्मकथा, डायरी, पत्र, संस्मरण आदि।

(iv)सार्वजनिक प्रलेखीय स्रोत – रिकॉर्ड, प्रकाशित आँकड़े, पत्र-पत्रिकाओं की रिपोर्ट आदि।

2.1.3.1. प्राचीन भारतीय इतिहास के प्राथमिक स्रोत

प्राचीन भारतीय इतिहास के प्राथमिक स्रोतों को तीन भागों में बाँटा जा सकता है-

1) साहित्यिक स्रोत

2) पुरातात्विक स्रोत एवं

3) विदेशी यात्रियों के विवरण

1. साहित्यिक स्रोत- प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोतों को पुनः दो भागों में बाँटा गया है-

(i) धार्मिक साहित्य- धार्मिक साहित्य के अंतर्गत ब्राह्मण साहित्य (वेद, पुराण, आरण्यक ग्रंथ), बौद्ध साहित्य, जैन साहित्य एवं महाकाव्य आदि आते हैं।

(ii) धर्मेत्तर (लौकिक) साहित्य- धार्मिक साहित्य के अतिरिक्त धर्मेत्तर साहित्य भी प्राचीन भारतीय इतिहास पर समुचित प्रकाश डालता है। लौकिक साहित्य के अंतर्गत ऐतिहासिक एवं अर्द्ध ऐतिहासिक ग्रंथों तथा जीवनियों को लिया जा सकता है। उदाहरण के लिए कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र, कल्हण की राजतरंगिणी, विशाखदत्त का मुद्राराक्षस, कालिदास के ग्रंथ, बाणभट्ट का हर्षचरित, जयानक का पृथ्वीराज-विजय महाकाव्य आदि।

2. पुरातात्विक स्रोत

प्राचीन भारतीय इतिहास से संबंधित किसी भी विषय के शोधकार्य में पुरातात्विक स्रोतों का महत्वपूर्ण स्थान है। इतिहास की सर्वश्रेष्ठ कसौटी परंपरा नहीं पुरातत्व है। जिस ऐतिहासिक तथ्य को पुरातत्व का समर्थन नहीं उसकी नींव बालू पर मानी जाती है। पुरातत्व वह विज्ञान है, जिसके माध्यम से पृथ्वी के गर्भ में छिपी हुई सामग्रियों की खुदाई कर प्राचीनकाल के लोगों के भौतिक जीवन का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। प्राचीन भारतीय इतिहास के वैज्ञानिक एवं क्रमबद्ध अध्ययन में पुरातात्विक स्रोतों से अत्यंत मदद मिलती है। साहित्यिक स्रोतों की तुलना में पुरातात्विक स्रोत अधिक प्रामाणिक होते हैं।

पुरातात्विक स्रोतों के अंतर्गत विभिन्न अभिलेख, उन पर उत्कीर्ण प्रशस्तियाँ, मुद्राएँ, स्मारक, मूर्तिकला, चित्रकला, शैलचित्र एवं ताम्रपत्र आदि आते हैं। इतिहास लेखन में शिलालेखों का कितना महत्व है इसका अंदाज इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि दामोदर रामकृष्ण भण्डारकर ने मात्र अभिलेखों के आधार पर मौर्य सम्राट अशोक का इतिहास लिखा है।

3. विदेशी यात्रियों के विवरण

प्राचीन काल में कई विदेशी यात्री भारत आए। उन्होंने भारत में जो भी देखा, समझा उसे अपने यात्रा वृत्तांतों में लेखबद्ध किया। अतः इन विदेशी यात्रियों के विवरणों से भी महत्वपूर्ण ऐतिहासिक जानकारी प्राप्त होती है। मेगास्थनीज, फा-हियान, हुआन सांग, इ-त्सिंग एवं मार्को पोलो आदि विदेशी यात्री प्राचीन काल में भारत यात्रा पर आए। इनके द्वारा लिखे विवरण आज इतिहास लेखन के महत्वपूर्ण स्रोत माने जाते हैं।

2.1.3.2. मध्यकालीन भारतीय इतिहास के प्राथमिक स्रोत

कागज के आविष्कार के कारण साहित्य लिखने के कार्य में क्रांतिकारी प्रगति हुई। ग्रीक एवं रोम से इतिहास लेखन की कला मुसलमानों ने सीखी। भारत पर मुस्लिम आधिपत्य के साथ ही मुस्लिम विद्वान भारत आए और उन्होंने अरबी-फारसी में मध्यकालीन भारतीय इतिहास के विविध पक्षों पर विस्तार से लिखा।

2.1.3.2.1. दिल्ली सल्तनत काल के प्राथमिक स्रोत

भारत में 1206 ई. से 1526 ई. तक दिल्ली सल्तनत का काल रहा। इसके पहले 712 में भारत पर अरब आक्रमण के साथ ही मुस्लिम विद्वानों ने भारतीय इतिहास का लेखन आरंभ कर दिया था।

'चचनामा' नामक ग्रंथ से हमें अरबों के भारत (सिन्ध) पर आक्रमण की जानकारी मिलती है। इनके अलावा सल्तनत कालीन अन्य प्रमुख इतिहास के स्रोत निम्नलिखित हैं-

1. अलबरूनी की कृति 'किताब-उल-हिंद' अथवा 'तहकीक-ए-हिंद' पूर्व मध्यकालीन भारतीय इतिहास की जानकारी का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। इसके द्वारा अनुसंधानकर्ता उस समय की सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनीतिक स्थिति की जानकारी प्राप्त कर सकता है।
2. हसन निजामी की कृति ताजुल-मासिर भी 1191 ई. से 1229 ई. तक की जानकारी का महत्वपूर्ण स्रोत है।
3. मिन्हाज-उस-सिराज की कृति 'तबाकात-ए-नासिरी' से भी शोधार्थी सल्तनकालीन इतिहास की जानकारी प्राप्त कर सकता है। इस ग्रंथ के 23 तबकों (अध्यायों) में मिन्हाज ने तत्युगीन राजनीतिक स्थिति का तथ्यपरक एवं क्रमबद्ध इतिहास दिया है। अमीर खुसरो को यद्यपि सल्तनत कालीन साहित्यकार माना जाता है मगर इनके द्वारा लिखित साहित्यिक कृतियों की विषयवस्तु इतिहास पर ही केंद्रित है। उन्हें बलबन (1265-1285) के काल से ग्यासुद्दीन तुगलक (1320-1325) के काल तक के सभी सुल्तानों का राजकीय संरक्षण प्राप्त हुआ। अतः शोधार्थी वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन कर अमीर खुसरो की कृतियों 'मिफता-उल-फुतूह', 'किरान-उस-सादेन', 'आशिका', 'खजाइन-उल-फुतूह' एवं 'एजाज-ए-खुशरवी' में तत्युगीन सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक स्थिति की जानकारी प्राप्त कर सकता है।
4. जियाउद्दीन बर्नी - सल्तनतकालीन इतिहास की जानकारी के सर्वमहत्वपूर्ण स्रोत बर्नी के ग्रंथ 'तारीख-ए-फिरोजशाही' एवं 'फतवा-ए-जहाँदारी' हैं। बर्नी ने उस काल 1265 ई. से अपना इतिहास (तारीख-ए-फिरोजशाही) आरंभ किया है जहाँ कि मिन्हाज उस सिराज ने अपना इतिहास खत्म किया। इस ग्रंथ में बलबन से लेकर फिरोज तुगलक के काल तक का इतिहास मिलता है।

इनके अलावा शम्स-ए-सिराज अफीफ की कृति 'तारीख-ए-फिरोजशाही', ख्वाजा अब्दुल मलिक इसामी की कृति 'फुतूह-उस-सलातीन', फिरोज तुगलक की आत्मकथा, 'फुतूहात-ए-फिरोजशाही', एवं अहमद यादगार की कृति 'तारीख-ए-सलातीनी-ए-अफगना' एवं याहया बिन अहमद सरहिन्दी का ग्रंथ 'तारीख-ए-मुबारकशाही' भी सल्तनत कालीन इतिहास के महत्वपूर्ण स्रोत हैं।

मुगलकालीन इतिहास के प्राथमिक स्रोत

सल्तनतकाल की तुलना में हमें मुगलकाल में इतिहास के स्रोत प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। जहाँ बाबर (1526-1530 ई.) ने 'बाबरनामा' एवं जहाँगीर (1605-1627) ने 'तुजुक-ए-जहाँगीरी' के नाम से अपनी आत्मकथाएँ लिखीं वहीं अकबर (1558-1605) एवं शाहजहाँ (1627-1658) ने अपने काल का इतिहास लेखबद्ध कराया। इससे पता चलता है कि मुगल सुल्तान इतिहास लेखन के प्रति कितने जागरूक थे। मुगलकालीन इतिहास के प्रमुख स्रोत निम्नलिखित हैं-

1. **हुमायूँनामा** – हुमायूँ की बहन गुलबदन बेगम ने इस कृति का सृजन किया। इस ग्रंथ में हमें तत्युगीन राजनीतिक गतिविधियों के साथ-साथ तत्युगीन सांस्कृतिक स्थिति एवं महिलाओं की स्थिति विषयक महत्वपूर्ण स्रोत सामग्री प्राप्त होती है।
2. **अकबरनामा** – अकबर के कहने पर उसके मित्र एवं दरबारी इतिहासकार अबुलफजल ने 'अकबरनामा' ग्रंथ का लेखन किया। 'आइन-ए-अकबरी' इसी ग्रंथ का एक भाग है। 'आइन-ए-

अकबरी' में अकबर के काल की छोटी-से-छोटी जानकारी भी मिलती है इसीलिए इस ग्रंथ को अकबर कालीन गजेटियर कहा जाता है।

3. **पादशाहनामा** – शाहजहाँ के कहने पर अब्दुल हमीद लाहौरी ने 'पादशाहनामा' के रूप में शाहजहाँ कालीन इतिहास लिखा।

औरंगजेब कालीन इतिहास की जानकारी के मूलस्रोतों में मुहम्मद काजिम – बिन मुहम्मद अमीन की कृति 'आलमगीरनामा' खाफी खान की कृति 'मुंतखाब-उल-लुबाब' एवं ईश्वरदास नागर की कृति 'फतुहात-ए-आलमगीरी' है।

उक्त ग्रंथों के अलावा मुगलकालीन इतिहास की जानकारी के अन्य प्रमुख मूल स्रोतों में बदायूँनी की कृति 'मुंतखाब-उत-तवारीख एवं निजामुद्दीन अहमद की कृति 'तबाकात-ए-अकबरी' को लिया जा सकता है।

विदेशी यात्रियों के विवरण

मध्यकाल में कई विदेशी यात्री भारत की यात्रा पर आए। यदि शोधार्थी मध्यकालीन भारतीय इतिहास के किसी पक्ष पर शोधकार्य कर रहा है, तो इन विदेशी यात्रियों के विवरण उसके लिए प्राथमिक स्रोतों के रूप में कार्य करेंगे।

मध्यकालीन विदेशी यात्रियों में मार्को पोलो, (1288-1292), इब्न बतूता (1333-1342), निकोलो कोन्ती (1420-1422), अब्दुर्रजाक (1442-43), दुआर्ते बरबोसा (1516-1518), जीन वैपटिस्ट टैवर्नियर (1641-1687), निकोलो मनूची (1656-1687), फ्रांसिस बर्नियर (1658-1668) का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है। इन्होंने जो विवरण लेखबद्ध किए वे आज प्रकाशित हो चुके हैं। शोधार्थी मूल स्रोत के रूप में इनका उपयोग कर सकता है।

2.1.3.3. आधुनिक भारतीय इतिहास के प्राथमिक स्रोत

आधुनिक भारतीय इतिहास की किसी घटना, किसी व्यक्ति अथवा सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक पक्ष पर शोध करने वाले शोधार्थी के लिए निम्न स्रोत प्राथमिक स्रोत के रूप में रहेंगे।

(i) अभिलेखागारीय दस्तावेज – राष्ट्रीय अभिलेखागार नई दिल्ली एवं राज्य अभिलेखागार, भोपाल, भुवनेश्वर, बीकानेर एवं पाण्डिचेरी में उपलब्ध विभिन्न दस्तावेज प्राथमिक स्रोत के रूप में उपयोग में लाए जा सकते हैं।

(ii) व्यक्तिगत दस्तावेज – स्वाधीनता आंदोलन के दौरान विभिन्न नेताओं ने एक दूसरे को जो पत्र लिखे वे भी प्राथमिक स्रोत कहलाते हैं। महात्मा गांधी के पत्र, नेहरू जी के पत्र एवं गोखले आदि के पत्र आज प्रकाशित हो चुके हैं।

(iii) आत्मकथा – विभिन्न नेताओं की आत्मकथा भी प्राथमिक स्रोतों के रूप में उपयोग की जाती है। महात्मा गांधी की आत्म कथा 'सत्य के साथ प्रयोग', राहुल सांकृत्यायन की आत्मकथा 'मेरी जीवन यात्रा भाग-1 से भाग-5 तक, सहित कई नेताओं की आत्म कथाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं।

(iv) तत्युगीन समाचार पत्र, पत्रिकाएँ आदि भी विभिन्न समाचार पत्र संग्रहालयों में सुरक्षित हैं, वे भी प्राथमिक स्रोत के रूप में उपयोगी हैं।

2.1.3.4. प्राथमिक स्रोतों का महत्व

(i) प्राथमिक स्रोत, विश्वसनीय होते हैं, क्योंकि ये अपने मूल रूप में होते हैं।

(ii) ये समसामयिक होते हैं और उस समय की वास्तविक जानकारी प्रदान करते हैं।

(iii) इसमें तथ्यों के फेरबदल की गुंजाइश नहीं होती है, क्योंकि ये मौलिक स्वरूप में होते हैं।

(iv) प्रशासनिक स्रोतों का महत्व इसलिए भी और बढ़ जाता है, क्योंकि वस्तुनिष्ठता (objectivity) का गुण पाया जाता है।

प्रश्न - **1.** प्राथमिक स्रोतों से क्या आशय है?

2. इतिहास में प्राथमिक स्रोत के उदाहरण दीजिए।

3. प्राथमिक स्रोतों के महत्व पर प्रकाश डालिए।

4. मध्यकाल में प्राथमिक स्रोतों के उदाहरण बताइए।

5. प्राथमिक स्रोत क्यों आवश्यक है?

2.1.4. द्वितीयक स्रोत

द्वितीयक स्रोतों में घटना, व्यक्ति, वस्तु अथवा विषय से संबंधित वे स्रोत आते हैं, जो प्राथमिक स्रोतों के आधार पर वर्णित विश्लेषित व चर्चाओं तथा मूल्यांकनों द्वारा तैयार किए जाते हैं। इसमें समाचार पत्रों तथा चर्चित पत्रिकाओं के लेख, पुस्तक अथवा फिल्मों की समीक्षा, शोध पत्रिकाओं के लेख तथा कुछ वास्तविक शोधों के तथ्य शामिल किए जाते हैं।

दूसरे शब्दों में हम कहें तो द्वितीयक या प्रलेखनीय स्रोत वे होते हैं जो कि प्रकाशित या अप्रकाशित समस्त लिखित सामग्री का प्रतिनिधित्व करते हैं और जिसके माध्यम से अनुसंधानकर्ता को अपने विषय से संबंधित अनेक महत्वपूर्ण सूचनाएँ, आँकड़े आदि प्राप्त हो जाते हैं।

जैसे :- जनगणना रिपोर्ट से हमें देश की जनसंख्या आदि विषयों के संबंध में जो गणनात्मक (Quantitative) तथा विषयनिष्ठ आँकड़े व सूचनाएँ प्राप्त हो जाती हैं, उन्हें एकत्रित करना किसी भी व्यक्तिगत या सामूहिक अनुसंधानकर्ता के लिए संभव नहीं है। उसी प्रकार एक विषय से संबंधित एक व्यक्ति के पत्रों तथा डायरी से उस व्यक्ति के आंतरिक जीवन, मनोभाव तथा अन्य अनेक बातों का जिस रूप में हमें पता लगता है, वह अन्य किसी भी प्राथमिक स्रोत से हमें कदापि नहीं मिलता। साथ ही द्वितीयक स्रोतों से प्राप्त सूचनाएँ अध्ययन विषय के संबंध में अनेक ऐसीप्राथमिक व गहन जानकारी को प्रस्तुत करती है तथा उस विषय की एक ऐसी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का निर्माण करती है कि उसे जाने बिना नवीन शोधकार्य को सफलतापूर्वक उसके लक्ष्य तक पहुँचना कठिन है।

2.1.4.1. प्राचीन भारतीय इतिहास के द्वितीयक स्रोत

1. **प्राचीन भारत का इतिहास** – द्विजेद्र नारायण झा, कृष्ण मोहन श्रीमाली हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय-यह पुस्तक प्राचीन भारतीय इतिहास के द्वितीयक स्रोतों के तहत आने वाली एक महत्वपूर्ण पुस्तक है। प्रस्तुत पुस्तक में लेखकद्वय ने प्राथमिक स्रोतों का भरपूर उपयोग कर पुस्तक की गुणवत्ता में वृद्धि की है। इस पुस्तक में प्राचीन भारतीय

इतिहास के स्रोत, प्रागैतिहासिक पुरातत्व से प्रारंभ कर आद्य इतिहास से गुप्तोत्तर काल तक के इतिहास का वर्णन किया गया है।

2. **प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति**– कृष्णचंद्र श्रीवास्तव यूनइटेड बुक डिपो, 2007 - यह ग्रंथ आकार में अत्यंत बृहद है। प्रस्तुत पुस्तक में प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोतों की जानकारी के साथ ही आद्य इतिहास से लेकर मुस्लिम आक्रमण तक के समय का वर्णन किया गया है। साथ ही दक्षिण भारत के इतिहास, धर्म तथा दर्शन आदि का भी व्यापक उल्लेख किया गया है।
3. **भारतीय सामंतवाद** – रामशरण शर्मा, मैकमिलन पब्लिसर्श, 2005 – इस पुस्तक में भारत में सामंतवाद की प्रक्रिया की विवेचना की गई है। गुप्त काल से शुरू होकर सामंतवाद की प्रक्रिया किस तरह आगे बढ़ी व विस्तृत हुई उसका विशद विवेचन इस पुस्तक में किया गया है। भारतीय इतिहास के इस महत्वपूर्ण आर्थिक पक्ष की जानकारी हेतु यह द्वितीयक स्रोत अत्यंत उपयोगी है।
4. **अशोक और मौर्य साम्राज्य का पतन** – रोमिला थापर, ग्रंथ शिल्पी, 2005 – इस महत्वपूर्ण द्वितीयक स्रोत में अशोक के अभिलेखों का गहन अध्ययन किया गया है। इस पुस्तक में लेखिका ने अशोक के राज्यकाल, धर्म एवं मौर्य साम्राज्य के पतन को व्याख्यायित किया है। मौर्यकाल की जानकारी हेतु द्वितीयक स्रोत के रूप में यह पुस्तक अत्यंत उपयोगी है।
5. **प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति एवं सामाजिक संरचनाएँ**– रामशरण शर्मा, राजकमल प्रकाशन, 2008 – इस पुस्तक में प्राचीन भारतीय इतिहास की सामाजिक, आर्थिक दशा का वर्णन किया गया है। सामाजिक एवं आर्थिक दशा के अध्ययन हेतु यह द्वितीयक स्रोत अत्यंत महत्वपूर्ण है।
6. **प्रारंभिक भारत का परिचय** – रामशरण शर्मा, ओरिएंट ब्लैकस्वान प्रारंभिक भारत के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक पक्षों का वर्णन करती है। यह पुस्तक चित्रों, तथ्यों व आंकड़ों से परिपूर्ण है। द्वितीयक स्रोत के रूप में प्राचीन भारतीय इतिहास के परिचय हेतु उपयोगी है।
7. **प्राचीन भारत में राजनीतिक विचार एवं संस्थाएँ-** रामशरण शर्मा, राजकमल प्रकाशन, 2007 - प्राचीन भारतीय राजनीतिक पक्ष एवं राजनीतिक संस्थाओं का विशद वर्णन इस पुस्तक में किया गया है। राजनैतिक विचारों एवं संकल्पनाओं के अध्ययन हेतु यह द्वितीयक स्रोत अत्यंत महत्वपूर्ण है।
8. **प्राचीन भारत -** रमेश चंद्र मजूमदार की यह पुस्तक 600 ई.पू. से 1200 ई. तक के कालखंड को समाहित कर प्राचीन भारत का आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक विवरण प्रस्तुत करती है।

2.1.4.2. मध्यकालीन भारतीय इतिहास के द्वितीयक स्रोत

1. **मध्यकालीन भारत (सल्तनत से मुगल काल तक)** – सतीश चंद्र, जवाहर पब्लिशर्स, 2002 – इस पुस्तक में लेखक ने तुर्कों के आक्रमण के पश्चात् भारत में दिल्ली सल्तनत की स्थापना से लेकर खलजी, तुगलक, लोदी वंश तक के समय को दर्शाया है।
2. **मुगलकालीन भारत** – सतीश चंद्र, जवाहर पब्लिशर्स, 2002 - इस पुस्तक में मुगलों के ट्रांस-ऑक्सियाना के इतिहास से शुरू कर बाबर के भारत अभियानों व भारत विजय को बताते हुए मुगल वंश के इतिहास, समाज इत्यादि का वर्णन किया है।

3. **मध्यकालीन भारत** – भाग I - संपा. हरिश्चन्द्र वर्मा, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, 2003 - इस पुस्तक में 750-1540 ई. तक के भारतीय इतिहास का वर्णन किया गया है। उत्तर भारत में हुए त्रिपक्षीय संघर्ष, दिल्ली सल्तनत के साथ ही दक्षिण भारत के इतिहास का भी वर्णन किया गया है।
4. **मध्यकालीन भारत** – भाग II - संपा. हरिश्चन्द्र वर्मा, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, 2005 - इस पुस्तक में मुगल काल, मराठा काल इत्यादि के वर्णन के साथ ही शासन व्यवस्था, तकनीकी, शहरीकरण, वास्तुकला, चित्रकला इत्यादि पक्षों का विस्तृत वर्णन किया गया है।
5. **दक्षिण भारत का इतिहास** – के.ए. नीलकंठ शास्त्री - इस पुस्तक में दक्षिण भारत के इतिहास को प्रागैतिहासिक काल से प्रारंभ कर वर्णित किया गया है। मध्यकालीन इतिहास के संबंध में पांड्य, होयसल, काकतीय, यादव जो कि चालुक्य व चोल साम्राज्य के ध्वंसावशेष पर खड़े हुए थे, का विस्तार से वर्णन किया गया है एवं विजयनगर व बहमनी साम्राज्यों का भी वर्णन किया गया है।
6. **मध्यकालीन भारत का आर्थिक इतिहास एक सर्वेक्षण** – इरफान हबीब, राजकमल प्रकाशन, 2001 - इस पुस्तक में मध्यकालीन भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रमुख विशेषताओं को रेखांकित किया गया है। दिल्ली सल्तनत, विजयनगर एवं मुगल भारत की अर्थव्यवस्था का वर्णन किया गया है। मध्यकालीन आर्थिक पक्ष को विश्लेषित करने वाला यह अत्यंत महत्वपूर्ण द्वितीयक स्रोत है।
7. **मध्यकालीन भारत, राजनीति, समाज और संस्कृति** - सतीश चंद्र, ओरियंट ब्लैकस्वॉन, 2009 - 800 ई. से 1700 ई. तक के कालखंड से संबंधित यह पुस्तक दक्षिण भारत, दिल्ली सल्तनत, मुगल भारत का वर्णन करती है। इस पुस्तक में समाज व राजनीति से जुड़े पहलुओं का विशद विवेचन किया गया है।
8. The Agrarian System of Mughal India (1556-1707) Irfan Habib, Oxford India Paper Backs.

यह पुस्तक मध्यकालीन आर्थिक इतिहास के संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण द्वितीयक स्रोत है। मुगल काल के कृषि संबंधों, भू-राजस्व, आर्थिक प्रणाली इत्यादि को लेखक ने प्राथमिक स्रोतों का विशद अध्ययन करके इसे द्वितीयक स्रोत के रूप में सामने रखा है। मुगल काल के आर्थिक इतिहास के संदर्भ में यह द्वितीयक स्रोत किसी भी अध्येता के लिए आधार का कार्य करता है।

2.1.4.3. आधुनिक भारतीय इतिहास के द्वितीयक स्रोत

1. **भारत का स्वतंत्रता संघर्ष** – बिपन चंद्र, मृदुला मुखर्जी, आदित्य मुखर्जी हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2008 - प्रस्तुत पुस्तक में 1857 के विद्रोह से लेकर आजादी और भारत विभाजन तक के कालखंड का वर्णन किया गया है। साथ ही भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की दीर्घकालीन रणनीति एवं राष्ट्रीय आंदोलन के वैचारिक आयामों को भी विश्लेषित किया गया है।
2. **आधुनिक भारत का इतिहास** – संपा. राम लखन शुक्ल, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2003 - इस पुस्तक में सर्वप्रथम आधुनिक भारत के इतिहास लेखन का पुनरावलोकन किया गया है। यह पुस्तक ब्रिटेन की भारत पर विजय से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति तक

के कालखंड को समाहित करती है। आधुनिक भारतीय इतिहास के अध्ययन की दृष्टि से यह द्वितीयक स्रोत महत्वपूर्ण जानकारियाँ उपलब्ध कराता है।

3. **भारत में उपनिवेशवाद एवं राष्ट्रवाद** – सपां. डॉ. सत्या एम. राय, हिंदी माध्यम कार्या. निदेशालय, 2004 - इस पुस्तक में ब्रिटिश उपनिवेशवाद के स्वरूप, प्रभावों इत्यादि का विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है। साथ ही भारत में राष्ट्रवाद के उद्भव व विस्तार की कालक्रमिक विस्तृत विवेचना की गई है।
4. **भारत, गांधी के बाद** – रामचंद्र गुहा, पेंगुइन बुक्स, 2012 - इस पुस्तक में 15 अगस्त, 1947 के बाद नेहरू युग का इतिहास वर्णित है। एक नवीन देश के निर्माण की परिस्थितियों, चुनौतियों को समझने हेतु यह द्वितीयक स्रोत उपयोगी है।
5. **भारत, नेहरू के बाद** – रामचंद्र गुहा, पेंगुइन बुक्स, 2012 - इस पुस्तक में नेहरू जी की मृत्यु के बाद से वर्तमान तक का इतिहास समेटा गया है। साथ ही दंगा, राजनैतिक वर्ग, मनोरंजन इत्यादि मुद्दों को भी विश्लेषित किया गया है। समकालीन भारतीय इतिहास के अध्ययन की दृष्टि से यह द्वितीयक स्रोत महत्वपूर्ण है।
6. **आजादी के बाद का भारत** – बिपन चंद्र, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, 2011 - इस पुस्तक में राष्ट्रीय आंदोलन की विरासत एवं भारत में उपनिवेशवाद की भूमिका से प्रांरभ कर 21वीं शताब्दी के वर्तमान भारतीय इतिहास तक के कालखंड को समेटा गया है। आकार में बृहत यह ग्रंथ आजादी के पश्चात् भारत के इतिहास को समग्रता से वर्णित करता है।
7. **आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास** – सब्यसाची भट्टाचार्य, राजकमल प्रकाशन, 2001 - यह पुस्तक आधुनिक भारतीय इतिहास के आर्थिक पक्ष को विश्लेषित करती है। इसमें अत्यंत सरल भाषा में भूमि व्यवस्था, अकाल, विऔद्योगिकीकरण, कृषि का वाणिज्यीकरण, देशी व्यापारी वर्ग का उत्थान एवं औपनिवेशिक इतिहास लेखन के विभिन्न घरानों को विश्लेषित किया गया है। आधुनिक भारत के आर्थिक इतिहास से संबंधित सभी पहलुओं को इस द्वितीयक स्रोत में अत्यंत सरल शब्दों में एवं पूरी गहनता से विश्लेषित एवं वर्णित किया गया है।
8. **प्लासी से विभाजन तक – शेखर बंदोपाध्याय** – इस पुस्तक में भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना से लेकर आजादी के काल तक को वर्णित किया गया है। यह भारत में अंग्रेजी राज्य की संपूर्ण यात्रा को वर्णित करने वाला महत्वपूर्ण द्वितीयक स्रोत है।

2.1.4.4. द्वितीयक स्रोतों का महत्व

1. ऐतिहासिक महत्व के तथ्य द्वितीयक स्रोतों से प्राप्त होते हैं, न कि प्राथमिक स्रोतों से।
2. व्यक्तिगत डायरियों तथा संस्मरणों से व्यक्ति के मनोभावों, प्रकृति तथा आंतरिक गहराइयों से व्यक्ति के मनोभावों का पता स्पष्ट रूप से चलता है। अतः मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के लिए इनसे प्राप्त सामग्री बहुत महत्वपूर्ण होती है।
3. जो सूचना साधारणतः किसी अध्ययनकर्ता को नहीं मिल सकती, वह सरकारी रिकार्ड द्वारा आसानी से प्राप्त हो जाती है।
4. आत्म कथाओं से प्राप्त सूचना विश्वसनीय व लाभप्रद होती है, क्योंकि उसके अंतर्गत विविध सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक पक्षों का वर्णन निष्पक्ष दृष्टि से किया जाता है।
5. इन स्रोतों से प्राप्त सामग्री के फलस्वरूप अनुसंधानकर्ता को समय और धन की बचत होती है।

प्रश्न - 1. द्वितीयक स्रोतों से आप क्या समझते हैं? द्वितीयक स्रोतों को उदाहरण सहित बताइए।

2. इतिहास में द्वितीयक स्रोत किस तरह प्रयोग किए जाते हैं? समझाइए।

3. द्वितीयक स्रोतों का शोध कार्यों में क्या महत्व है?

4. द्वितीयक स्रोत क्यों आवश्यक हैं?

2.1.5. प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों का उपयोग

1. प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों का उपयोग शोध कार्य में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।
2. इनके उपयोग से शोध कार्य को अधिक गुणवत्तापूर्ण बनाया जा सकता है।
3. स्रोतों का उपयोग शोधकार्य में होने से विषय-वस्तु की प्रासंगिकता में वृद्धि होती है।
4. किसी भी विषय के अध्ययन या शोध कार्य में स्रोतों का उपयोग अहम रोल अदा करता है।
5. इतिहास लेखन में इन स्रोतों का उपयोग किया जाता है।
6. तत्कालीन ऐतिहासिक घटनाओं की प्रामाणिकता के लिए ये स्रोत बहुत ही उपयोगी हैं।
7. इतिहास में नवीन तथ्यों की स्थापना हेतु इन स्रोतों को उपयोग में लाया जा सकता है।
8. तत्कालीन सामाजिक स्थिति, धर्म, कला आदि के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी हेतु ये स्रोत (प्राथमिक) बहुत ही उपयोगी सिद्ध होते हैं।

2.1.6. सारांश

प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोत किसी भी शोध विषय के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण एवं उपयोगी भूमिका निभाते हैं। इस प्रकार इतिहास लेखन में प्राथमिक स्रोतों के साथ-साथ द्वितीयक स्रोतों का भी विशेष महत्व है। ये स्रोत अध्ययन हेतु एवं शोध कार्य हेतु अत्यंत उपयोगी भूमिका अदा करते हैं। प्राथमिक स्रोतों के एकत्रीकरण में शोधकर्ता का व्यक्तिगत लगाव भी काफी अहम भूमिका अदा करता है।

द्वितीयक स्रोत भी उतने ही महत्वपूर्ण होते हैं जितने कि प्राथमिक स्रोत। द्वितीयक स्रोत, प्राथमिक स्रोतों को सत्यापित करते हैं इसलिए इनकी प्रासंगिकता बढ़ जाती है।

द्वितीयक स्रोतों का महत्व प्राचीन, मध्यकालीन व आधुनिक परिप्रेक्ष्य में अधिक है लेकिन इतिहास में वस्तुनिष्ठता तथा सत्य की जानकारी देने के लिए प्राथमिक स्रोतों पर ही जोर दिया जाता है तथा आधुनिक काल के इतिहास लेखन के लिए प्राथमिक स्रोत ही पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हो जाते हैं, जिससे प्राथमिक स्रोतों का ही अधिकाधिक उपयोग किया जाता है। प्राथमिक स्रोत इतिहास का कच्चा माल होते हैं, इसलिए इतिहासकार इतिहास लेखन में प्राथमिक स्रोतों का उपयोग बहुत ही सोच-समझकर तथा अन्य तत्कालीन स्रोतों से उसकी सत्यता की जाँच करने के पश्चात् ही करते हैं, क्योंकि जो शोध ग्रंथ वह प्राथमिक स्रोत के आधार पर लिखेगा, बाद में वह द्वितीयक स्रोत के रूप में उपयोग हो सकता है।

इस प्रकार प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोत अत्यंत अहम एवं उपयोगी हैं।

2.1.7. बोध प्रश्न

2.1.7.1. लघु उत्तरीय प्रश्न

1. स्रोत कितने प्रकार के होते हैं?
2. प्राचीन भारतीय इतिहास के मूल स्रोतों पर प्रकाश डालिए?
3. मुगल कालीन इतिहास के मूल स्रोतों का उल्लेख कीजिए?
4. सल्तनत कालीन इतिहास के मूल स्रोतों का उल्लेख कीजिए?
5. आधुनिक भारतीय इतिहास के मूल स्रोतों पर प्रकाश डालिए?
6. प्राथमिक स्रोतों से आप क्या समझते हैं?
7. द्वितीयक स्रोतों से आप क्या समझते हैं?

2.1.7.2. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. स्रोत से आपका क्या आशय है? स्रोतों के प्रकार का वर्णन कीजिए?
2. भारतीय इतिहास लेखन के प्राथमिक स्रोतों से आप क्या समझते हैं। उदाहरण सहित वर्णन कीजिए?
3. प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों के उपयोग पर प्रकाश डालिए।
4. प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों को उदाहरण सहित समझाइए।
5. इतिहास लेखन में प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों की उपयोगिता बताइए।
6. ऐतिहासिक लेखन में प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों के महत्व पर प्रकाश डालिए।
7. स्रोत के प्रकार उदाहरण सहित समझाइए।

2.1.8. संदर्भ ग्रंथ

1. Carr, E.H. (1990). What is History. London : Penguin Books.
2. Gustavson, Carl, G. (1955). Preface to History. London : Megraw Hill.
3. Hockett, Hamer Carey, (1955). The Critical Method in Historical Research and Writing. New York : The Macmillan Company.
4. Shiek, Ali, B. (1981). History : Its Theory and Method. Delhi : Macmillan.
5. पांचाल एवं बघेला इतिहास के सिद्धांत एवं पद्धतियाँ जयपुर : रिसर्च पब्लिकेशन।
6. बुद्ध, प्रकाश. (1962). इतिहास दर्शन. प्रयाग : हिंदी समिति।
7. वर्मा, लाल बहादुर, इतिहास के बारे में. इलाहाबाद : बोध प्रकाशन।
8. शर्मा, तेजराम, (2004). इतिहास में शोध विधि. नई दिल्ली : कनशेप्ट पब्लिशिंग कंपनी।
9. श्रीवास्तव, बी.के., (2010). इतिहास लेखन : अवधारणा विधाएँ एवं साधन, आगरा : एस.बी.पी.डी. पब्लिशिंग हाउस।

खंड - 2 : इतिहास की शोध पद्धति

इकाई - 2 : स्रोत सामग्री का संग्रहण एवं चयन

इकाई की संरचना

2.2.1. उद्देश्य
2.2.2. प्रस्तावना
2.2.3. इतिहास लेखन में स्रोत सामग्री का महत्व
2.2.4. स्रोत सामग्री की खोज
2.2.4.1. प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन हेतु स्रोत सामग्री की खोज
2.2.4.2. मध्यकालीन भारतीय इतिहास लेखन हेतु स्रोत सामग्री की खोज
2.2.4.3. आधुनिक भारतीय इतिहास लेखन हेतु स्रोत सामग्री की खोज
2.2.5. स्रोत सामग्री
2.2.5.1. स्रोत सामग्री का संकलन
2.2.5.2. स्रोत सामग्री का चयन
2.2.5.3. स्रोत सामग्री का मूल्यांकन
2.2.6. सारांश
2.2.7. अपनी प्रगति की जाँच करें प्रश्नों के उत्तर
2.2.8. बोध प्रश्न
2.2.9. संदर्भ ग्रंथ सूची

2.2.1. उद्देश्य

इस इकाई लेखन के उद्देश्य निम्नवत हैं-

1. इतिहास लेखन में स्रोतों की उपयोगिता एवं महत्व से अवगत कराना।
2. स्रोतों की खोज के तरीकों की जानकारी देना।
3. स्रोतों के स्वरूप की जानकारी देना।
4. स्रोतों के संकलन एवं चयन के बारे में बताना।
5. स्रोतों के मूल्यांकन की विवेचना प्रस्तुत करना।
6. प्राचीन, मध्ययुगीन एवं आधुनिक भारतीय इतिहास के स्रोतों की जानकारी देना।

2.2.2. प्रस्तावना

इतिहास लेखन हेतु एक इतिहाकार सर्वप्रथम वर्ण्य-विषय का चयन करता है। वर्ण्य विषय के चयन के उपरांत इतिहासकार को वर्ण्य विषय संबंधी स्रोतों की खोज करनी होती है। बिना स्रोतों के इतिहासकार एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकते। वर्ण्य विषय हेतु स्रोतों की खोज इतिहास लेखन का प्रथम एवं महत्वपूर्ण चरण है। स्रोतों की खोज एवं संकलन के उपरांत इतिहासकार को वर्ण्यविषय के लिए आवश्यक स्रोतों का चयन करना होता है। स्रोतों के चयन के उपरांत उसके उपयोग से पूर्व इतिहासकार को उस स्रोत की प्रामाणिकता का मूल्यांकन करना होता है। स्रोत की प्रामाणिकता के मूल्यांकन में इतिहासकार का कौशल अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। स्रोत की प्रामाणिकता की जाँच में इतिहासकार को स्वयं ही एक वैज्ञानिक एवं अधिवक्ता की भूमिका निभानी होती है। प्रामाणिकता की जाँच के दौरान

इतिहासकार के मस्तिष्क में अधिवक्ताओं की भाँति जिरह होती है। उसके बाद इतिहासकार स्वयं न्यायाधीश की भूमिका निभाते हुए उस स्रोत की प्रामाणिकता का निष्कर्ष देता है। स्रोत सामग्री (स्रोतों) की प्रामाणिकता सिद्ध होने पर ही उसका उपयोग इतिहास लेखन में किया जाता है। इस इकाई में स्रोतों की खोज एवं उनके मूल्यांकन की सर्वांग विवेचना प्रस्तुत की जाएगी।

2.2.3. इतिहास लेखन में स्रोत सामग्री का महत्व

इतिहास लेखन का प्रमुख आधार स्रोत सामग्री है। बिना स्रोतों का उपयोग लिए इतिहासकार एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकता। इतिहास साहित्य से स्रोतों के महत्व के कारण ही पृथक है। साहित्यकार कल्पना का उपयोग कर सृजन करता है वहीं इतिहास में कल्पना का कोई स्थान नहीं है। इतिहासकार इतिहास का सृजन स्रोतों के आधार पर करता है। स्रोत इतिहास लेखन के लिए महत्वपूर्ण है। आज इतिहास में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का उपयोग किया जा रहा है। वैज्ञानिक इतिहास लेखन में स्रोतों का महत्व और अधिक बढ़ जाता है।

इतिहास लेखन में स्रोतों से भी अधिक स्रोतों की प्रामाणिकता महत्वपूर्ण है। प्रामाणिक स्रोत के आधार पर लिखा इतिहास स्थायी होता है। यदि स्रोत के उपयोग से पूर्व उसकी प्रामाणिकता की जाँच न की जाए तो वह इतिहास कभी भी गलत साबित हो सकता है। यही कारण है कि साहित्यक स्रोत की तुलना में पुरातात्विक स्रोत को अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। साहित्यिक स्रोत का उपयोग करने से पूर्व इसकी प्रामाणिकता की जाँच पुरातात्विक स्रोतों की सहायता से की जाती है।

प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन में पुरातात्विक स्रोतों का महत्व साहित्यक स्रोतों से अधिक है। मध्यकालीन भारतीय इतिहास लेखन में साहित्यक स्रोत अधिक महत्वपूर्ण है। आधुनिक भारतीय इतिहास लेखन में अभिलेखागारीय स्रोतों का महत्व अन्य स्रोतों से अधिक है।

अपनी प्रगति की जाँच करें

प्रश्न क्र- 1. इतिहास लेखन में स्रोतों का क्या महत्व है ?

2.2.4. स्रोत सामग्री की खोज

स्रोत सामग्री की खोज इतिहासकार का सर्वप्रथम एवं महत्वपूर्ण कार्य है। इतिहासकार अपने वर्ण्य विषय के अनुरूप स्रोत सामग्री की खोज करता है। स्रोत सामग्री की खोज कोई आसान कार्य नहीं है, उसके लिए इतिहासकार की दृष्टि वैज्ञानिक होना चाहिए। इतिहासकार जी.एम. ट्रेवेलियन (G.M. Trevelyan) ने कहा है— "ऐतिहासिक स्रोतों की खोज प्रणाली वैज्ञानिक होना चाहिए।" इतिहास की वैज्ञानिक अवधारणा 19 वीं सदी की देन है। चूँकि विज्ञान का प्रमुख आधार तथ्य होते हैं, अतः तथ्यवादी इतिहासकार इतिहास को तथ्यों का समूह मानने लगे। कार महोदय ने लिखा है कि तथ्यों के बिना इतिहासकार का प्रयास जड़विहीन तथा निरर्थक है, इतिहासकार के बिना तथ्य मृतप्राय एवं निरर्थक हैं।

ई.एच. कार महोदय का यह कथन स्रोतों के महत्व का परिचायक है। बिना स्रोतों की खोज किए लिखा गया इतिहास, इतिहास न होकर साहित्य ही रहेगा। इतिहास लेखन के पूर्व स्रोतों की खोज अति आवश्यक है। एक अच्छा इतिहासकार वह होता है, जो इतिहास लेखन के पूर्व स्रोत सामग्री की खोज में अत्यधिक समय लगाता है। जितनी अधिक और बृहत स्तर पर स्रोत सामग्री की खोज की जाएगी, इतिहास उतना ही प्रामाणिक एवं महत्वपूर्ण होगा। इतिहासविद राहुल सांकृत्यायन एक महा यायावर थे।

उन्होंने अपनी यात्राओं के दौरान मध्य एशिया का इतिहास लिखने के लिए विपुल मात्रा में स्रोत सामग्री खोजी। इसका परिणाम यह हुआ कि उनके द्वारा लिखे गए मध्य एशिया के इतिहास को अत्यधिक ख्याति प्राप्त हुई।

राहुल सांकृत्यायन द्वारा स्रोत सामग्री की खोज के संबंध में गुणाकर मुले(Gunakar Mule) ने लिखा है— "अपनी दो साल सन् 1945-47 ई. की रूस यात्रा में राहुल जी ने मध्य एशिया का इतिहास लिखने के लिए चार पाँच मन पुस्तकें जमा की थीं, पुस्तकों से बहुत से नोट लिए थे, विद्वानों से मिले थे और सन् 1951-52 ई. में दो बड़ी जिल्दों में करीब 1200 पृष्ठों में मध्य एशिया का इतिहास लिख डाला।"

मध्य एशिया का प्रामाणिक इतिहास लिखने के कारण ही राहुल सांकृत्यायन को इतिहास जगत में प्रसिद्धि मिली। प्रख्यात विद्वान नामवर सिंह ने भी उनकी स्रोत सामग्री की खोज के महत्व को इंगित करते हुए लिखा है- "राहुलजी ने एक अदभुत ग्रंथ लिखा था। उसकी टक्कर का ग्रंथ आज अंग्रेज़ी में भी नहीं है, हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं का तो सवाल ही नहीं उठता। हजारों वर्षों का इतिहास राहुल ने अकेले लिखा। राहुल लगभग 20 वर्षों तक स्रोत सामग्री एकत्रित करते रहे। अनेक भाषाएँ सीखी, उसके लिए और उन भाषाओं के द्वारा कालानुक्रम में भूखंड में फैली घटनाओं को समझा और मध्य एशिया के इतिहास का विशाल ग्रंथ दो जिल्दों में लिखा।.... अब यह देखना है कि राहुल क्या जानते थे और इतिहास दर्शन, धर्म तथा संस्कृति की कितनी बड़ी परंपराओं से उनका परिचय था तो मध्य एशिया का इतिहास देखें।"

राहुल सांकृत्यायन द्वारा लिखा गया यह ग्रंथ इस बात का सूचक है कि एक इतिहासकार के लिए स्रोत सामग्री की खोज कितनी आवश्यक है। स्रोत सामग्री जितनी अधिक एवं प्रामाणिक होगी उसके द्वारा लिखा गया इतिहास भी उतना ही प्रामाणिक होगा।

2.2.4.1. प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन हेतु स्रोत सामग्री की खोज

स्रोत सामग्री की खोज से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि वह स्रोत सामग्री किस काल के इतिहास के लिए खोजी जा रही है। विभिन्न कालखंडों के इतिहास लेखन हेतु स्रोत सामग्री भी अलग-अलग होती है। प्राचीन भारत का इतिहास लिखने हेतु हमें पुरातात्विक स्रोतों की खोज करनी होती है। यद्यपि प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन के लिए साहित्यक स्रोतों की भी खोज आवश्यक है मगर उनकी प्रामाणिकता की जाँच पुरातात्विक स्रोतों से करनी होती है।

पुरातात्विक स्रोतों के तहत आने वाली स्रोत सामग्री में इन काल में निर्मित स्मारक, भवन, दुर्ग, स्तंभ, गुफाएँ, मंदिर, मूर्तियाँ, खिलौने, पाषाण उपकरण, धात्विक अवशेष, शैल चित्र, अभिलेख, मुहरें, मनके, भूर्ज (भोज) पत्रावलियाँ, ताड़ पोथियाँ, काष्ट अवशेष, अस्थि उपकरण, शंख उपकरण व चूड़ियाँ, इत्यादि आते हैं। इस पुरातात्विक सामग्री की खोज में एक इतिहासकार के पास अतीत की परतों में झाँक सकने वाली पारदर्शी इतिहास दृष्टि की आवश्यकता होती है। पुरातात्विक स्रोत सामग्री की खोज कोई आसान कार्य नहीं है इसके लिए एक इतिहासकार को पुरातत्व विज्ञान का ज्ञान होना आवश्यक है।

पुरातात्विक स्रोतों में अभिलेखों का महत्वपूर्ण स्थान है। यह अभिलेख पाली, प्राकृत एवं संस्कृत भाषा में हैं। इन स्रोतों की खोज के लिए इतिहासकार को पाली, प्राकृत एवं संस्कृत का ज्ञान आवश्यक है। सिक्के भी प्राचीन भारतीय इतिहास की महत्वपूर्ण स्रोत सामग्री हैं। मुद्राशास्त्र का ज्ञान इस स्रोत सामग्री की खोज में सहायता करता है।

प्राचीन भारतीय इतिहास के साहित्यिक स्रोतों में धार्मिक एवं लौकिक साहित्य आता है। ये स्रोत भी अधिकांशतः संस्कृत भाषा में ही हैं। कुछ बौद्ध साहित्य पाली में है। अतः साहित्यिक स्रोतों की खोज में संस्कृत एवं पाली भाषा का ज्ञान अत्यश्यक है।

धार्मिक साहित्य के तहत वैदिक साहित्य, पुराण, ब्राह्मण ग्रंथ, बौद्ध एवं जैन साहित्य आता है। लौकिक साहित्य के तहत विभिन्न नाटक, कथा साहित्य एवं महाकाव्य आते हैं। इनमें चाणक्य का अर्थशास्त्र, विशाखदत्त का मुद्राराक्षस, दण्डी का दशकुमार चरित, भास का स्वप्नवासवदत्तम्, शूद्रक का मृच्छकटिकम्, कालिदास के ग्रंथ-ऋतुसंहारम्, कुमारसंभवम्, मेघदूतम्, विक्रमोर्वशीयम्, मालविकाग्निमित्रम्, रघुवंशम्, बाण का हर्षचरित एवं कल्हण की राजतरंगिणी आदि प्रमुख हैं।

साहित्यिक स्रोतों में चूँकि कल्पना के तत्व अधिक होते हैं अतः इनकी तुलना पुरातात्विक स्रोतों से कर प्रामाणिक इतिहास लिखा जा सकता है।

2.2.4.2. मध्यकालीन भारतीय इतिहास लेखन हेतु स्रोत सामग्री की खोज

मध्यकालीन भारतीय इतिहास लेखन की स्रोत सामग्री की खोज हेतु इतिहासकार को संस्कृत के साथ-साथ अरबी एवं फारसी भाषा का ज्ञान आवश्यक है। मध्यकालीन भारतीय इतिहास के स्रोतों का स्वरूप प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोतों से भिन्न है। जहाँ प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोतों में पुरातात्विक स्रोत महत्वपूर्ण है वहीं मध्यकालीन भारतीय इतिहास के स्रोतों में साहित्यिक स्रोत अधिक महत्वपूर्ण हैं।

मध्यकालीन भारतीय इतिहास के अधिकांश स्रोत अरबी, फारसी एवं तुर्की भाषा में हैं। जहाँ प्राचीन भारतीय इतिहास के साहित्यिक स्रोतों में कल्पना के तत्वों की अधिकता है वहीं मध्यकालीन भारतीय इतिहास के स्रोतों में कल्पना के तत्व कम एवं ऐतिहासिक तत्व अधिक हैं। यूनान एवं रोम के बाद इस्लामी इतिहास लेखन का विकास हुआ। अरबों, गजनी एवं गोरी के आक्रमण के समय एवं पश्चात् मुस्लिम इतिहासकार भारत आए। इन मुस्लिम इतिहासकारों ने अरबी एवं फारसी भाषा में इतिहास लेखन का कार्य संपन्न किया।

जे. एन. सरकार ने मुस्लिम इतिहास लेखन को तीन चरणों में विभाजित किया है

प्रथम चरण : अरबों का संपर्क एवं संघर्ष का काल (7वीं से 10वीं शताब्दी)

द्वितीय चरण : सल्तनत काल (11वीं से 16वीं सदी)

तृतीय चरण : मुगलकाल (16वीं से 18वीं सदी)

प्रथम चरण में अरबों के समय भारत आए इतिहासकारों का नाम आता है। उदाहरण के लिए अल-बालाजूरी (Al-Baladhuri) ने अपनी कृति 'फुतूह-अल-बुल्दान' में सिंध विजय का वर्णन किया है।

सल्तनत कालीन ग्रंथों में अलबरुनी की कृति— 'किताब-उल हिंद', मिन्हास-उस-सिराज की कृति— 'तबाकात-ए-नासिरी' अमीर-खुसरो की कृतियाँ- 'खजाइन-उल-फुतूह', 'तुगलुकनामा', 'मिफता-उल-फुतूह', 'किरान-उस-सादेन', 'आशिका' एवं 'एजाज-ए-खुशरबी', जियाउद्दीन बर्नी की कृति— 'तारीख-ए-फिरोजशाही' एवं 'फतवा-ए-जहाँदारी', इसामी की 'फुतूह-उस-सालातीन', इब्न बतूता की 'किताब-उल-रेहला', फिरोजशाह तुगलक की 'फुतूहात ए-फिरोजशाही', याह्या बिन अहमद

सरहिंदी की कृति— 'तारीख-ए-मुबारकशाही', अहमद यादगार की कृति— 'तारीख-ए-सलातीनी-अफगना' (Tarikh-i-Salatin-i-Afghaniyah) इत्यादि प्रमुख हैं।

उक्त स्रोतों में से इतिहासकार को अपने वर्ण्य विषय की स्रोत सामग्री खोजनी होती है। इनमें मिन्हास-उस- सिराज की 'तबाकात-ए-नासिरी' एवं जियाउद्दीन बर्नी की कृति— 'तारीख ए-फिरोजशाही' सल्तनत कालीन इतिहास के महत्वपूर्ण स्रोत ग्रंथ हैं। सल्तनत काल में कुछ विदेशी यात्री भी भारत आए। विजयनगर एवं बहमनी साम्राज्य में अधिकांश विदेशी यात्री आए। इन विदेशी यात्रियों- मार्को-पोलो, इब्न बतूता, अफनासी निकीतिन, अब्दुर्रज़ाक, निकोलो कोन्ती, डोमिनगो पाएस (Domingo Paes) आदि के यात्रा वृतांतों में भी इतिहासकार को अपने वर्ण्य विषय की स्रोत सामग्री खोजनी होती है।

मध्यकालीन भारतीय इतिहास के स्रोतों के तृतीय चरण में मुगलकालीन इतिहास के स्रोत आते हैं। मुगलकालीन ऐतिहासिक स्रोतों में बाबर कृत— 'बाबरनामा', गुलबदन बेगम कृत— 'हुमायूँनामा', मिर्जा मुहम्मद हैदर दोगलत (Mirza Muhammad Haidar Dughlat) कृत— 'तारीख-ए-रशीदी', ख्वान्दमीर कृत— 'कानून-ए-हुमायूँ', अबुलफजल की कृतियाँ- 'अकबरनामा' एवं 'आइन-ए-अकबरी', अब्दुल-कादिर-बदायूँनी कृत— 'मुंतखाब-उत-तवारीख', निजामुद्दीन अहमद कृत— 'तबाकात-ए-अकबरी', जहाँगीर कृत— 'तुजुक-ए-जहाँगीरी', मुहम्मद कासिम हिंदुशाह फरिश्ता की कृति— 'तारीख-ए-फरिश्ता', मुहम्मद काजिम-बिन मुहम्मद अमीन कृत— 'आलमगीरनामा', मुहम्मद सकी मुस्तैद खान कृत— 'म आसिर-ए-आलम-गीरी' भीमसेन कायस्थ कृत— 'नुस्खा-ए-दिलखुश', खाफी खान कृत— 'मुंतखाब-उल-लुबाब' आदि प्रमुख हैं।

इनके अलावा मुगलकाल में भी कई विदेशी यात्री-पीटर मुंडी (Peter Mundy), जीन वैप्टिस्ट टैवर्नियर (Jean-Baptiste Tavernier), निकोलो मनूची (Niccolao Manucci), फ्राँसिस बर्नियर (Francois Bernier) आदि के यात्रा वृतांत भी मुगलकालीन भारतीय इतिहास के महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्रोत हैं।

उक्त मुगलकालीन स्रोतों में से इतिहासकार को अपने वर्ण्य विषय के अनुरूप स्रोत सामग्री खोजनी पड़ती है। मध्यकालीन भारतीय इतिहास के साहित्यिक स्रोत विपुल मात्रा में उपलब्ध हैं। इतिहासकार संस्कृत, अरबी, एवं फारसी भाषा के ज्ञान का उपयोग कर वांछित स्रोत सामग्री की खोज कर सकता है।

2.2.4.3. आधुनिक भारतीय इतिहास लेखन हेतु स्रोत सामग्री की खोज

आधुनिक भारतीय इतिहास लेखन के लिए स्रोत सामग्री की खोज हेतु इतिहासकार को प्रमुखतः अभिलेखागार एवं समकालीन समाचार पत्र संग्रहालयों की मदद लेनी होती है। आधुनिक भारतीय इतिहास के स्रोतों का स्वरूप प्राचीन एवं मध्य युगीन भारतीय इतिहास के स्रोतों से भिन्न है। पुरातात्विक स्रोतों एवं दरबारी इतिहासकारों के इतिहास के स्थान पर आधुनिक भारतीय इतिहास के निर्माण में अभिलेखागारीय स्रोतों का महत्व बढ़ जाता है। अभिलेखागारीय दस्तावेज आधुनिक भारतीय इतिहास लेखन के प्रमुख स्रोत हैं। राज्य स्तरीय एवं राष्ट्रीय अभिलेखागारों में विभिन्न दस्तावेजों की कई फाइलें मिलती हैं। इन दस्तावेजों में ब्रिटिश अधिकारियों के पत्र, निजी पत्र, तत्युगीन समाचार पत्र, सरकारी फाइलें इत्यादि प्राप्त होती हैं।

आधुनिक भारत में कई पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन आरंभ हो चुका था, इन पत्र-पत्रिकाओं में विभिन्न लोगों के लेख एवं शोध पत्र रहते हैं। ये पत्र-पत्रिकाएँ भी आधुनिक भारतीय इतिहास के निर्माण में अहम भूमिका निभाती हैं। आज ऐसे कई वृद्ध जीवित हैं, जिन्होंने या तो 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में भाग लिया या फिर वे भारत छोड़ो आंदोलन के प्रत्यक्षदर्शी हैं। इन्हें खोज कर इतिहासकार इनसे मौखिक साक्षात्कार कर महत्वपूर्ण स्रोत सामग्री जुटा सकता है।

निजीपत्र एवं डायरियाँ भी आधुनिक भारतीय इतिहास के निर्माण का महत्वपूर्ण स्रोत है। आज कुछ विशिष्ट व्यक्तियों, उदाहरणार्थ महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू इत्यादि के निजीपत्र प्रकाशित हो चुके हैं। जिन लोगों के पत्र एवं डायरियाँ प्रकाशित नहीं है, इतिहासकार को चाहिए कि उन्हें स्वयं खोजे एवं उनसे महत्वपूर्ण स्रोत सामग्री एकत्रित करे।

राष्ट्रीय अभिलेखागार दिल्ली में अंग्रेज़ी भाषा के निम्नलिखित व्यक्तिगत पत्रों का संग्रह सुरक्षित है।

1. मेंक्कार्टनी पेपर्स (1776-1798 ई.)
2. खापर्डे पेपर्स (1878-1938 ई)
3. गोखले पेपर्स (1889-1915 ई.)
4. गांधी पेपर्स
5. जयकर पेपर्स (1905-1955 ई.)

1857 की क्रांति के दौरान बुंदेलखंड के विभिन्न क्रांतिकारियों ने तात्या टोपे को जो पत्र लिखा उनका संग्रह परशुराम शुक्ल'विरही' द्वारा '1857 की क्रांति के पत्र' के नाम से नगरपालिका शिवपुरी म.प्र. के सौजन्य से तात्या टोपे समिति शिवपुरी द्वारा प्रकाशित कराया गया।

'बुंदेलखंड की पूर्व रियायतों के पत्र-पांडुलिपियों का सर्वेक्षण' शीर्षक से तत्युगीन पत्र एवं पांडुलिपियों का प्रकाशन डा. कामिनी, डॉ. श्यामबिहारी श्रीवास्तव, डॉ. श्यामसुंदर सोनकिया एवं डॉ. सीता किशोर आदि ने 1994 में अनुराधा ब्रदर्स कानपुर से प्रकाशित कराया।

आधुनिक भारतीय इतिहास के स्रोतों के लिए नई दिल्ली स्थित नेहरू स्मारक संग्रहालय व ग्रंथालय (नेहरू मेमोरियल म्यूजियम लायब्रेरी) भी अत्यंत उपयोगी है। यह व्यक्तिगत पत्रों व गैर सरकारी दस्तावेजों का सबसे बड़ा संग्रहालय है। यहाँ का पांडुलिपि विभाग भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। यहाँ अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के पत्रों का संग्रह है। इनमें जवाहरलाल नेहरू, मोतीलाल नेहरू, गांधी जी, जयप्रकाश नारायण, बी.आर. अंबेडकर, मदन मोहन मालवीय, टी.टी. कृष्णमाचारी, एम.एन. शाह एवं तेज बहादुर सप्रू आदि के पत्रों का संग्रह प्रमुख है। इसी प्रकार के संग्रहालय विभिन्न राज्यों में भी स्थित है। भोपाल का माधवराव सप्रे स्मृति समाचारपत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। यहाँ पुराने विभिन्न समाचार पत्रों का संग्रह उपलब्ध है।

निष्कर्षतः आधुनिक भारतीय इतिहास लेखन के स्रोतों की खोज हेतु इतिहासकार को राष्ट्रीय अभिलेखागार नई दिल्ली, विभिन्न राज्यों के राज्य अभिलेखागार, नेहरू मेमोरियल म्यूजियम एवं लायब्रेरी नई दिल्ली, माधवराव सप्रे समाचारपत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान भोपाल सहित देश विदेश के विभिन्न पुस्तकालयों की यात्रा अत्यंत आवश्यक है।

अपनी प्रगति की जाँच करें

प्रश्न क्र- 2. मध्य एशिया का इतिहास लिखने हेतु राहुल सांकृत्यायन ने स्रोत सामग्री की खोज में कितना समय

लगाया?

प्रश्न क्र- 3. प्राचीन भारतीय इतिहास के पुरातात्विक स्रोतों पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न क्र- 4. प्राचीन भारतीय इतिहास के साहित्यिक स्रोतों पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न क्र- 5. मध्यकालीन भारतीय इतिहास के स्रोतों के स्वरूप का उल्लेख कीजिए।

प्रश्न क्र- 6. आधुनिक भारतीय इतिहास के स्रोतों का वर्णन कीजिए।

2.2.5. स्रोत सामग्री

इतिहासकार द्वारा इतिहास लेखन हेतु सर्वप्रथम स्रोतों की खोज की जाती है। स्रोतों के संकलन के उपरांत वर्ण्य विषय के अनुसार इतिहासकार आवश्यक स्रोतों का चयन करता है। चयनित स्रोतों के उपयोग के पूर्व इतिहासकार उनका मूल्यांकन करता है। मूल्यांकन द्वारा स्रोतों की प्रामाणिकता की जाँच की जाती है। स्रोतों की खोज, संकलन, चयन एवं मूल्यांकन की प्रक्रिया से गुजरकर उनके आधार पर लिखा गया इतिहास ही प्रामाणिक इतिहास होता है।

2.2.5.1. स्रोत सामग्री का संकलन

स्रोतों की खोज के उपरांत इतिहासकार उन स्रोतों से तथ्यों का संकलन करता है। तथ्य इतिहास लेखन का सर्वप्रमुख आधार है। अधिकांश विद्वानों ने तथ्य को इतिहास की रीढ़ माना है। तथ्य शाश्वत एवं पवित्र होता है, अतः यह परिवर्तन से परे होता है। स्रोत से प्राप्त तथ्यों से विभिन्न निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। सर जान क्लार्क महोदय ने इतिहास की तुलना गूदेदार फल से की है। उनके अनुसार तथ्य इस इतिहास रूपी फल की गुठली होता है, जिसमें फल का बीज निहित होता है। उन्होंने तथ्य से निकाले गए विभिन्न निष्कर्षों को फल का गूदा कहा था, जो जायकेदार तो हो सकता है मगर उसमें उत्पादन क्षमता नहीं होती। अतः उनका मानना था कि इतिहास के तथ्य तो स्थिर व निश्चित होते हैं मगर निष्कर्षों की स्थिति बालू की दीवार की तरह होती है, जो कभी भी ढह सकती है।

तथ्य एक ही होता है मगर विभिन्न इतिहासकार उससे अलग-अलग निष्कर्ष निकालते हैं। तथ्य अपरिवर्तनीय रहता है। तथ्य किसी एक निष्कर्ष से बँधा हुआ न होकर स्वतंत्र है। इस संबंध में सीपी. स्काट ने लिखा है- "तथ्य पवित्र है, मंतव्यों पर कोई बंधन नहीं।'

इतिहास की वैज्ञानिक अवधारणा 19वीं शताब्दी की देन है। पाश्चात्य इतिहासकारों का एक समूह 'तथ्य संप्रदाय' अर्थात् तथ्यवादियों का था। इनका स्पष्ट मानना था कि इतिहास एक विज्ञान है, चूँकि विज्ञान का प्रमुख आधार प्रामाणिक स्रोतों से संकलित तथ्य होता है, अतः तथ्यवादी इतिहासकार इतिहास को तथ्यों का समूह मानने लगे। इसी कारण 19वीं शताब्दी को तथ्यों की शताब्दी माना गया। मि. ग्रेण्ड ग्राइड ने लिखा था, "मुझे तथ्य चाहिए और जीवन में हमें केवल तथ्यों की आवश्यकता है।" उनका मानना था कि इतिहास में अधिकाधिक तथ्यों का समावेश होना चाहिए। 19वीं सदी के चौथे दशक में राँके (Ranke) महोदय ने तथ्यों के यथावत प्रस्तुतीकरण पर बल दिया।

इस तरह स्रोतों एवं उनमें अंतर्निहित तथ्यों के संकलन पर जोर दिया जाने लगा। वर्ण्यविषय से संबंधित स्रोत किसी भी स्थान, देश एवं भाषा में हो सकते हैं, अतः इनका संकलन एक श्रम साध्य कार्य है। यह कार्य एक समर्पित इतिहासकार ही कर सकता है। स्रोतों के संकलन में एक माह, एक वर्ष अथवा दस वर्ष भी लग सकते हैं। अतः इतिहासकार को स्रोतों के संकलन में धैर्य रूपी अग्नि परीक्षा से गुजरना पड़ता है। राहुल सांकृत्यायन का उदाहरण हमारे सामने है। उन्होंने मध्य एशिया का इतिहास लिखने हेतु

लगभग 20 वर्ष तक न केवल स्रोत सामग्री ही संकलित की, अपितु विभिन्न भाषाएँ भी सीखीं। उनसे प्रेरणा ग्रहण करते हुए हमें स्रोत सामग्री के चयन हेतु हर संभव प्रयास करना चाहिए।

2.2.5.2. स्रोत सामग्री का चयन

स्रोतों के संकलन की प्रक्रिया में एक परेशानी यह भी होती है कि आवश्यक स्रोतों के संकलन के साथ-साथ अनावश्यक स्रोत भी संकलित हो जाते हैं। स्रोतों के संकलन के उपरांत इतिहासकार को वर्ण्य विषय के अनुरूप स्रोतों के चयन की प्रक्रिया से गुजरना होता है। स्रोतों के संकलन की तुलना में आवश्यक स्रोतों के चयन की प्रक्रिया में इतिहासकार को अत्यधिक सावधानी, कौशल, ज्ञान एवं दूरदर्शिता का प्रयोग करना पड़ता है। स्रोतों के संकलन से कहीं अधिक महत्वपूर्ण संकलित तथ्यों में से आवश्यक स्रोतों का चयन होता है। एक इतिहासकार का पुनीत कर्तव्य है कि वह अपने द्वारा संकलित स्रोतों के भंडार में से मात्र आवश्यक स्रोतों का चयन करे और अपनी व्याख्या के माध्यम से समसामयिक रुचि के अनुरूप चयनित स्रोतों की व्याख्या करे। समसामयिक रुचि के अनुरूप इतिहास लेखन को व्याख्या प्रधान बनाने के लिए स्रोतों का चयन अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

जो इतिहासकार स्रोतों का चयन न कर संकलित सभी स्रोतों को अपने इतिहास में स्थान देते हैं, वे अपने वर्ण्य विषय के साथ न्याय नहीं कर पाते। आवश्यक स्रोतों के चयन के बिना लिखा गया इतिहास असंगत एवं बोझिल हो जाता है। यह भी समझ में नहीं आता कि आखिर इतिहासकार क्या सिद्ध करना चाहता है। इतिहासकार को यह नहीं भूलना चाहिए कि असंगत विचार जन सामान्य को नहीं समझाए जा सकते, क्योंकि मानव मस्तिष्क की संरचना कुछ इस प्रकार से हुई है कि वह केवल तर्कसंगत विचारों को ही ग्रहण कर सकता है। अतः इतिहासकार को चाहिए कि वह असंगत तथ्यों का परित्याग करे एवं तर्कसंगत तथ्यों का चयन कर इतिहास लिखे, जो कि पाठक के लिए बोधगम्य एवं ग्राह्य हो।

आवश्यक स्रोतों के चयन के लिए इतिहासकार को चाहिए कि अपने लेखन से संबंधित उसके विचार स्पष्ट हों और वह किसी प्रश्न का उत्तर देने के ख्याल से आवश्यक ऐतिहासिक तथ्यों का चयन करे। प्रो. लैगलोई (Langlois) एवं साइनोबो ने इस तारतम्य में लिखा है, "यदि इतिहास पर तथ्यों के ढेर में खो जाने की दुविधा व्याप्त हो तो अन्य विज्ञानों की तरह उसे प्रश्नोत्तर की प्रक्रिया से लिखना चाहिए।" इतिहासकार अपने इतिहास को प्रश्नोत्तर परिकल्पनाओं द्वारा मुख्य धारा से भटकने से रोक सकता है। इस संबंध में प्रो. गोटवाक ने भी लिखा है- "जब इतिहासकार तथ्यों को इकट्ठा कर लेखन के चरण पर पहुँचता है, तो उस समय तक प्रश्नवाचक परिकल्पना या विषय वस्तु स्पष्ट हो जानी चाहिए। यदि ऐसा नहीं होता है तो उसे लेखन स्थगित कर देना चाहिए और यह विचार करना चाहिए कि वह किसी निष्कर्ष पर क्यों नहीं पहुँचा।''

स्रोतों के चयन में एक और महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि इतिहासकार को अपने पूर्वग्रहों से ऊपर उठकर स्रोतों का चयन करना चाहिए। स्रोतों के चयन में अपनी रुचि के स्थान पर सत्यान्वेषण पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। अपने मन के विपरीत सत्यान्वेषण हेतु स्रोतों का चयन कर इतिहासकार को वृहद दृष्टिकोण का परिचय देना चाहिए। स्रोत पवित्र होते हैं, इतिहासकार को यह ध्यान रखना चाहिए कि वह अपनी व्याख्या द्वारा स्रोतों को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत न करे। निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि इतिहासकार को स्रोतों के चयन में पूर्ण निष्ठा, वैज्ञानिक दृष्टि, कौशल एवं तर्कशक्ति का परिचय देना चाहिए।

2.2.5.3. स्रोत सामग्री का मूल्यांकन

कॉलिंगवुड महोदय के अनुसार स्रोतों पर आधारित इतिहास अतीत का विज्ञान है। जर्मनी में राँके, इंग्लैंड में एक्टन, इटली में क्रोचे एवं अमेरिका में कार्ल बेकर इत्यादि ने इतिहास अध्ययन की वैज्ञानिक एवं तकनीकी विधाओं को प्रस्तुत कर क्रांति का नेतृत्व किया। इतिहास लेखन में प्रामाणिक स्रोतों का अनुप्रयोग आज के वैज्ञानिक युग में समय की पुकार है। समाज इतिहास में यथार्थता की प्रस्तुति चाहता है, क्योंकि यथार्थता ही इतिहास की सर्वश्रेष्ठ कसौटी है। ऐसे में इतिहासकार का दायित्व और अधिक बढ़ जाता है कि वह संकलित स्रोतों की प्रामाणिकता की जाँच करे।

स्रोतों की प्रामाणिकता का मूल्यांकन साक्ष्यों द्वारा किया जाता है। राहुल सांकृत्यायन के अनुसार— "ऐतिहासिक यथार्थवाद की रक्षा तभी हो सकती है, जब इतिहास उस सामग्री पर आधारित हो, जो कि व्यक्ति या वर्णित व्यक्ति या समाज की समसामयिक हो। समसामयिक चीजें अधिकतर भंगुर होती हैं, इसलिए जितने ही अधिक पुराने इतिहास में हम घुसते हैं, उसकी सामग्री कम होती जाती है चाहे वह सामग्री कितनी भी कम क्यों न हो, पर प्रत्यक्षदर्शी होने से सर्वोपरि साक्षी का प्रमाण वही हो सकती हैं। वही इतिहास की सर्वश्रेष्ठ कसौटी है।''

स्रोतों का मूल्यांकन इसलिए आवश्यक है कि कतिपय शरारती तत्व स्रोतों के साथ छेड़छाड़ करते हैं। ऐसी ही जालसाजी पर प्रकाश डालते हुए पुरातत्वविद राहुल सांकृत्यायन ने लिखा है— "इतिहासकार के.पी. जायसवाल को किसी ने उड़ीसा से सूचित किया था कि वहाँ अशोक कालीन ब्राह्मी लिपि में एक ताड़पोथी मिली है। उन्होंने उसी समय कह दिया कि वह जाली होगी। बाइस तेइस शताब्दियाँ पार करना हमारे देश में ताड़ पत्र के लिए संभव नहीं है। अधिक आग्रह करने पर देखा, वही बात सही निकली।'' उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि इतिहास के क्षेत्र में कतिपय लोग इस प्रकार की जालसाजियाँ करते हैं। मुगल कालीन चित्रों में इस प्रकार की जालसाजियाँ अकसर देखने को मिलती हैं। इन जालसाजियों का प्रमुख कारण यह है कि म्यूजियम और देश-विदेश के निजी संग्राहक अच्छे दाम पर ऐसे चित्रों को ले लेते हैं। इस प्रकार की जालसाजियों को पकड़ने के लिए इतिहासकार को अनुभवी एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण का होना आवश्यक है।

स्रोतों के मूल्यांकन के दौरान पुरातात्विक एवं साहित्यिक स्रोतों की जालसाजियों के पर्दाफाश में एक इतिहासकार को एक वैज्ञानिक एवं वकील की दोहरी भूमिका का निर्वाह करना पड़ता है।

एक वैज्ञानिक की भाँति इतिहासकार अपने स्रोतों से प्राप्त तथ्यों की जाँच साक्ष्य द्वारा करता है। पुरातात्विक स्रोतों के मूल्यांकन में वैज्ञानिक विधि अधिक कारगर है। कोई पुरातात्विक अवशेष कितना पुराना है उसका काल निर्धारण कार्बन-14 (C-14) विधि द्वारा किया जा सकता है।

आवश्यकता पड़ने पर एक इतिहासकार को स्रोतों के मूल्यांकन में अधिवक्ता की भूमिका भी निभानी होती है। इतिहासकार अतीत के स्रोतों की प्रामाणिकता की जाँच के लिए अतीत के ही अन्य ऐतिहासिक स्रोतों का साक्ष्य के रूप में उपयोग करता है। 1939 ई. में हिस्टोरिकल एसोसिएशन में भाषण देते हुए लार्ड सैकी ने स्पष्ट किया था कि इतिहासकार तथा अधिवक्ता द्वारा साक्ष्यों के प्रयोग में समानता है। दोनों का उद्देश्य साक्ष्यों के आधार पर घटना की प्रामाणिकता की जाँच करना है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि एक अधिवक्ता के विपरीत एक इतिहासकार स्वयं ही वादी-प्रतिवादी होता है। यहाँ तक कि न्यायाधीश भी स्वयं ही होता है। किटसन् क्लार्क इतिहासकार को साक्ष्यों के संकलन एवं प्रस्तुतीकरण में पूर्णतः स्वतंत्र नहीं मानते। उनके अनुसार इतिहासकार समसामयिक तथा आने वाली पीढ़ी की रुचि द्वारा नियंत्रित होता है। कुछ हद तक उसकी स्वयं की अंतश्चेतना भी उसे

नियंत्रित करती है। अपनी अंतश्चेतना एवं समसामयिक रुचि को देखते हुए ही एक इतिहासकार स्रोतों के संकलन एवं उनमें निहित तथ्यों के प्रस्तुतीकरण में स्वयं न्यायाधीश, जूरी, वादी, प्रतिवादी, अधिवक्ता, जाँचकर्ता एवं गुप्तचर होता है। इतिहासकार भली भाँति जानता है कि उसकी थोड़ी-सी भी गलती आने वाली पीढ़ी द्वारा माफ नहीं की जाएगी। अतः इतिहासकार को स्रोतों के मूल्यांकन में हर संभव सावधानी बरतनी होती है।

निष्कर्षतः स्रोतों के संकलन एवं चयन की प्रक्रिया से गुजरने के पश्चात् इतिहासकार अपने अनुभव कौशल एवं अधिवक्ता व वैज्ञानिकता की भूमिका निभाते हुए चयनित स्रोतों की प्रामाणिकता का मूल्यांकन करता है। एक ही विषय वस्तु के कई स्रोत मिलने पर उनका मूल्यांकन कर इतिहासकार उनका क्रम सुनिश्चित करता है और तद्नुसार ही उनका इतिहास लेखन में उपयोग करता है।

अपनी प्रगति की जाँच करें

प्रश्न क्र- 7. स्रोतों का संकलन क्यों आवश्यक है?

प्रश्न क्र- 8. स्रोतों के चयन से आपका क्या तात्पर्य है?

प्रश्न क्र- 9. स्रोतों के मूल्यांकन से आप क्या समझते हैं?

प्रश्न क्र- 10. कब एक इतिहासकार को एक वैज्ञानिक एवं अधिवक्ता की भूमिका निभानी पड़ती है?

2.2.6. सारांश

इतिहासकार इतिहास लेखन हेतु सर्वप्रथम वर्ण्य विषय का चयन करता है। इसके बाद वह अपने वर्ण्य विषय के अनुरूप स्रोतों की खोज करता है। प्राचीन, मध्यकालीन एवं आधुनिक भारतीय इतिहास के स्रोतों के स्वरूप में पर्याप्त भिन्नता है, इतिहासकार को यह तथ्य सदैव ध्यान रखना चाहिए। स्रोतों की खोज के साथ ही इतिहासकार स्रोतों का संकलन करता जाता है। संकलित स्रोतों में से वर्ण्य विषयानुसार स्रोतों का चयन एक महत्वपूर्ण क्रिया है, जिसमें इतिहासकार को अपने कौशल एवं वैज्ञानिक दृष्टि का उपयोग करना होता है।

स्रोतों की खोज के पश्चात् इन स्रोतों में कल्पना एवं यथार्थ के तत्वों की खोज हेतु इतिहासकार स्रोतों का मूल्यांकन करता है। जो स्रोत पूर्णतः कल्पनात्मक तथ्यों पर आधारित हों उनका परित्याग कर इतिहासकार उन स्रोतों को वरीयता देता है, जिनमें यथार्थ तथ्यों की अधिकता है। स्रोतों के मूल्यांकन में इतिहासकार को कभी एक वैज्ञानिक तो कभी एक न्यायाधीश की भूमिका निभानी होती है। यथार्थता इतिहास की सर्वश्रेष्ठ कसौटी है अतः प्रामाणिक स्रोतों का उपयोग ही ऐतिहासिक यथार्थता की रक्षा कर सकता है। जन सामान्य एक इतिहासकार से यथार्थ प्रस्तुति की आशा करता है अतः आम जनता की उस कसौटी पर खरा उतरने के लिए भी इतिहासकार को यथार्थता के प्रस्तुतीकरण हेतु स्रोतों की प्रामाणिकता का मूल्यांकन करना होता है।

2.2.7. अपनी प्रगति की जाँच करें प्रश्नों के उत्तर

1. इतिहास लेखन में स्रोतों का अत्यधिक महत्व है। बिना स्रोतों के इतिहासकार अपनी लेखनी तक नहीं उठा सकता। जीवन के लिए जो महत्व श्वास का है वही महत्व इतिहासकार के लिए स्रोतों का है। इतिहासकार इतिहास लेखन हेतु वर्ण्य विषय का चयन करने के उपरांत सर्वप्रथम स्रोतों की ही खोज करता है। स्रोतों में भी प्रामाणिक स्रोतों की पहचान कर इतिहासकार उनका उपयोग करता है।

इतिहासकार एवं स्रोत एक दूसरे के पूरक हैं। स्रोत पवित्र होता है। स्रोत स्वयं नहीं बोलता, इतिहासकार उससे बुलवाता है। बिना इतिहासकार के स्रोत निर्जीव होता है, इतिहासकार उसे जीवन प्रदान करता है। प्रामाणिक स्रोतों का उपयोग कर इतिहासकार जो इतिहास लिखता है उससे उसे जग में प्रतिष्ठा मिलती है।

2. राहुल सांकृत्यायन एक महा यायावर थे, उन्होंने अपनी सर्व महत्वपूर्ण कृति 'मध्य एशिया का इतिहास' लिखने हेतु स्रोत सामग्री की खोज में अत्यंत श्रम किया। इस ग्रंथ के महत्व एवं उसमें लगे समय पर प्रकाश डालते हुए नामवर सिंह ने लिखा है- "हजारों वर्षों का इतिहास राहुल ने अकेले लिखा। राहुल लगभग 20 वर्षों तक स्रोत सामग्री एकत्रित करते रहे। उसके लिए अनेक भाषाएँ सीखी और उन भाषाओं के द्वारा कलानुक्रम में भूखंड में फैली घटनाओं को समझा और मध्य एशिया के इतिहास का विशाल ग्रंथ दो जिल्दों में लिखा।"
3. पुरातात्विक स्रोतों के तहत-भूतकाल में निर्मित स्मारक, भवन, दुर्ग, स्तंभ, गुफाएँ, मंदिर, मूर्तियाँ, खिलौने, पाषाण उपकरण, धात्विक अवशेष, शैलचित्र, अभिलेख, मुहरें, भोजपत्र पत्रावलियाँ, ताल पोथियाँ, काष्ठ अवशेष, अस्थि उपकरण, शंख उपकरण एवं चूड़ियाँ इत्यादि आते हैं।
4. प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोतों में धार्मिक एवं लौकिक साहित्य आते हैं। धार्मिक साहित्य के तहत वैदिक साहित्य, पुराण, ब्राह्मण ग्रंथ, बौद्ध एवं जैन ग्रंथ इत्यादि आते हैं। लौकिक साहित्य के तहत विभिन्न नाटक, कथा साहित्य एवं महाकाव्य आदि आते हैं। इनमें चाणक्य का 'अर्थशास्त्र', विशाखदत्त का 'मुद्राराक्षस', दण्डी का 'दशकुमारचरितम्', भाष का 'स्वप्नवासवदत्तम्', शुद्रक का 'मृच्छकटिकम्', कालिदास के ग्रंथ- 'ऋतुसंहार, 'कुमारसंभवम्', 'मेघदूतम्', 'विक्रमोर्वशीयम्', 'मालविकाग्निमित्रम्', 'रघुवंश', बाण का 'हर्षचरित' एवं कल्हण की 'राजतंरिगिणी' आदि प्रमुख है।
5. मध्यकालीन भारतीय इतिहास के स्रोतों का स्वरूप प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोतों से भिन्न है। जहाँ प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोतों में साहित्यिक स्रोतों के स्थान पर पुरातात्विक स्रोतों का महत्व अधिक है वहीं मध्यकालीन भारतीय इतिहास के स्रोतों में साहित्यिक स्रोतों का महत्वपूर्ण स्थान है। ग्रीक एवं रोम के पश्चात् इस्लामी इतिहास लेखन का विकास हुआ। मुस्लिम आक्रमण के पश्चात् इस्लामी इतिहासकार भारत आए और उन्होंने ऐतिहासिक ग्रंथों का सृजन किया। यही कारण है कि मध्यकालीन भारतीय इतिहास लेखन के साहित्यिक स्रोत भारी मात्रा में मौजूद हैं। इनका उपयोग कर प्रामाणिक इतिहास लिखा जा सकता है।
6. आधुनिक भारतीय इतिहास लेखन के स्रोतों में अभिलेखागारीय स्रोतों का महत्वपूर्ण स्थान है। आधुनिक भारतीय इतिहास की स्रोत सामग्री राष्ट्रीय अभिलेखागार दिल्ली एवं विभिन्न राज्यस्तरीय अभिलेखागारों में मौजूद है। इन अभिलेखागारों में समकालीन समाचार पत्रों की फाइलें, ब्रिटिश अधिकारियों के पत्र एवं ब्रिटिश शासन काल के समय के सरकारी दस्तावेज मौजूद हैं। इसी प्रकार नेहरू मेमोरियल म्यूजियम एवं लायब्रेरी दिल्ली में विभिन्न स्वाधीनता संग्राम के सेनानियों के टेप, व्यक्तिगत पत्र एवं गैर सरकारी दस्तावेज मौजूद हैं। यहाँ जवाहरलाल नेहरू, मोतीलाल नेहरू, गांधीजी, जयप्रकाश नारायण, बी.आर. अंबेडकर आदि के पत्रों का संग्रह मौजूद है। 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन, गोवा मुक्ति आंदोलन के कई प्रत्यक्षदर्शी आज जीवित हैं उनसे साक्षात्कार कर भी आधुनिक भारतीय इतिहास लेखन की महत्वपूर्ण शोध सामग्री एकत्रित की जा

सकती है। इसके अलावा निजी पत्र, आत्मकथा, तत्युगीन पत्र-पत्रिकाएँ भी आधुनिक भारतीय इतिहास लेखन की महत्वपूर्ण स्रोत सामग्री है।

7. इतिहासकार को अपने वर्ण्य विषय का चयन कर इतिहास लेखन हेतु सर्वप्रथम वर्ण्य विषय के अनुसार स्रोतों का संकलन करना पड़ता है। स्रोतों का संकलन एक अत्यधिक महत्वपूर्ण एवं श्रम साध्य कार्य है। स्रोतों के संकलन में इतिहासकार को धैर्य की अग्निपरीक्षा से गुजरना होता है। इतिहासकार जितने अधिक स्रोतों का संकलन करेगा उसे इतिहास लेखन में उतनी ही सुविधा होगी। स्रोतों के संकलन की प्रक्रिया में उसे विभिन्न स्थानों की यात्रा करनी होती है एवं विभिन्न लोगों से तत्संबंधी पूछताछ करनी होती है। स्रोतों का संकलन एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है।
8. स्रोतों के संकलन से कहीं अधिक महत्वपूर्ण कार्य वर्ण्य विषय के अनुसार आवश्यक स्रोतों का चयन है। स्रोतों के चयन में इतिहासकार को अपने अनुभव, कौशल एवं वैज्ञानिक दृष्टि का प्रयोग करना पड़ता है। बिना चयन किए संकलित स्रोतों का उपयोग इतिहास को बोझिल बना देता है। तर्कसंगत एवं रुचिकर इतिहास की प्रस्तुति हेतु स्रोतों का चयन अति आवश्यक है। स्रोतों कीखोज एवं संकलन के चरण में वर्ण्यविषय की विषय वस्तु इतिहासकार के मस्तिष्क में साफ हो जाती है। इससे इतिहासकार को वांछित स्रोतों के चयन में आसानी होती है।
9. स्रोतों के चयन के पश्चात् इतिहास लेखन में उनका उपयोग करने से पूर्व स्रोतों का मूल्यांकन आवश्यक है। स्रोत प्रामाणिक हैं अथवा नहीं यह जाँच करना अत्यावश्यक है। स्रोतों से कल्पना एवं यथार्थता के तत्वों की जाँच हेतु स्रोतों का मूल्यांकन आवश्यक है। स्रोतों के संकलन के समय हमारा ध्यान मात्र संकलन पर ही रहता है। संकलन के पश्चात् चयनित स्रोत के मूल्यांकन द्वारा ही उनमें से यथार्थ तथ्यों को प्राप्त कर सकते हैं।
10. स्रोतों के मूल्यांकन द्वारा इतिहासकार उसमें अंतर्निहित तथ्यों की प्रामाणिकता की जाँच करता है। स्रोतों के तथ्यों की प्रामाणिकता की जाँच साक्ष्यों द्वारा की जाती है। इतिहासकार एक स्रोत की प्रामाणिकता की जाँच अन्य स्रोत से उसका मिलान कर करते हैं। स्रोतों की प्रामाणिकता की जाँच में एक इतिहासकार आवश्यकतानुसार कभी एक वैज्ञानिक की तो कभी एक अधिवक्ता की भूमिका निभाता है। एक वैज्ञानिक की भाँति इतिहासकार घटना की सत्यता की जाँच करता है। कभी-कभी एक अधिवक्ता की भाँति इतिहासकार को स्रोत की प्रामाणिकता की जाँच में अपने मन में तर्क-वितर्क करना पड़ता है। तर्क वितर्क के पश्चात् इतिहासकार को एक न्यायाधीश की भाँति निष्कर्ष भी देना होता है।

2.2.8. बोध प्रश्न

2.2.8.1. लघु उत्तरीय प्रश्न

1. इतिहास में स्रोत सामग्री की खोज का क्या महत्व है?
2. प्राचीन भारतीय इतिहास के साहित्यिक स्रोतों पर प्रकाश डालिए।
3. मुगलकालीन भारतीय इतिहास के स्रोतों पर प्रकाश डालिए।
4. अभिलेखागारीय स्रोतों से आप क्या समझते हैं?
5. आधुनिक भारतीय इतिहास के स्रोतों के स्वरूप पर प्रकाश डालिए।

2.2.8.2. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. इतिहास लेखन में स्रोतों के महत्व की विवेचना कीजिए।
2. इतिहास लेखन में स्रोत सामग्री की खोज की सविस्तार विवेचना कीजिए।
3. इतिहास लेखन हेतु स्रोतों के संकलन एवं चयन की प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।
4. इतिहास लेखन हेतु स्रोतों के मूल्यांकन की व्याख्या कीजिए।
5. आधुनिक भारतीय इतिहास के स्रोतों के स्वरूप की सविस्तार विवेचना कीजिए।

2.2.9. संदर्भ ग्रंथ सूची

01. Arthur Marwick. (1973). The Nature of History.
02. Burhes H.E. (1962). A History of Historical Writing. New York.
03. Sarka. Jagdish Narayan History of the History Writing in Medieval India
04. K.A. Nizami. (1983). On History and Historians of Medieval India.
05. K.D. Bhagrava. (ed). (1958). An Introduction to Archives, Director of Archives, Government of India. New Delhi.
06. Basu Purnendu. (1960).Archives and Records : What Are They ?, National Archives of India, New Delhi,
07. Carr, E.H. (1962). What is History. London : Macmillan.
08. Elliot and Dowson. (1964). History of India as told by its own Historians. (8 Volumes). Allahabad : Kitab Mahal,
09. चंद्र सतीश. (1999*). मध्यकालीन भारत में इतिहास लेखन,* धर्म और राज्य का स्वरूप . दिल्ली : ग्रंथ शिल्पी।
10. खन्ना के.सी. (1990). *भारत में विदेशी यात्री.* नई दिल्ली : नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया।
11. श्रीवास्तव हरिशंकर. मध्यकालीन भारतीय इतिहास लेखन।
12. दुबे, सीताराम. (2001). समसामयिक इतिहास लेखन : प्रविधि और प्रवृत्तियाँ दिल्ली : प्रतिभा प्रकाशन।
13. पाण्डेय, जयनारायण. (1993). पुरातत्व विमर्श. इलाहाबाद : विद्यासागर प्रकाशन।
14. वार्डर ए.के. (1987). भारतीय इतिहास लेखन की भूमिका. चण्डीगढ़ : हरियाणा साहित्य ग्रंथ अकादमी।
15. सांकृत्यायन, राहुल. (1956). अतीत से वर्तमान. वाराणसी : विद्या मंदिर प्रेस।
16. राय, कोलेश्वर. (1999). इतिहास दर्शन. इलाहाबाद : किताब महल।

खंड - 2 इतिहास की शोध पद्धति

इकाई – 3 स्रोत परीक्षण: बाह्य एवं आंतरिक

इकाई की रूपरेखा

2.3.1 उद्देश्य
2.3.2 प्रस्तावना
2.3.3 इतिहास के स्रोत
2.3.3.1 इतिहास के उपकरण
2.3.3.2 इतिहास का काल विभाजन
2.3.3.3 इतिहास के स्रोत
2.3.4 स्रोतों का परीक्षण
2.3.5 बाह्य परीक्षण
2.3.5.1 बाह्य परीक्षण प्रक्रिया
2.3.6 आंतरिक परीक्षण
2.3.6.1 सकारात्मक परीक्षण
2.3.6.2 नकारात्मक परीक्षण
2.3.6.3 इतिहासलेखन में त्रुटियों की खोज
2.3.7 तथ्य एवं साक्ष्य
2.3.7.1 तथ्य
2.3.7.2 साक्ष्य
2.3.8 सारांश
2.3.9 बोध प्रश्न
2.3.9.1 लघुउत्तरीय प्रश्न
2.3.9.2 दीर्घउत्तरीय प्रश्न
2.3.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

2.3.1 उद्देश्य

इतिहास क्या है? यह प्रश्न जितना सरल है इसका उत्तर उतना ही कठिन है। विश्व में सबका कुछ न कुछ अर्थ होता है अर्थात अर्थहीन कुछ भी नहीं होता। अतः इतिहास का भी अपना अर्थ होता है। काल, व्यक्ति, स्थान, और स्रोत इतिहास के उपकरण माने जाते हैं जिनमें स्रोत सर्वप्रमुख होते हैं किंतु स्रोतों की सत्यता जानने हेतु उनका दोहरा परीक्षण करना अनिवार्य होता है जिन्हें क्रमशः बाह्य एवं आंतरिक परीक्षण कहते हैं। प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य स्रोतों के बाह्य एवं आंतरिक परीक्षण की विस्तृत विवेचना करना है।

2.3.2 प्रस्तावना

'स्रोत' इतिहास का एक उपकरण होता है जो इतिहास के शोध हेतु अति महत्वपूर्ण है। विद्वानों द्वारा इतिहास के स्रोतों को दो भागों में विभाजित किया गया है। (1) साहित्यिक एवं (2) पुरातात्विक

ये दोनों ही स्रोत विभिन्न कालों के होते हैं जो व्यक्तिपरक इतिहास की विविध घटनाओं एवं स्थलों से संबंधित होते हैं। ऐतिहासिक स्रोतों के संकलन के बाद का दूसरा चरण मूल स्रोतों की सत्यता की जाँच करना होता है। अतः प्रस्तुत इकाई में स्रोतों के बाह्य एवं आंतरिक परीक्षण की विस्तृत विवेचना के साथ-साथ इतिहास में तथ्यों एवं साक्ष्यों की भूमिका पर भी प्रकाश डाला जाएगा। इकाई के अंत में विषय का सारांश, बोधप्रश्न एवं संदर्भ ग्रंथ सूची भी दी जाना प्रस्तावित है।

2.3.3 इतिहास के स्रोत

इतिहास के स्रोतों का विवेचन करने से पूर्व इतिहास के उपकरणों एवं काल विभाजन को निम्नानुसार स्पष्ट किया जा रहा है।

2.3.3.1 इतिहास के उपकरण

इतिहास क्या है? यह जानने के बाद इतिहास के शोधक के लिए इतिहास के उपकरणों को जानना भी अति आवश्यक होता है। इतिहास के महत्वपूर्ण उपकरण इस प्रकार हैं -

(क) काल (ख) व्यक्ति

(ग) स्थान (घ) घटना

(ड) स्रोत

2.3.3.2 इतिहास का काल विभाजन

इतिहास में काल का विशेष महत्व होता है। इतिहास की आधारशिला ही काल पर रखी जाती है। काल का निर्धारण इतिहास का एक महत्वपूर्ण अंग है। इतिहास के सामान्यतया तीन काल होते हैं -

(1) प्रागैतिहासिक काल (2) आद्यैतिहासिक काल

(3) ऐतिहासिक काल

विश्व में मान्यता है कि आदि मानव का इतिहास उस समय प्रारंभ होता है, जब वह सभ्यता के प्रथम अवस्था पर अवतरित होता है। सभ्यता के प्रथम चरण में आदि मानव खानाबदोश एवं आखेट के जीवन से अपना इतिहास प्रारंभ करता है। पुरातत्वविदों ने मानव सभ्यता का इतिहास हिमकाल, पूर्व-पाषाणकाल, मध्यपाषाणकाल, नवपाषाण काल, ताम्रकाल, कांस्यकाल और लौह काल में बाँट कर लिखा है। वर्तमान में इतिहास को प्राचीन, मध्यकालीन, आधुनिक एवं अत्याधुनिक कालों में विभाजित कर सर्वत्र उसका अध्ययन किया जा रहा है।

2.3.3.3 इतिहास के स्रोत

इतिहास का अंतिम उपकरण स्रोत होता है। इतिहास के विद्वानों द्वारा इतिहास के स्रोतों को दो भागों में विभाजित किया गया है।

(1) साहित्यिक (2) पुरातात्विक

ये दोनों ही स्रोत विभिन्न कालों के होते हैं जो व्यक्तिपरक इतिहास की विविध घटनाओं एवं स्थलों से संबंधित होते हैं। इनमें से अनेक साक्ष्यपरक उपकरण होते हैं। पुरातात्विक उत्खननों से प्राप्त ये साक्ष्यपरक उपकरण इतिहास निर्माण में बड़े सहायक सिद्ध होते हैं। पुरातात्विक महत्व के ये अवशेष जहाँ ऐतिहासिक स्थलों के उत्खनन से प्राप्त होते हैं, वहीं ये ऐतिहासिक स्थलों में ऊपर से भी बड़ी मात्रा में मिलते हैं। पुरातात्विक सामग्री कभी साहित्यिक स्रोतों से प्राप्त तथ्यों का समर्थन करती है तो कभी नए तथ्यों को उद्घाटित करती है। वैज्ञानिक खोजों पर आधारित पुरातात्विक सामग्री इतिहास निर्माण में बड़ी उपयोगी होती है। समस्त पुरातात्विक स्रोतों को पाँच भागों में विभाजित किया जा सकता है।

(1) अभिलेख (शिलालेख, ताम्रपत्र, स्तंभलेख, मुद्रालेख एवं प्रतिमालेख)
(2) मुदाएँ (स्वर्ण, रजत, ताम्र एवं चमड़े की मुदाएँ)
(3) प्रतिमाएँ (ब्राह्मण, बौद्ध एवं जैन प्रतिमाएँ)
(3) स्मारक (स्तूप, गुहा, मंदिर, मस्जिद, मकबरे, किले, महल, मीनार)
(4) अन्य सामग्री (उपकरण, मृद्भांड, मोहरें, मनके, खिलौने)

अतः पुरातत्वीय उत्खनन पूर्णतः वैज्ञानिक प्रणाली होती है जो इतिहास और संस्कृति के कालक्रम निर्धारण में बड़ी महत्वपूर्ण होती है। इन पुरातात्विक स्रोतों के अतिरिक्त साहित्यिक स्रोतों का भी इतिहास निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान है। साहित्यिक स्रोतों को दो भागों में विभाजित कर उनका अध्ययन किया जाता है।

(1) धार्मिक साहित्य (ब्राह्मण, बौद्ध एवं जैन साहित्य)
(2) धर्मनिरपेक्ष साहित्य (तत्कालीन लेखकों एवं कवियों की रचनाएँ)

विदित है कि लगभग 70 प्रतिशत इतिहास का निर्माण या इतिहास लेखन का कार्य साहित्यिक स्रोतों के आधार पर ही होता है। प्राचीन भारतीय इतिहास जानने के साहित्यिक साधनों से स्पष्ट हो जाता है कि एलफिंस्टन तथा कावेल जैसे कुछ पाश्चात्य इतिहासकारों का यह कथन पूर्णतः भ्रामक है कि भारतीय इतिहास में वैदिक काल की घटनाओं का वर्णन सविस्तार क्रमबद्ध नहीं किया जा सकता।

2.3.4 स्रोतों का परीक्षण

इतिहास का शोध अन्य सभी विषयों में शोध की तरह एक लंबी प्रक्रिया है। इसे करते समय योग्य एवं सफल परिणाम प्राप्त हो इसके लिए उसके महत्वपूर्ण चरणों की जानकारी शोधकर्ता को होनी चाहिए। प्रत्येक विषय के शोध की प्रक्रिया भिन्न-भिन्न होती है। इतिहास के शोधकर्ता को पूर्वकालीन लिखित साधनों का उपयोग बड़े पैमाने पर करना होता है। अतः ऐतिहासिक लिखित सामग्री कहाँ प्राप्त होगी इसे शोधकर्ता को पहले ही सोचना होता है। केवल ऐतिहासिक जानकारी से इतिहास का निर्माण नहीं होता। यद्यपि यह सत्य है, फिर भी उसके बिना इतिहास का भवन खड़ा नहीं हो सकता, यह भी उतना ही सत्य है।

मूल ऐतिहासिक स्रोतों के संकलन के बाद का दूसरा चरण मूल स्रोतों की सत्यता की जाँच करना होता है। इतिहास, पूर्वकाल की कपोलकल्पित घटना नहीं है, जबकि जो प्रत्यक्ष घटित हुआ हो, उसका प्रकाशन इतिहास में अपेक्षित होता है। पूर्वकाल में क्या हुआ, कैसे हुआ ? इसकी जानकारी देने का कार्य मूल स्रोत करते हैं, किंतु उससे प्राप्त होने वाली जानकारियों की जाँच करना शोधकर्ता के लिए आवश्यक होता है। वर्तमान काल में होने वाली घटनाओं के वर्णन में सही-झूठ का मिश्रण जिस तरह कई बार दिखाई देता है, उसी तरह का मिश्रण पूर्वकाल की जानकारी देने वाले मूल स्रोतों में भी होने की पूर्ण संभावना रहती है। अतः साधन तत्कालीन हैं या नहीं और उनसे मिलने वाली जानकारी विश्वसनीय है या नहीं, इनका परीक्षण कर लेना अत्यंत आवश्यक होता है। जानकारी के पूर्ण सत्य सिद्ध होने पर ही उसका उपयोग ऐतिहासिक प्रमाण के रूप में किया जा सकता है।

ऐतिहासिक स्रोतों के परीक्षण का यह चरण शोधात्मक एवं विश्लेषणात्मक होता है। इस चरण के दौरान शोधकर्ता की भूमिका एक निरीक्षक के समान होती है। जिस तरह जासूसी विभाग का निरीक्षक आँख और कान खुले रख कर घटना की सूक्ष्म जाँच करता है, इसी तरह का कार्य शोधकर्ता को करना होता है। इसके लिए उसके पास कुशाग्र बुद्धि, उत्तम विवेक और सदा संदेह करने की वृत्ति होनी चाहिए।

जो घटनाएँ हुई या जैसी घटित हुई, क्या वे सचमुच में हुई हैं? और जिस तरह उन्हें पढा जा रहा है, क्या वे वैसी ही हुई हैं ? इसकी जाँच-पड़ताल करना अत्यावश्यक होता है क्योंकि विश्वसनीयता की कसौटी पर परख कर निश्चित की गई जानकारी को ही प्रमाण का स्वरूप प्राप्त होता है, और उसका उपयोग इतिहास लेखन में किया जा सकता है। तथ्य इतिहास लेखन का आधार होता है। इस संदर्भ में हॉकेट का यह एक वक्तव्य महत्वपूर्ण है कि, घटना का निश्चित परीक्षण शोधकर्ता का मुख्य उद्देश्य होता है क्योंकि आगामी समस्त प्रक्रियाओं का मूल आधार ये परीक्षित घटनाएँ ही होती हैं।

स्रोत परीक्षण: बाह्य एवं आंतरिक

स्रोतों से प्राप्त जानकारी प्रमाणों के रूप में उपयोग की जा सकेगी या नहीं इसका निर्णय करने के लिए शोधकर्ता को उस पर परीक्षण की प्रक्रिया करनी होती है। विश्वसनीयता निर्धारित करने के लिए स्रोतों पर दो प्रकार के परीक्षण अनिवार्य होते हैं। (1) स्रोतों का ब्राह्य परीक्षण और (2) स्रोतों का आंतरिक परीक्षण।

2.3.5 बाह्य परीक्षण

बाह्य परीक्षण, किसी भी स्रोत के जाँच की प्रथम प्रक्रिया है। ऐतिहासिक स्रोत प्राप्त होने पर उसकी सत्यता परखने के लिए प्रारंभ में उन स्रोतों के विषय में स्वयं को ही कुछ प्रश्न पूछने होते हैं और उनकी सत्यता के विषय में आशंका प्रकट कर जाँच प्रारंभ करनी होती है। इस संबंधमें सामान्यतया जो प्रश्न हो सकते हैं वे निम्नलिखित हैं -

(1) शोध के लिए चयनित विषय से संबंधित वह स्रोत है या नहीं?

(2) स्रोत, मूल रूप में है या मूल की प्रति है- स्रोत असली है या नकली है?

(3) स्रोत, शोध एवं लेखन के काल से संबंधित है या नहीं?

(4) स्रोत का विषय शोध के विषय से संबंधित है या नहीं?

(5) स्रोतों में किन स्थलों का उल्लेख है? क्या वे स्थल शोध विषय से संबंधित हैंया नहीं?

इन प्रश्नों का उद्देश्य मूल स्रोतों का लेखक, स्थल एवं काल को निर्धारित करना होता है। इसे ही बाह्य परीक्षण कहते हैं। विद्वानों ने बाह्य परीक्षण को दो भागों में बाँटा है। (1) लेखन परीक्षण तथा (2) लेखक परीक्षण। विश्व में कुछ इतिहासकार बाह्य परीक्षण को गौण मानते हैं। हॉकेट महोदय बाह्य परीक्षण को एक अपरिपक्व प्रक्रिया मानते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि इस प्रक्रिया का महत्व गौण है। यह परीक्षण की मात्र प्रथम सीढ़ी होती है। किले में प्रवेश करना हो तो प्रथम प्रवेश द्वार खोलना पड़ता है। इसके बिना किले के अंदर प्रवेश नहीं हो सकता, इसी तरह स्रोतों का लेखक कौन है? उसका काल कौन सा है? और उसका स्थल कौन सा है? इसकी जाँच किए बिना अगली सीढ़ी पर कदम नहीं रखा जा सकता। स्रोत यदि शोध विषय से संबंधित न हो और नकली सा लगता हो तो क्या उसे छोड़ देनाचाहिए या उसका आगामी परीक्षण किया जाना चाहिए ?

2.3.5.1 बाह्य परीक्षण प्रक्रिया

इतिहास के स्रोतों के बाह्य परीक्षण हेतु निम्नलिखित प्रक्रिया को अपनाना पड़ता है -

(1) बाह्य परीक्षण के लिए सर्वप्रथम शोध विषय के स्वरूप का विचार करना आवश्यक होता है। यदि शोध का विषय मौर्य कालीन हो और स्रोत शुंगकालीन हो तो प्रथम दृष्टि में ही उसे अलग करना चाहिए।

(2) बाह्य परीक्षण के लिए द्वितीय कदम यह है कि उपलब्ध स्रोत मूल स्वरूप में हस्तलिखित है या उसकी प्रति है ? इसे जाँचने की एक विधि होती है। प्रत्येक काल की अपनी एक लेखन शैली होती है। अक्षरों के घुमाव-फिराव अलग-अलग होते हैं, विशिष्ट शब्दों का प्रयोग मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि स्रोत उस काल का है या नहीं। यहाँ इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि पूर्वकालिक दरबारी स्रोतों पर विशिष्ट स्थान पर मुहर लगाई जाती थी। इससे काल निश्चित करने में सहायता मिलती है। इसी तरह किन्हीं मूल स्रोतों/हस्तलिखितों की प्रति बनाते समय कुछ गलतियाँ अनजाने में भी हो जाती हैं। मूल स्रोत के कुछ शब्द प्रति बनाते समय छूट जाते हैं, कुछ मूल स्रोत में होते ही नहीं है और प्रति में डाल दिए जाते हैं। अतः स्रोत के परीक्षण से यह स्पष्ट हो जाता है कि स्रोत अपने मूल स्वरूप में है या उसकी प्रति बनाई गई है।

किसी भी स्रोत के हस्तलिखित की एक प्रति प्राप्त होने पर यह भी खोजा जाता है कि क्या उसकी और प्रतियाँ उपलब्ध हैं। यदि हैं तो उन्हें खोज कर उनका तुलनात्मक अध्ययन करना होता है। तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि स्रोत का लेखक एक ही है या अलग-अलग। साथ ही सभी प्रतियों में अक्षरों के घुमाव समान हैं या नहीं ? प्रयुक्त शब्दों में समानता है या नहीं ? इन सभी प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने होते हैं। उदाहरण के लिए, पुरानी पोथियों की दो-तीन प्रतियाँ मिल जाए तो कागज का स्वरूप, अक्षरों के घुमाव, शब्दों का उपयोग इत्यादि से ज्ञात हो जाता है कि मूल प्रति कौन सी है। मूल स्रोत में हुई त्रुटियों को सुधारने का प्रयास उसकी प्रति बनाते समय किया गया है। इससे भी मूल स्रोत एवं उसकी प्रति के बीच अंतर स्पष्ट हो जाता है।

(3) इसी प्रकार यदि कोई मूल स्रोत प्राप्त होता है और यदि स्रोत में लेखक का नाम पाया जाता है तो वही मूल लेखक है या नहीं अथवा क्या किसी दूसरे व्यक्ति ने मूल लेखक के नाम से लिखा है इसका पता भी लगाया जा सकता है। कभी-कभी किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति के नाम से अन्य कोई व्यक्ति लेख लिखता है ताकि प्रतिष्ठित व्यक्ति को महत्व प्राप्त हो सके। ऐसी परिस्थितियों में स्रोत में लिखित विषय का आशय और उसमें प्रयुक्त शब्दों को पढ़ कर मूल अथवा नकल का निर्णय करना चाहिए।

(4) मध्ययुग में शासकों के दरबार से चलने वाले शासकीय पत्रव्यवहारों में, आज्ञापत्र, दानपत्र, अन्य शासकों से होने वाला पत्रव्यवहार, इत्यादि पर निश्चित स्थान पर मुहर लगाने की पद्धति होती थी। इस तरह की मुहर न दिखने पर उस दस्तावेज की सत्यता के विषय में प्रथम दृष्टि में ही आशंका निर्मित होती है अथवा निश्चित स्थान के अतिरिक्त अन्यत्र मुहर लगी हो तो भी संदेह की संभावना होती है। इसी तरह मुगलकालीन तथा मराठाकालीन स्रोतों में पत्र का प्रारंभ और अंत विशेष रीति से और विशेष शब्दों से होता था। ऐसा न पाए जाने पर स्रोत का अवलोकन सूक्ष्मता से किया जाना चाहिए।

(5) लेखन एवं उसके काल निर्धारण के लिए कालगणनाविज्ञान, भाषाविज्ञान, लिपिविज्ञान, ज्योतिष विज्ञान, मुद्राशास्त्र आदि इतिहास के सहायक शास्त्रों से सहायता लेना चाहिए। यदि किसी स्रोत पर काल का उल्लेख न हो तो उसमें उल्लेखित घटनाओं अथवा व्यक्तियों से स्रोत का काल निर्धारण किया जा सकता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि स्रोत में वर्णित विषयवस्तु समकालीन लेखन पद्धति के अनुकूल है या नहीं? लेख में जिस काल का उल्लेख होगा उससे लेख में वर्णित घटनाओं एवं व्यक्तियों के उल्लेख में भी समरूपता होना चाहिए तभी वह स्रोत उपयोगी माना जा सकता है। शेरशाहकालीन किसी स्रोत में यदि अकबरकालीन किसी व्यक्ति का अथवा किसी घटना का उल्लेख हो तो उसे निश्चित रूप से नकली मानना चाहिए। अतः स्रोत के समस्त कारक सुसंगत होना चाहिए।

(6) लेखक एवं काल की खोज करने पर उस स्रोत में उल्लेखित स्थल की भी जाँच करना चाहिए। शोध का विषय जिस क्षेत्र से संबंधित हो उस क्षेत्र का उल्लेख उसमें है या नहीं, या क्या किसी अन्य क्षेत्र का उल्लेख है? इसकी खोज एवं अन्वेषण अनिवार्यतः करना चाहिए। उदाहरण के लिए, औरंगजेब के दक्षिण अभियानों का अध्ययन करते समय यदि रावी, सतलज, व्यास, झेलम और चिनाब नदियों का उल्लेख मिले और उत्तर की ओर के गाँवों के नामों, नदियों और पर्वतों के उल्लेख हों तो वह स्रोत असली नहीं है, यह निश्चित रूप से माना जा सकता है। कभी-कभी स्थलों के स्पष्ट उल्लेख स्रोतों में नहीं होते, ऐसे समय मुख्य स्थल के निकट के कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों जैसे नदियाँ, पर्वत, उद्योग, मार्ग एवं निकटवर्ती गाँवों के उल्लेख भी सत्यता प्रकट करते हैं। विभिन्न क्षेत्रों के अनुसार कभी-कभी शब्दों का उपयोग परिवर्तित दिखता है तथा अक्षरों की शैली में बदलाव होता है अथवा एक ही शब्द भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयुक्त होता है। अतः भिन्न क्षेत्रों में भाषाई परिवर्तन की शोधकर्ता को जानकारी होना आवश्यक है। इस आधार पर स्रोतों का स्थल अथवा क्षेत्र संभावित रूप से निर्धारित किया जा सकता है।

निष्कर्षतः यह माना जा सकता है कि बाह्य परीक्षण का उद्देश्य मूल स्रोतों की सत्यता का पता लगाना होता है। स्रोत का लेखक कौन है ?, स्रोत का काल क्या है ?, क्या इसके विषय में शोध पूर्ण हो गया है ?, इन तीन बातों में सुसमता है या नहीं ? यदि इन तीनों तथ्यों में शोधकर्ता आश्वस्त हो जाए तो बाह्य परीक्षण की कसौटी पर उस स्रोत को मूल एवं सत्य मानना चाहिए। बाह्य परीक्षण के साथ परीक्षण का प्रथम चरण समाप्त हो जाता है। तत्पचशात् शोधकर्ता को मूल स्रोत का आंतरिक परीक्षण करना होता है।

बाह्य परीक्षण एवं आंतरिक परीक्षण के संदर्भ में डॉ. शेख अली द्वारा प्रस्तुत उदाहरण बहुत ही स्पष्ट है। उनके अनुसार ''डाक से प्राप्त कोई लिफाफा पाते ही हमारी जिज्ञासा जागृत होती है और हम उस लिफाफे पर नाम और पता देखते हैं तत्पश्चात् यह देखते हैं कि पत्र का प्रेषक कौन है एवं उसके स्थल का उल्लेख है या नहीं ? इसके बाद हम देखते हैं कि वह पत्र किस दिन डाक में डाला गया है? और किस दिन वह हमें प्राप्त हुआ ? इसके लिए हम डाक विभाग की मुहरें देखते हैं। यही बाह्य परीक्षण कहलाता है। इन तीन बातों के विषय में आश्वस्त होने पर हम लिफाफा खोल कर उसके अंदर की विषय वस्तु को पढ़ते हैं कि उसमें क्या कहा गया है, उसका आशय क्या है ? इसका अवलोकन करते हैं।'' यह आंतरिक परीक्षण कहलाता है। इसी प्रकार डॉ. के. एन. चिटणिस कहते हैं, ''बाह्य परीक्षण में स्रोतों की सत्यता को जाँचना पड़ता है, जबकि आंतरिक परीक्षण में उसकी विश्वसनीयता निर्धारित करनी होती है।'' डॉ. चिटणिस के इस कथन से स्पष्ट होता है कि मूल स्रोतों के बाह्य एवं आंतरिक दोनों ही प्रकार के परीक्षण अनिवार्य हैं।

2.3.6 आंतरिक परीक्षण

मूल स्रोतों की विश्वसनीयता निर्धारित करने की दृष्टि से बाह्य परीक्षण की तुलना में आंतरिक परीक्षण अधिक महत्वपूर्ण है। मूल स्रोत का लेखक, काल एवं स्थल के विषय में बाह्य परीक्षण से संतुष्ट होने के बाद, उसके आशय की विश्वसनीयता तय करना आंतरिक परीक्षण के अंतर्गत आता है। किसी पत्र का आंतरिक परीक्षण करने का अर्थ है कि पत्र में लेखक ने क्या लिखा है ? उसमें कौन-कौन से विषय हैं? किन-किन व्यक्तियों या घटनाओं के उल्लेख हैं ? किसके विषय में क्या राय व्यक्त की है ? उसके पीछे का उद्देश्य क्या होगा ? लेखक की मानसिकता एवं वैचारिक भावना क्या होगी ? क्या वास्तव में पत्र में कुछ निहित अर्थ भी दिखाई देता है ? ऐसे अनेक प्रश्नों के उत्तर खोजना आंतरिक परीक्षण होता है। यह संपूर्ण प्रक्रिया नकारात्मक स्वरूप की होती है अर्थात् जो हाथ लगा उसे सत्य ही स्वीकार न करते हुए निरंतर

संदेह करते हुए, उसके असत्य होने की स्वीकृति मान कर उसे सत्य की कसौटियों पर जाँचना होता है। अंत में सभी आशंकाएँ निर्मूल होने पर शेष जानकारी ऐतिहासिक तथ्य अथवा प्रमाण के रूप में शोधकर्ता लेखन में उपयोग करता है।

आंतरिक परीक्षण के दो भाग होते हैं। (1) सकारात्मक परीक्षण (2) नकारात्मक परीक्षण

2.3.6.1 सकारात्मक परीक्षण

सकारात्मक परीक्षण का उद्देश्य लेख के आशय को समझना होता है। लेख में लेखक ने क्या क्या लिखा है ? और उसका अर्थ क्या है ? इसकी खोज शोधकर्ता को करना आवश्यक होता है। स्रोत में लिखे तथ्य विश्वसनीय हैं या नहीं, यह विचार सकारात्मक परीक्षण के चरण में अपेक्षित नहीं होता। स्रोत के आशय का आकलन करने के लिए स्रोत के पूरे लेखन का विश्लेषण करना आवश्यक होता है क्योंकि जब एक से अधिक वक्तव्य किए गए हों तो उनके सभी सत्य अथवा सभी असत्य होने की संभावना कम ही होती है। उनमें से कुछ सत्य अथवा कुछ संदिग्ध होने से आशंका उत्पन्न कर सकते हैं। इसलिए सकारात्मक परीक्षण के समय लेख के कुछ वक्तव्यों को हिस्सों में बाँट कर उनमें से प्रत्येक की स्वतंत्र रूप से जाँच करना और भी उत्तम होता है। इससे स्रोत के प्रत्येक वक्तव्य के विषय में सूक्ष्मता से विचार कर उसकी सत्यता की जाँच की जा सकती है।

इसी तरह लेख का संपूर्ण एवं सही अर्थ समझने के लिए यह भी देखना होता है कि उपलब्ध सामग्री इतिहास के दृष्टिकोण से आवश्यक है भी या नहीं। यह जाँच अति आवश्यक होती है। स्रोत का समुचित आकलन करने के लिए स्रोत जिस काल का हो, उस काल की भाषा का ज्ञान होना आवश्यक है क्योंकि भाषा का उपयोग कई बार लचीला होता है। भाषा का उपयोग काल और क्षेत्र के अनुसार बदलता है। एक ही शब्द भिन्न-भिन्न काल अथवा क्षेत्रों में अलग-अलग अर्थों में उपयोग किए जाते हैं। संभव है कि किसी काल में प्रचलित शब्द कालांतर में प्रचलन से हट जाता है। इसी तरह नगरीय तथा ग्रामीण भाषा में भी अंतर होता है। ये सभी भाषा भेद शोधकर्ता को पता हों तो स्रोत में वर्णित लेख का अर्थ लगाना आसान हो जाता है।

कभी-कभी स्रोत के लेख की भाषा पढ़ते समय उसका अर्थ सुसंगत नहीं लगता। कुछ विचित्र सा या असंगत लगता है। ऐसे समय में उस वक्तव्य का क्या अर्थ है ? प्रत्यक्ष उपयोग किए गए शब्दों के अर्थ की अपेक्षा लेखक को कुछ और कहना है, यह बात ध्यान में आती है। ऐसा होने पर वक्तव्य का संदर्भ ध्यान में रख कर उसमें उसका अर्थ खोजना होता है। उदाहरण के लिए सरदार पटेल के विषय में सदैव 'लौह पुरुष' शब्द का प्रयोग किया जाता है। इसका सीधा अर्थ विचित्र लगता है। इसके लिए उसका आंतरिक अर्थ देखना होता है और ऐसा प्रतीत होता है कि उनके निर्णय एवं कृतियाँ लोहे की तरह अटल एवं बलशाली होने के कारण उन्हें लौह पुरुष कहा गया है। इसी तरह श्रीमति इंदिरा गाँधी का वर्णन एक लेखक ने "The only Man in the Cabinet" इस तरह किया है। इसका शाब्दिक अर्थ स्वाभाविक रूप से अटपटा लगता है, परंतु, मंत्रिमंडल में उचित समय पर सही निर्णय केवल वे ही अकेली लेती थीं। इस तरह Man शब्द का अर्थ ध्यान में रखकर और उसका संदर्भ देखकर वाक्य का वास्तविक अर्थ समझ में आ जाता है। 1555 ई. में मुगल राजगद्दी पर लौटे मुगल शासक हुमांयु को प्राप्त सुल्तान का पद'काँटों का ताज' था। इस लेख का अर्थ है कि हुमांयू के लिए राजपद सुखदायी नहीं था, बल्कि वह ताज काँटों की तरह चुभने वाला था। अतः निष्कर्षतः माना जा सकता है कि लेख के सकारात्मक परीक्षण में शोधकर्ता को प्रत्येक वक्तव्य का वास्तविक अर्थ समझना होता है तभी सही इतिहास प्रकाश में आता है।

2.3.6.2 नकारात्मक परीक्षण

नकारात्मक परीक्षण स्रोत की विश्वसनीयता निर्धारित करने की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण होता है यह कार्य काफी कष्टकारी भी होता है। इस चरण में लेख के वक्तव्य किन परिस्थितियों में लेखक ने किए हैं, उनका संदर्भ क्या है ? विशिष्ट वक्तव्य करने के पीछे क्या उसका कोई उद्देश्य दिखाई देता है ? आदि की जाँच-पड़ताल करनी होती है। इस चरण में भी लेख के प्रत्येक वक्तव्य के पीछे संदर्भ एवं लेखक की भूमिका परखने के लिए पूर्ण समझदारी से सोच-विचार कर सत्य को खोजना पड़ता है।

नकारात्मक परीक्षण के अंतर्गत दो कार्य किए जाते हैं। प्रथम यह कि लेखक के उद्देश्य का ईमानदारी की अन्वेषण किया जाता है जिसे अंग्रेजी में Good Faith कहते हैं। द्वितीय यह कि क्या वक्तव्य अचूक है ? यदि नहीं तो उसका क्या कारण है ? इन तथ्यों की जाँच करना। इसे अंग्रेजी में Errors Accuracy कहते हैं।

नकारात्मक परीक्षण के लिए शोधकर्ता को कुशाग्र बुद्धि, सूक्ष्मवृत्ति, विवेक तथा तीक्ष्ण आंकलन शक्ति की आवश्यकता होती है क्योंकि किसी लेख का लेखक कौन है और उसने जो लेख लिखा है उसका आशय क्या है? यह समझने पर लेख का नकारात्मक परीक्षण अनिवार्य होता है। यहाँ दो बातें महत्वपूर्ण हैं। प्रथम यह कि लेख के पीछे लेखक का उद्देश्य क्या है ? द्वितीय यह कि क्या उसका लेख पूर्वग्रह से ग्रसित है? नकारात्मक परीक्षण में स्रोत के लेखक के विषय में उसके व्यक्तित्व, मानसिकता, बाह्य परिस्थिति एवं वैचारिक स्तर आदि से संबंधित प्रश्न शोधकर्ता के समक्ष आनाचाहिए तभी नकारात्मक परीक्षण सही सिद्ध होता है। जब स्रोत के लेखक के व्यक्तित्व, आसपास की परिस्थिति, बौद्धिक और वैचारिक स्तर तथा मानसिकता की जानकारी प्राप्त हो जाती है तब ही उसके द्वारा व्यक्त मतों अथवा वक्तव्यों की सत्यता को स्वीकार किया जा सकता है। इस दृष्टि से लेखक के विषय में निम्नलिखित जानकारी आवश्यक प्राप्त करना चाहिए।

(1) क्या लेखक व्यक्तिवादी है ? क्या लेखक राज दरबारी/राजाश्रय प्राप्त/शासकीय सेवारत अधिकारी या कर्मचारी/राजनीतिक दल का प्रतिनिधि या सदस्य है ? यदि ऐसा है तो वह खुल कर अपनी राय प्रकट नहीं करेगा। वह राजा/शासन की प्रशंसा में लिखेगा और राजा/सत्ताधारी दल के विरोधियों के विषय में आलोचनात्मक लेखन करेगा।

(2) लेखक किसी धर्म विशेष का प्रचारक अथवा कट्टर समर्थक हो तो उसके लेखन में संभवतः अन्य धर्मों के विषय में आलोचनात्मक वक्तव्य मिलेंगे।

(3) लेखक समाज के किस वर्ग का है? अथवा उसका आर्थिक स्तर क्या है? यदि वह उच्च वर्ग या विशिष्ट जाति का है तो उसका प्रतिबिंब उसके लेखन में दिखाई देगा है।

(4) लेखक बुद्धिवादी है अथवा कल्पनावादी अथवा राष्ट्रीय वृत्ति का है अथवा अंध राष्ट्रवादी प्रवृत्ति का है ? इसकी जानकारी हो तो उसके वक्तव्यों की सत्यता की जाँच आसान हो जाएगी।

(5) लेखक लिखते समय कुछ तथ्यों को छिपाकर लिख रहा है अथवा सत्य छिपा रहा है अथवा सत्य/असत्य का मिश्रण कर रहा है ? वह सत्य जानता है लेकिन सत्य छिपाने का उसका प्रयास दिखाई दे रहा हो तो क्या वह ऐसा किसी स्वार्थ वश कर रहा है या किन्हीं विशिष्ट परिस्थितियों अथवा किसी व्यक्ति के दबाव में कर रहा है ? ये सभी जानकारियाँ होना चाहिए।

(6) लेखक जो लिख रहा है उसके पीछे उसका उद्देश्य क्या है ? यदि वह तर्कहीन लेखन कर रहा हो तो क्या वह ऐसा अपना बड़प्पन दिखाने हेतु अथवा स्वयं बड़प्पन पाने अथवा किसी पर अपना प्रभाव जमाने के उद्देश्य से तो नहीं लिख रहा है ? इसकी जाँच अवश्यक होती है।

लेखक जिस घटना या व्यक्ति के विषय में लिखता है, वह अपनी स्वयं की भूमिका से लिखता है। उसमें उसका अपना व्यक्तित्व झलकता है। कोई घटना प्रत्यक्ष देखने पर उसका वर्णन लेखक ज्यों का त्यों नहीं करता है अथवा उसे जो दिखाई देता है वह यथार्थ से कुछ भिन्न होगा इस संभावना से इन्कार नहीं किया जा सकता। शायद सुनी-सुनाई जानकारी के आधार पर लेखक अपनी बुद्धि एवं भाषा कौशल से किसी घटना का यथार्थ लगने वाला वर्णन कर सकता है लेकिन ऐसे लेखन में विवरण की गड़बड़ी होती है। इसलिए लेखन में लेखक ईमानदारी और सत्य कथन का दावा करता है। कथन सच है या नहीं ? उसके लेख की जानकारी से उसका क्या संबंध था? वह जानकारी उसने स्वयं प्राप्त की थी या सुनी-सुनाई के आधार पर लेखन कर दिया है ? क्या वह सही समझने की बुद्धि रखता है ? वह समझदार एवं विवेकपूर्ण दिखता है या पूर्वग्रह से ग्रसित है ? ऐसे अनेक प्रश्नों की सहायता से लेखक की पृष्ठभूमि परखी जाती है एवं उसके वक्तव्य विश्वसनीय है या नहीं इसे तय किया जाता है।

2.3.6.3 इतिहास लेखन में त्रुटियों की खोज

लेखन की वास्तविकता जाँचना आंतरिक परीक्षण का अंतिम चरण होता है। इस चरण से पूर्व शोधकर्ता द्वारा लेखक की ईमानदारी की जाँच की गई होती है। यद्यपि लेखक ईमानदार होता है किंतु फिर भी उसके लेखन में गलतियाँ होने की संभावनाएँ होती हैं। ऐसी गलतियाँ लेखक से अनजाने में भी हो जाती हैं लेकिन ऐसी गलतियों को खोजना आवश्यक होता है ताकि प्रमाण उचित एवं सही प्राप्त हो सकें। ऐसी स्थिति में सामान्यतः निम्नलिखित बातों की जाँच करना आवश्यक होता है।

(1) लेखक ने जो लिखा है क्या वह उसने स्वयं देखा है ? या सुनीसुनाई बातों के आधार पर लिखा है? प्रत्यक्ष में देखी घटना का वर्णन और उसकी सूचनाएँ अधिक तथ्यात्मक एवं विश्वसनीय होती हैं। कई बार सैनिक अथवा विजय अभियानों के वर्णन सुनी-सुनाई जानकारी के आधार पर लिखे जाते हैं। अतः अभियानों में सैनिकों की संख्या, प्रयुक्त हथियारों एवं मृतकों की संख्या आदि विवरण संदिग्ध होते हैं।

(2) लेखक ने जो लिखा है, वह सामान्य परिस्थिति में अथवा विशिष्ट परिस्थिति में लिखा है ? उदाहरण के लिए किसी धार्मिक समारोह में अथवा शासकीय समारोह में अथवा राजनीतिक सभा में कितने श्रोता उपस्थित थे अथवा कौन-कौन उपस्थित था ? इसका विवरण विश्वसनीय नहीं होता क्योंकि ऐसी सार्वजनिक घटनाओं की जानकारी अखबारों को देने वाले संवाददाता घटना स्थल पर उपस्थित होने के बाद भी कई बार विशाल जनसमूह का वास्तविक विवरण नहीं दे पाते हैं और इसलिए उनके विवरण संदिग्ध होते हैं।

(3) लेखन में वर्णित घटनाएँ यदि अत्यधिक पुरानी हों अथवा दूरस्थ क्षेत्रों में घटित हुई हों तो लेखन में गलतियों की संभावना रहती है। उदाहरण के लिए "Ten Days that Shook the World" नामक ग्रंथ में रूस में हुई समाजवादी क्रांति के दस दिनों में हुई घटनाओं का वर्णन अत्यंत सटीक है। किंतु रूस जैसे विस्तृत देश में दस दिनों की घटनाओं को सही-सही रूप से नोट करना एक व्यक्ति के बस की बात नहीं है। अतः ऐसे लेखन के विवरण में अनजाने में गलतियाँ हो सकती हैं। यद्यपि लेखक ईमानदार रहा होगा किंतु प्रायोगिक रूप में यह उसके बस में नहीं था। सैलिसबरी नामक अमेरिकी संवाददाता द्वारा वियतनाम में अमेरिकी सेनाओं तथा वियतनाम वासियों के मध्य संघर्ष का वर्णन अथवा अमेरिकी एवं ब्रिटिश सेनाओं की ईराक में कार्यवाई के विवरण जो समाचार पत्रों में छपते हैं, इसी श्रेणी में आते हैं।

(4) लेखन करते समय क्या लेखक के मन पर किसी अन्य व्यक्ति के विचारों का प्रभाव था ? क्या विषय लेखक की रुचि का था? तो वह उसका वर्णन दिल से करेगा। यदि विषय रुचि का न हो तो वर्णन में गलतियाँ होने की संभावना होती है। शायर स्वभाव का लेखक, प्रशासकीय विषय पर तथ्यात्मक लेखन नहीं कर सकता।

(5) क्या लेखक के पास घटनाओं की सत्य जानकारी देने का अनुभव तथा उसे प्रस्तुत करने हेतु आवश्यक योग्यता है ? यह देखना अति आवश्यक होता है। किसी सामान्य बुद्धि के संवाददाता को तकनीकी अथवा चिकित्सा विषय के चर्चा-सत्र की जानकारी लेने का काम सौंपे जाने पर, वह उसे उचित ढंग से नहीं कर पाएगा क्योंकि उस विषय का उसे ज्ञान ही नहीं होता, वैसा अनुभव नहीं होता और बौद्धिक योग्यता भी नहीं होती। अतः ऐसे संवादों में गलतियों की संभावना अधिक होती है।

(6) घटना घटने और उसका लेखन करने में यदि समय का अंतर ज्यादा हो तो उस वर्णन में सत्य-असत्य का मिश्रण अनजाने में हो सकता है। इसलिए घटना होने के बाद तत्काल किया गया लेखन अधिक विश्वसनीय होता है, जबकि घटना के बहुत बाद छपा अधिकांश साहित्य विश्वसनीय साधन नहीं माना जाता। आत्मकथन में भी अनेक वर्षों पूर्व हुई घटनाओं का वर्णन स्मृति के आधार पर होने से उसमें गलतियों की संभावनाएँ रहती हैं।

(7) लेखक की प्रवृत्ति, आलसी, लापरवाही एवं टालमटोल करने की हो तो उसके वर्णन में गलतियों की प्रबल संभावना होती है और ऐसे लेखक कभी भी विश्वसनीय साहित्य का सृजन नहीं कर पाते। ऐसे लेखकों के विवरणों को पढ़ने के उपरांत उनका बाह्य एवं आंतरिक परीक्षण अनिवार्य होता है।

(8) लेखक कई बार उन महत्वपूर्ण प्रसंगों के विषय में लिखता है, जिनके आगे-पीछे हुई हलचलों की उसे जानकारी नहीं होती। जैसे अंतरराष्ट्रीय बैठकों के समय उनके आगे-पीछे की चर्चाओं की जानकारी लेखक को नहीं होती। अतः ऐसे लेखकों द्वारा प्रदत्त जानकारी में गलतियों की संभावना अधिक होती है।

(9) अनेक बार लेखक के घटना स्थल पर रहने के बाद भी उसे आँखों से कम दिखना, ऊँचा सुनना आदि शारीरिक दुर्बलताओं के कारण वृत्तांत लिखते समय उससे अनजाने में गलतियाँ हो सकती हैं। अतः इन बातों का भी ध्यान रखना चाहिए।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि लेखक के ईमानदार होने के बाद भी अनजाने में उसके लेखन में गलतियाँ किन-किन कारणों से हो सकती हैं? उन पर विचार कर शोधकर्ता को लेखन की जाँच करनी पड़ती है। इस प्रक्रिया के बाद ही मूल स्रोतों के परीक्षण की प्रक्रिया पूर्ण होती है।

मूल ऐतिहासिक स्रोतों के परीक्षण का सारांश के रूप में पुनरीक्षण करने पर लेख का प्रथमतः बाह्य परीक्षण करना और उसके बाद लेख का स्थल, काल एवं लेखक निश्चित करना और आंतरिक परीक्षण के समय सकारात्मक परीक्षण से लेख को देखना एवं पढ़ना तथा उसे सूक्ष्मता से समझना एवं नकारात्मक परीक्षण के द्वारा लेख लिखने के पीछे लेखक की ईमानदारी को जाँचना और लेखक के ईमानदार होने के बाद भी कुछ गलतियाँ पाए जाने पर उनके कारणों को खोजना इत्यादि संपूर्ण चरणबद्ध स्रोत परीक्षण प्रक्रिया है।

इतिहास के स्रोतों का बाह्य एवं आंतरिक परीक्षण करने में तथ्यों एवं साक्ष्यों की भूमिका बड़ी महत्वपूर्ण होती है अतः इतिहास के स्रोतों के बाह्य एवं आंतरिक परीक्षण का विवेचन करने के साथ-साथ इतिहास में तथ्य एवं साक्ष्य की भूमिका का विवेचन भी अनिवार्य है जो इस प्रकार है -

2.3.7 तथ्य एवं साक्ष्य

2.3.7.1 तथ्य

तथ्य इतिहास की आत्मा है। तथ्य इतिहास के लिए उसी तरह आवश्यक है जिस प्रकार जीवन के लिए साँस। इतिहासकार जब भी इतिहास लेखन के लिए विषय का चयन करता है तभी से वह तथ्यों का संकलन आरंभ कर देता है। सत्यता इतिहास की सर्वोत्तम कसौटी है और ऐतिहासिक सत्यता तभी संभव है जब इतिहास तथ्यों पर आधारित हो। इसीलिए इतिहासकार को इतिहास लेखन हेतु तथ्यों का संकलन बड़े पैमाने पर करना होता है।

तथ्यों के संकलन के पश्चात् अपने विषय के अनुसार इतिहासकार को तथ्यों का चयन करना पड़ता है। तथ्यों के संकलन की तुलना में तथ्यों के चयन में इतिहासकार अपने विवेक एवं कौशल का अधिक उपयोग करता है अतः तथ्यों का चयन आसान कार्य नहीं है। अपने द्वारा एकत्रित सभी तथ्यों को पूर्णतः जाँचने एवं परखने के बाद ही इतिहासकार अपनी आवश्यकतानुसार तथ्यों का चयन करता है। अतः तथ्यों का उचित संकलन एवं चयन, सत्य एवं प्रमाणित इतिहास लेखन की एक अनिवार्य प्रक्रिया है जिसकी महत्ता सर्वमान्य है।

तथ्य इतिहास लेखन का सर्वप्रमुख आधार है। अधिकांश विद्वान तथ्य को इतिहास की रीढ़ मानते हैं। तथ्य शाश्वत एवं पवित्र होता है अतः यह परिवर्तन से परे होता है। एक तथ्य से विभिन्न निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। सर जार्न क्लार्क ने इतिहास की तुलना एक गूदेदार फल से की है। उनके अनुसार तथ्य इस इतिहास रूपी फल की गुठली होता है जिसमें फल का बीज निहित होता है। उन्होंने तथ्य से निकाले गये विभिन्न निष्कर्षों को फल का गूदा कहा है जो जायकेदार तो हो सकता है मगर उसमें उत्पादन क्षमता नहीं होती। अतः उनका मानना था कि इतिहास के तथ्य तो स्थिर एवं निश्चित होते हैं किंतु निष्कर्षों की स्थिति बालू की दीवार की तरह होती है जो कभी भी ढह सकती है।

तथ्य की परिभाषा आक्सफोर्ड शार्टर इंग्लिश डिक्शनरी में इस प्रकार दी गई है कि ‘‘तथ्य अनुभव के वे आँकड़े होते हैं जो निष्कर्ष से भिन्न होते हैं।’’ इसमें कोई शक नहीं है कि एक तथ्य का विभिन्न इतिहासकार अपना अलग निष्कर्ष निकाल सकते हैं किंतु तथ्य अपरिवर्तनीय ही रहेगा। तथ्य किसी एक निष्कर्ष से बँधा न होकर स्वतंत्र रहता है। इसी तारतम्य में पत्रकार सी. पी. स्कॉट का यह कथन उचित प्रतीत होता है कि ‘‘तथ्य पवित्र है, मंतव्यों पर कोई बंधन नहीं होता है।’’ मंतव्यों पर बंधन होना भी नहीं चाहिए और हो भी नहीं सकता क्योंकि प्रत्येक इतिहासकार अपने विषय के परिप्रेक्ष्य में स्वविवेक द्वारा तथ्य की व्याख्या कर निष्कर्ष निकाल सकता है।

तथ्य सामान्य तथ्य भी हो सकते हैं और ऐतिहासिक तथ्य भी। सामान्य तथ्य भी कालांतर में ऐतिहासिक तथ्य बन सकता है। तथ्य के तहत विभिन्न अभिलेख, शिलालेख, ताम्र पत्र, मुद्राएँ, अन्य पुरातात्विक सामग्री एवं अतीत की घटनाएँ आती हैं। तथ्य को सीमाओं में नहीं बाँधा जा सकता। कोई भी वस्तु या घटना कभी भी एक तथ्य बन सकती है।

कोई भी तथ्य उस समय ऐतिहासिक तथ्य बनता है जब इतिहासकार अपने इतिहास लेखन में उस तथ्य विशेष का महत्व समझते हुए उसे स्थान दे। अतः एक निश्चित प्रक्रिया के अनुसार अतीत का

कोई भी सामान्य-सा तथ्य कालांतर में ऐतिहासिक तथ्य के रूप में रूपांतरित हो जाता है। चंद्रगुप्त मौर्य को बाल्यावस्था में राजकीलम खेल खेलते हुए जब चाणक्य ने देखा तो उससे प्रभावित होकर चाणक्य ने उसे अपने साथ ले लिया। उस समय यह घटना एक सामान्य तथ्य थी परंतु वही बालक जब प्रतापी सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य बना तो वही सामान्य दिखने वाली घटना एक सामान्य तथ्य से ऐतिहासिक तथ्य में परिवर्तित हो गई। अतः इतिहास निर्माण में तथ्य सदैव ही अति महत्वपूर्ण कारक सिद्ध होते हैं।

2.3.7.2 साक्ष्य

तथ्य को इतिहास की रीढ़ माना गया है। कोई तथ्य ऐतिहासिक तथ्य है अथवा नहीं, इसकी जाँच इतिहासकार साक्ष्यों के प्रकाश में करता है। अतः वे सभी तथ्य जो एक तथ्य को ऐतिहासिक तथ्य प्रमाणित करने के लिए उपयोग में लाए जाते हैं, साक्ष्य कहलाते हैं। तथ्य की व्याख्या के लिए साक्ष्य अत्यंत आवश्यक हैं। कॉलिंगवुड के अनुसार साक्ष्य पर आधारित इतिहास अतीत का विज्ञान है।
जे. एच. हेक्सटर के अनुसार साक्ष्य रूपी तथ्यों की व्याख्या के अभाव में इतिहास को वैज्ञानिक विधाओं से अलंकृत नहीं किया जा सकता। अतः यह एक इतिहासकार का उत्तरदायित्व है कि प्राप्त तथ्यों की पुष्टि साक्ष्यों से करे।

इतिहास लेखन में साक्ष्यों का प्रयोग आज के वैज्ञानिक युग में समय की माँग है। हमारा समाज इतिहास में सत्यता की प्रस्तुति चाहता है क्योंकि सत्यता ही इतिहास की सर्वोत्तम कसौटी है। इस दृष्टि से इतिहासकार का दायित्व और बढ़ जाता है कि वह अपने इतिहास लेखन में उपलब्ध ऐतिहासिक तथ्यों की व्याख्या में अधिक से अधिक साक्ष्यों का प्रयोग करे।

साक्ष्य का शाब्दिक अर्थ है प्रमाण। काल, व्यक्ति, स्थान एवं घटना का उपयोग करके जब इतिहास लिखा जाता है तो सत्य के प्रमाणन हेतु साक्ष्य की आवश्यकता होती है। इतिहास में भूतकालिक घटनाओं का अध्ययन किया जाता है। भूतकाल का व्यक्ति, स्थान एवं घटना हमारे समक्ष प्रत्यक्षदर्शी नहीं होती अतः इतिहासकार को इतिहास लेखन में अतीत के तथ्य एकत्रित करने होते हैं और इन तथ्यों की वास्तविकता की जाँच हम साक्ष्यों द्वारा करते हैं। किटसन क्लार्क ने भी तथ्यों की पुष्टि साक्ष्यों द्वारा करने पर बल दिया है।

ऐतिहासिक तथ्यों की सत्यता की पुष्टि यथासंभव पुरातात्विक साक्ष्यों द्वारा की जानी चाहिए। प्राचीन भारतीय इतिहास के संदर्भ में तो पुरातात्विक स्रोतों की बहुलता के कारण यह पुष्टि संभव है किंतु मध्यकालीन एवं आधुनिक भारतीय इतिहास के संदर्भ में हमें पुरातत्व के अतिरिक्त अन्य साक्ष्यों का भी उपयोग करना पड़ता है। इसीलिए कॉलिंगवुड ने लिखा है - ''यद्यपि अतीत का पुनरीक्षण संभव नहीं है फिर भी वर्तमान में अतीत के साक्ष्य जैसे पुस्तकों, पाण्डुलिपियों, सिक्कों तथा अन्य संसाधनों के रूप में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। इन्हीं साक्ष्यों के आधार पर इतिहासकार अतीत की पुनर्रचना करते हैं जिसकी पुष्टि प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष साक्ष्यों द्वारा होती है।''

पुरातात्विक सामग्री को साक्ष्य के रूप में प्रयुक्त करना इसलिए अत्यधिक विश्वसनीय है क्योंकि पुरातात्विक सामग्री की सत्यता हम वैज्ञानिक विधियों से जाँच सकते हैं। कोई सामग्री कितनी पुरानी है? यह काल निर्धारण की C-14 विधि से पता लगाया जा सकता है और इस प्रकार इतिहास के क्षेत्र में होने वाली किसी भी जाल-साजी को रोका जा सकता है। मुगलकालीन चित्रों में इस प्रकार की जालसाजियाँ अक्सर सुनाई देती हैं। इस प्रकार की जालसाजियों को पकड़ने में इतिहासकार को अपने अनुभवों के साथ-साथ सत्यान्वेषक की भूमिका का भी निर्वाह करना पड़ता है।

इतिहासकार यद्यपि साक्ष्यों के प्रयोग एवं अपने निष्कर्षों में स्वतंत्र होता है तथापि उसकी अंतचेतना तथा समसामयिक रुचि उसे बहुत बहुत कुछ नियंत्रित भी करती है। इतिहासकार अपने साक्ष्यों के प्रयोग में कबूतरी सुराख पद्धति, प्रश्नोत्तर पद्धति एवं कथन व साक्ष्य पद्धति का प्रयोग कर तथ्य की गहराई तक जाता है। इन पद्धतियों के प्रयोग में वह अधिकांशतः वैज्ञानिक प्रविधि का भी प्रयोग करता है, ताकि वह अपने निष्कर्ष भी वैज्ञानिक विधि द्वारा प्रस्तुत कर सके। उपरोक्त सभी पद्धतियों के प्रयोग से साक्ष्यों का इतिहास लेखन में प्रयोग करने से इतिहासकार द्वारा लिखित इतिहास की प्रामाणिकता बढ़ जाती है क्योंकि सत्यता ही इतिहास की सर्वोत्तम कसौटी होती है।

2.3.8 सारांश

इतिहास के स्रोतों की सत्यता जानने हेतु उनका दोहरा परीक्षण किया जाता है। स्रोतों से प्राप्त जानकारी, प्रमाणों के रूप में उपयोग की जा सकेगी या नहीं, इसका निर्णय करने के लिए शोधकर्ता को उस पर परीक्षण की प्रक्रिया करनी होती है। विश्वसनीयता निर्धारित करने के लिए स्रोतों पर दो प्रकार के परीक्षण अनिवार्य होते हैं। (1) स्रोतों का ब्राह्य परीक्षण और (2) स्रोतों का आंतरिक परीक्षण

ब्राह्य परीक्षण

बाह्य परीक्षण, किसी भी स्रोत की जाँच की प्रथम प्रक्रिया है। ऐतिहासिक स्रोत प्राप्त होने पर उसकी सत्यता परखने के लिए प्रारंभ में उन स्रोतों के विषय में स्वयं को ही कुछ प्रश्न पूछने होते हैं। उन स्रोतों की सत्यता के विषय में आशंका प्रकट कर जाँच प्रारंभ करनी होती है।

आंतरिक परीक्षण

मूल स्रोतों की विश्वसनीयता निर्धारित करने की दृष्टि से बाह्य परीक्षण की तुलना में आंतरिक परीक्षण अधिक महत्वपूर्ण है। मूल स्रोत का लेखक, काल एवं स्थल के विषय में बाह्य परीक्षण से संतुष्ट होने के बाद उसके आशय की विश्वसनीयता तय करना आंतरिक परीक्षण के अंतर्गत आता है।

तथ्य

तथ्य इतिहास की आत्मा है। तथ्य इतिहास के लिए उसी तरह आवश्यक हैं जिस प्रकार जीवन के लिए साँस। इतिहासकार जब भी इतिहास लेखन के लिए विषय का चयन करता है, तभी से वह तथ्यों का संकलन आरंभ कर देता है।

साक्ष्य

यद्यपि तथ्य को इतिहास की रीढ़ माना गया है किंतु साक्ष्य के बिना तथ्य अधूरा रहता है। कोई तथ्य ऐतिहासिक तथ्य है अथवा नहीं, इसकी जाँच इतिहासकार साक्ष्यों के प्रकाश में करता है। साक्ष्य का शाब्दिक अर्थ है प्रमाण। काल, व्यक्ति, स्थान एवं घटना का उपयोग करके जब इतिहास लिखा जाता है तो सत्य के प्रमाणन हेतु साक्ष्य की आवश्यकता होती है। अतः वे सभी तथ्य जो एक तथ्य को ऐतिहासिक तथ्य प्रमाणित करने के लिए उपयोग में लाए जाते हैं, साक्ष्य कहलाते हैं।

2.3.9 बोध प्रश्न

2.3.9.1 लघुउत्तरीय प्रश्न

1. इतिहास के स्रोतों से आप क्या समझते हैं?
2. इतिहास के उपकरण कौन से हैं?
3. इतिहास का काल विभाजन किस प्रकार किया गया है?
4. स्रोतों का परीक्षण क्यों आवश्यक होता है?

5. बाह्य परीक्षण से क्या अभिप्राय हैं?
6. आंतरिक परीक्षण से क्या तात्पर्य है?
7. इतिहास में तथ्य से क्या तात्पर्य है?
8. साक्ष्य से आप क्या समझते हैं?

2.3.9.2 दीर्घउत्तरीय प्रश्न

1. स्रोतों की बाह्य परीक्षण पद्धति की विस्तृत विवेचना कीजिए।
2. स्रोतों का आंतरिक परीक्षण क्यों आवश्यक है? विस्तार से समझाइए।
3. स्रोतों का सकारात्मक परीक्षण किस प्रकार किया जाता है? विवेचना कीजिए।
4. स्रोतों की नकारात्मक परीक्षण पद्धति का मूल्याँकन कीजिए।
5. इतिहासलेखन में त्रुटियों की खोज प्रणाली पर विस्तार से प्रकाश डालिए।
6. इतिहास में तथ्यों एवं साक्ष्यों के महत्व का वर्णन कीजिए।

2.3.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शेख अली बी.: हिस्ट्री: इट्स थिओरी एंड मेथड, ट्रिनिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1978
2. शर्मा तेजराम: हिस्टोरिओग्राफी ए हिस्ट्री ऑफ हिस्टोरिकल राइटिंग, नई दिल्ली, 2005
3. कुप्पुरम जी. एवं कुमुदमनी के.: मेथड्स ऑफ हिस्टोरिकल रिसर्च, नई दिल्ली, 2002
4. मनिक्कम वी.: ऑन हिस्ट्री एंड हिस्टोरिओग्राफी, मदुरई, 2003
5. श्रीवास्तव बी. के.: इतिहास लेखन: अवधारणा, विधायें एवं साधन, आगरा, 2008
6. श्रीधरन ई.: इतिहास लेख, नई दिल्ली, 2011
7. कोठेकर शांता: इतिहास तंत्र एवं विज्ञान, नागपुर, 2015
8. पांडे जी. सी. (संपादित): इतिहास स्वरूप एवं सिद्धांत, जयपुर, 1973
9. राधेशरण: इतिहास और इतिहास लेखन, भोपाल, 2010
10. चौबे झारखण्ड: इतिहास दर्शन, वाराणसी, 2001
11. सिंह परमानंद इतिहास दर्शन, दिल्ली, 1992
12. कार ई. एच.: इतिहास क्या है, दिल्ली, 1962
13. दुबे जे. एन.: इतिहास विज्ञान, वाराणसी, 1988

खंड-2 इतिहास की शोध पद्धति
इकाई-4 पाद् टिप्पणी एवं संदर्भ ग्रंथ सूची

इकाई की रूपरेखा

2.4.1. उद्देश्य
2.4.2. प्रस्तावना
2.4.3. पाद टिप्पणी
2.4.4. पाद टिप्पणी का उद्देश्य
2.4.5. पाद टिप्पणी का प्रयोग
2.4.6. पाद टिप्पणी का प्रारूप
2.4.7. संदर्भ ग्रंथ सूची
2.4.8. संदर्भ ग्रंथ सूची का प्रारूप
2.4.9. टिप्पणी सहित संदर्भ ग्रंथ सूची
2.4.10. संदर्भ बिंदु सूचकांक एवं पाद टिप्पणी
2.4.11. पाद टिप्पणियों के उदाहरण
2.4.12. संदर्भ ग्रंथ सूची का एक उदाहरण
2.4.13. संक्षिप्त रूप अथवा संकेत चिन्ह
2.4.14. बोध प्रश्न
2.4.15. संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

2.4.1. उद्देश्य

अनुसंधान में स्रोत् सामग्री का उल्लेख आवश्यक माना जाता है। इससे लेखन को वैधता (validity) प्राप्त होती है। स्रोत् सामग्री का उल्लेख पाद टिप्पणी एवं संदर्भ ग्रंथ सूची के रूप में किया जाता है। इस पाठ के द्वारा विद्यार्थियों को पाद टिप्पणी एवं संदर्भ ग्रंथ सूची से परिचित कराना है।

2.4.2. प्रस्तावना

इतिहास सहित सभी विषयों में लेखक के लिए आवश्यक है कि वह अपनी स्रोत् सामग्री (Source materials) का स्पष्ट उल्लेख करें। इसे बौद्धिक ईमानदारी कहते हैं और यह लेखक होने की प्रथम आवश्यकता है। स्रोत् सामग्री अथवा स्रोत् का उल्लेख कर लेखक अपने विचारों, अपने मतों एवं अपने निष्कर्षों को सही ठहराने का प्रयास करता है। इससे लेखक के कार्य को अभिस्वीकृति प्राप्त होती है। इसीलिए उद्धृत शब्दों, वाक्यों एवं विचारों के लिए स्रोतों का पाद टिप्पणियों एवं संदर्भ ग्रंथ सूची में उल्लेख किया जाता है।

2.4.3. पाद टिप्पणी (Foot note)

पाद टिप्पणी दो प्रकार की होती है – अंतर्वस्तु टिप्पणी (content note) एवं संदर्भ टिप्पणी (reference note)। अंतर्वस्तु टिप्पणी में स्रोत का विवरण होता है और साथ ही वर्ण्य विषय की संक्षिप्त व्याख्या होती है। संदर्भ टिप्पणी में मात्र स्रोत का विवरण होता है। उदाहरणार्थ :

- **अंतर्वस्तु टिप्पणी :**

"राजनैतिक विद्रोह में असफलता के पश्चात् आदिवासियों ने धार्मिक पुनरूज्जीवन पर बल दिया।'' देखें, वालेस, ए.एफ.सी., 'रिवाइटेलाइजेशन मूवमेन्ट्स', अमेरिकन ऐन्थ्रोपोलोजी, वॉल्यूम LVIII, 1956, पृ. 264-81

- **संदर्भ टिप्पणी :**

सिन्हा, सरोज, हिंदी और बंगला का तुलनात्मक अध्ययन, पटना : बिहार ग्रंथ कुटीर,1990, पृ. 81

2.4.4. पाद टिप्पणी का उद्देश्य

पाद टिप्पणी का प्रयोग कई कारणों से किया जाता है :

1. **आभार की अभिव्यक्ति हेतु** – यदि कोई लेखक किसी दूसरे लेखक की किसी रचना की कोई पंक्ति अथवा विचार अपनी पुस्तक अथवा रचना में उद्धरण के रूप में देता है तो ऐसी स्थिति में आभार की अभिस्वीकृति आवश्यक मानी जाती है। किसी लेखांश के भावानुवाद में भी लेखक द्वारा मूल लेखक के प्रति आभार की अभिस्वीकृति आवश्यक है। सामान्य तथ्यों के लिए ऐसा आवश्यक नहीं माना जाता है।
2. **मूल पाठ (text) में व्यक्त विचारों की व्याख्या हेतु** – इस उद्देश्य से प्रयुक्त पाद टिप्पणी को अन्तर्वस्तु पद टिप्पणी कहते हैं। इसका प्रयोग मूल पाठ में प्रस्तुत विचारों अथवा मतों को स्पष्ट करने हेतु किया जाता है। इस प्रकार की पाद टिप्पणी में व्याख्यात्मक सामग्री, अतिरिक्त सूचना आदि का समावेश होता है।
3. **विचारों की वैधता (validity) स्थापित करने हेतु** – लेखक द्वारा अपने मतों एवं विचारों की वैधता स्थापित करना आवश्यक माना जाता है। इस उद्देश्य से लेखक अपने मतों एवं विचारों के समर्थन में साक्ष्य (evidence) अथवा स्रोत् का उल्लेख करता है। पाद टिप्पणी में इस प्रकार के उल्लेख से लेखन को वैधता प्रदान की जाती है।
4. पाद टिप्पणी का प्रयोग प्रतिनिर्देश (Cross-reference) हेतु किया जाता है।
5. पाद टिप्पणी का प्रयोग मूल पाठ में अनूदित सामग्री का मूल रूप(Original version) देने हेतु किया जाता है।
6. पाद टिप्पणी का प्रयोग पाठकों को संबंधित विषय पर अन्य स्रोतों की जानकारी देने हेतु किया जाता है।

2.4.5. पाद टिप्पणी का प्रयोग

पाद टिप्पणी दिए जाने हेतु मूल पाठ में सूचकांकों का प्रयोग किया जाता है। यह सूचकांक सामान्यत: संख्या के रूप में होता है जिसका प्रयोग संदर्भ बिंदु(reference point) के अंत में शीर्ष पर किया जाता है। यह संदर्भ बिंदु किसी लेखक अथवा पुस्तक का नाम, कोई वाक्य अथवा कोई पैराग्राफ हो सकता है। उद्धरण अथवा भावानुवाद की स्थिति में सूचकांक उद्धरण अथवा भावानुवाद के अंत में दिया

जाता है। गणितीय अथवा वैज्ञानिक सूत्रों के उद्धरण के लिए संख्या के रूप में प्रयुक्त सूचकांक भ्रम पैदा कर सकते हैं। ऐसी स्थिति में तारांक (*), कटार चिन्ह (+) जैसे संकेतों का प्रयोग किया जाता है।

पाद टिप्पणी का स्थान पृष्ठ में सबसे नीचे होता है। एक पाद टिप्पणी में दो लाइनों के बीच का अंतराल कम रखा जाता है। इस अंतराल को टंकण की भाषा में 'सिंगल स्पेस' (Single space) कहते हैं। किंतु एक पाद टिप्पणी एवं दूसरी पाद टिप्पणी के बीच का अंतराल अपेक्षाकृत अधिक होता है। इस अंतराल को 'डबल स्पेस' (Double Space) कहते हैं। पाद टिप्पणी में अक्षरों का आकार (font size) मूल पाठ के अक्षरों की तुलना में छोटा होता है। प्रत्येक अध्याय में पाद टिप्पणी की संख्या क्रमागत रूप से निरंतरता में दी जानी चाहिए।

2.4.6. पाद टिप्पणी का प्रारूप

पाद टिप्पणी में लेखक का नाम, पुस्तक का नाम, प्रकाशन स्थान : प्रकाशक का नाम, प्रकाशन स्थान एवं पृष्ठ संख्या, इसी क्रम एवं इन्हीं विराम चिन्हों के साथ दिए जाते हैं। पुस्तक के नाम को रेखांकित किया जाता है। टंकित प्रति में पुस्तक के नाम इटैलिक अक्षरों में दिए जाते हैं। शोध पत्र के उल्लेख में शोध पत्र के शीर्षक को उद्धरणचिन्ह में दिया जाता है और शोध पत्रिका के नाम को रेखांकित किया जाता है अथवा उसे इटैलिक अक्षरों में टंकित किया जाता है। उदाहरणार्थ :

सिन्हा, पीयूष कमल, 'विदेशों में स्वभाषा के उपवन', हिस्ट्री : पास्ट ऐन्ड प्रेजेन्ट,वॉल्यूम 4, 2011, पृ. 247-253.

यदि लगातार एक ही पुस्तक का उल्लेख किया जाता है तो प्रथम उल्लेख के पश्चात् दूसरे एवं बाद के उल्लेखों में मात्र ऊपरिवत् अथवा उपरोक्त (ibid) एवं पृष्ठ संख्या का उल्लेख किया जाता है। किंतु यदि किसी पुस्तक का उल्लेख लगातार न होकर एक, दो अथवा आगे कहीं अन्य पुस्तकों के बाद होता है तो ऐसी स्थिति में उस पुस्तक के उल्लेख में लेखक का नाम, पूर्वोद्धृत (op. cit.) एवं पृष्ठ संख्या लिखा जाता है।

पारंपरिक विधि में पाद टिप्पणी में लेखक का प्रथम नाम पहले और द्वितीय नाम अथवा उपनाम उसके बाद में लिखा जाता है। किंतु सहायक अथवा संदर्भ ग्रंथ सूची (Bibliography) में द्वितीय नाम अथवा उपनाम पहले लिखा जाता है। इस अंतर के कारण कठिनाई हो सकती है। इसलिए पारंपरिक विधि को छोड़कर पाद टिप्पणी एवं संदर्भ ग्रंथ सूची दोनों में ही एकरूपता की दृष्टि से लेखक का उपनाम पहले लिखकर एक अल्पविराम (,) दिया जाना चाहिए और उसके बाद प्रथम एवं द्वितीय नाम दिया जाना चाहिए। उदाहरणार्थ : सरकार, दिनेश चन्द्र।

पाद टिप्पणी के प्रारूप में कुछ अंतर स्वीकार्य हैं। उदाहरणार्थ, कहीं-कहीं प्रकाशन स्थान का उल्लेख प्रकाशक के नाम के बाद दिया जाता है, कहीं प्रकाशन स्थान एवं प्रकाशक के नाम को कोष्ठक में रखा जाता है। कहीं प्रकाशन वर्ष को लघु कोष्ठक में बंद कर लेखक के नाम के तुरत बाद दिया जाता है। इसी प्रकार कुछ अन्य विविधताएँ भी हो सकती हैं। पर ध्यान देने योग्य बात यह है कि जो भी प्रारूप अपनाया जाए, पूरी पुस्तक अथवा रचना में उसी एक प्रारूप का अनुसरण किया जाए।

2.4.7. संदर्भ ग्रंथ सूची (Bibliography)

संदर्भ ग्रंथ सूची विषय से संबंधित पुस्तकों की सूची होती है। इसे सहायक ग्रंथ सूचीभी कहते हैं। यह पुस्तक के अंत में सभी अध्यायों के बाद अवस्थित होती है। इसमें पाद टिप्पणियों में उल्लिखित सभी पुस्तकों, पत्रिकाओं, रिपोर्टों आदि को सम्मिलित किया जाता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची का उद्देश्यपाद टिप्पणी से भिन्न होता है। पाद टिप्पणी का प्रयोग उद्धृत वाक्यों, विचारों अथवा भावानुवादों की पुष्टि अथवा उनके प्रमाण के रूप में किया जाता है जबकि संदर्भ ग्रंथ सूची में पाद टिप्पणी में उल्लिखित सभी पुस्तकों का वर्ण क्रम से उल्लेख होता है। संदर्भ ग्रंथ सूची में पुस्तकों आदि का विवरण उसी रूप में दिया जाता है जिस रूप में उन्हें पाद टिप्पणी में लिखा जाता है। अंतर बस इतन होता है कि पाद टिप्पणी की तरह संदर्भ ग्रंथ सूची में पुस्तकों की पृष्ठ संख्या नहीं लिखी जाती है।

पाद टिप्पणी में एक ही पुस्तक का कई बार उल्लेख हो सकता है, किंतु संदर्भ ग्रंथ सूची में एक पुस्तक के लिए एक ही प्रविष्टि होती है। पाद टिप्पणी में किसी ग्रंथ का उल्लेख तभी किया जाता है जब उस पुस्तक से कोई तथ्य उद्धृत किया जाता है जबकि संदर्भ ग्रंथ सूची में ऐसी पुस्तक का भी उल्लेख किया जा सकता है जिससे कोई उद्धरण नहीं लिया गया है, पर ऐसी पुस्तक विषय से संबंधित होनी चाहिए।

2.4.8. संदर्भ ग्रंथ सूची का प्रारूप

संदर्भ ग्रंथ सूची मेंसंदर्भों के प्रकार (type) के आधार पर संदर्भ अथवा ग्रंथ समूह बनाए जाते हैं। उदाहरणार्थ, पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं एवं रिपोर्टों के अलग-अलग संदर्भ समूह बनाए जाते हैं। प्रत्येक समूह में इन्हें वर्ण क्रम से व्यवस्थित किया जाता है।

यदि एक लेखक की लगातार दो अथवा उससे अधिक प्रविष्टियाँ होती हैं तो उस लेखक का नाम प्रथम प्रविष्टि में दे देने के बाद दूसरी एवं उसके बाद की प्रविष्टि में उसके नाम की पुनरावृत्ति नहीं की जाती है, बल्कि उसके नाम के स्थान पर मात्र एक रेखा खींच दी जाती है। उदाहरणार्थ, सिन्हा, लक्ष्मण प्रसाद, रूप विज्ञान की दृष्टि से मगही एवं भोजपुरी का तुलनात्मक अध्ययन, पटना : अंशुकमल प्रकाशन, 1986
हिंदी भाषा का रूपिमीय विश्लेषण, पटना : अंशुकमल प्रकाशन, 1987

शीर्षक के रूप में 'संदर्भ ग्रंथ सूची' पृष्ठ के शीर्ष से थोड़ा नीचे पृष्ठ के केंद्र में दिया जाता है। इसके बाद किसी विराम चिन्ह का प्रयोग नहीं किया जाता है। इसके पश्चात् थोड़े अंतराल के बाद बायीं ओर संदर्भ समूह जैसे – पुस्तकें, पत्र-पत्रिकाएँ, रिपोर्ट आदि का उल्लेख किया जाता है। इसके पश्चात् पुन: एक रिक्त अंतराल के बाद प्रथम प्रविष्टि का उल्लेख किया जाता है। एक प्रविष्टि का विवरण यदि एक से अधिक लाइनों में समायोजित होता है तो उन लाइनों के मध्य कोई रिक्त अंतराल नहीं होता है। दो प्रविष्टियों के मध्य एक लाइन का रिक्त अंतराल होता है।

2.4.9. टिप्पणी सहित संदर्भ ग्रंथ सूची (Annotated Bibliography)

इस प्रकार की ग्रंथ सूची में प्रत्येक प्रविष्टि के पश्चात् एक या दो वाक्य अथवा एक पैराग्राफ में उल्लिरिव पुस्तक की विषय वस्तु के संबंध में एक टिप्पणी दी जाती है। यह टिप्पणी प्रविष्टि के संबंध में आवश्यक विवरण दिए जाने के पश्चात् अगली पंक्ति से एक नये पैराग्राफ के रूप में प्रारंभ होती है।

उदाहरणार्थ, बंद्योपाध्याय, शेखर, पलासी से विभाजन तक और उसके बाद, आधुनिक भारत का इतिहास, हैदराबाद : ओरियंट ब्लैकस्वॉन प्राइवेट लिमिटेड, 2017।

यह पुस्तक राष्ट्र के रूप में भारत के अभ्युदय का प्रामाणिक विवरण है। इसमें ब्रिटिश शासन, ब्रिटिश शासकों और उनकी नीतियों के स्थान पर भारत के लोगों, उनकी आकांक्षाओं, उनके प्रतिरोध और संघर्ष का चित्रण है।

शर्मा, रामशरण, प्रारंभिक भारत का परिचय, नई दिल्ली : ओरियंट लॉंग्मैन प्राइवेट लिमिटेड, 2004।

यह पुस्तक प्राचीन भारतीय इतिहास का सुव्यवस्थित सर्वेक्षण है। इसमें भारत के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक इतिहास पर प्रकाश डाला गया है। इसके साथ ही, इसमें साहित्य, धर्म, दर्शन एवं विज्ञान में प्राचीन भारत की उपलब्धियों का भी वर्णन किया गया है।

2.4.10. संदर्भ बिंदु सूचकांक एवं पाद टिप्पणी

रवींदर कुमार[1] गांधी से पूर्व के राष्ट्रीय आंदोलन को 'विपरीत वर्गों का प्रतिनिधित्व करनेवाला एक आंदोलन' कहते हैं।

गांधी के पूर्व भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को ज्यूडिथ ब्राउन[2] ने 'सुविचारित सीमा बंदियों की राजनीति' कहा है।

नागपुर का प्रस्ताव गांधी की जीत थी, क्योंकि उन्होंने 'सिद्धांत से कोई समझौता नहीं किया'।[3]

इसका स्पष्ट परिणाम चेम्सफोर्ड के शब्दों में ''हड़तालों का एक तरह का तपता बुखार था "जिसने भारत के सभी औद्योगिक केंद्रों को प्रभावित किया''।[4]

यही कारण है कि आर्य हड़प्पा के पुराने पैरोकार एस.आर. राव ने इसका विरोध किया है।[5]

अप्रैल 1918 में मद्रास लेबर यूनियन का जन्म हुआ, लगभग 125 नई ट्रेड यूनियनें बनीं और अंत में बंबई में नवंबर 1920 में अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस का जन्म हुआ।[6]

1. कुमार, रवींदर, इंट्रोडक्शन टू एसेज इन गांधियन पॉलिटिक्स: द रॉलेट सत्याग्रह ऑफ 1919, ऑक्सफोर्ड : क्लैरेण्डन प्रेस, 1971, पृ. 4
2. ब्राउन, ज्यूडिथ, गांधीज राइज टू पावर : इंडियन पॉलिटिक्स, 1915-1922, कैम्ब्रिज : कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस,1972, पृ. 28
3. ऊपरिवत्, पृ. 296-97, 302
4. सरकार, सुमित, मॉडर्न इण्डिया, 1885-1947, नई दिल्ली : मैकमिलन, 1983, पृ. 174 में उद्धृत
5. शर्मा, आर.एस., एडवेंट ऑफ दि आर्यन्स इन इण्डिया, नई दिल्ली : मनोहर, 1999, पृ. 42-43 शर्म, रामशरण, "क्या हड़प्पा संस्कृति वैदिक थी'', इतिहास (भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद् की शोध पत्रिका), भाग 1, सं-1, जनवरी, 2010 में उद्धृत, पृ. 11
6. सरकार, सुमित, पूर्वोद्धृत, पृ. 174-75

2.4.11. पाद टिप्पणियों के उदाहरण

पुस्तकों से उद्धरण देने हेतु

1. थापर, रोमिला, एंशिएन्ट इंडियन सोशल हिस्ट्री, हैदराबाद : ओरिएंट लॉंग्मैन लिमिटेड, 1978, पृ. 58

2. उपरोक्त/ऊपरिवत्, पृ. 90-94 (अंगरेजी में उपरोक्त अथवा ऊपरिवत् के विकल्प में समानार्थी 'इबिड' (ibid) का प्रयोग किया जाता है।
3. चन्द्र, बिपन, नैशनलिजम ऐण्ड कोलोनियलिजम इन मॉडर्न इण्डिया, दिल्ली : ओरिएंट लॉंग्मैन लिमिटेड, 1979, पृ. 180
4. थापर, रोमिला, पूर्वोद्धृत, पृ. 104 (अंगरेजी में इसके विकल्प में समानार्थी 'आप सिट' (op. cit.) का प्रयोग किया जाता है।
5. त्रिपाठी, आर.एस.,हिस्ट्री ऑफ एंशिएंट इण्डिया,दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास,1967, पृ. 65

- तीन से अधिक लेखकों द्वारा लिखित पुस्तकों से उद्धरण देने हेतु प्रथम लेखक के नाम का उल्लेख करने के पश्चात् 'एवं अन्य' लिखा जाता है। अंगरेजी में 'एवं अन्य' हेतु समानार्थी 'एट ऐल' (et al) का प्रयोग किया जाता है :
  1. चन्द्र, बिपन एवं अन्य, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, 1857-1947, नई दिल्ली : पेन्गुइन बुक्स (इण्डिया) लिमिटेड, 1989, पृ. 411
- संपादित पुस्तक में सम्मिलित किसी एक लेखक द्वारा लिखित अध्याय से उद्धरण देने हेतु
  1. सिन्हा, पीयूष कमल, "ताना भगत आंदोलन : विद्रोह एवं सुधार के कुछ पक्ष', सिन्हा, लक्ष्मण प्रसाद (सं.) भारतीय आदिवासी (एक सिंहावलोकन), इलाहाबाद : जयभारती प्रकाशन, 2010, पृ. 107-16.
- सरकारी प्रकाशनों से उद्धरण देने हेतु
  1. भारत 2017 : संदर्भ वार्षिकी, नई दिल्ली : प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, 2018, पृ. 155
- शोध पत्रिका में प्रकाशित किसी आलेख से उद्धरण देने हेतु पाद टिप्पणी के विवरण निम्नलिखित क्रम में दिए जाते हैं – आलेख के लेखक का नाम, आलेख का शीर्षक (उद्धरण चिन्हों में आबद्ध), शोध पत्रिका का नाम (इसे रेखांकित किया जाएगा अथवा इसे इटैलिक अक्षरों में टंकित किया जाएगा) वॉल्यूम संख्या, प्रकाशन तिथि, पृष्ठ संख्या (शोध पत्रिका के उल्लेख में प्रकाशन स्थान एवं प्रकाशक का नाम नहीं दिया जाता है)
  1. शंकर, विभा, "आधुनिक समाज और गांधी की बुनियादी शिक्षा', बियान्ड डिसिप्लिन्स, वॉल्यूम 4, संख्या 1-4, जनवरी 2015 – दिसम्बर 2016, पृ. 79-84
  2. मुखर्जी, गांगेय, "गांधी : नॉन वायलेन्स ऐण्ड प्रैगमेटिजम'', स्टडीज इन हयूमेनीटीज ऐण्ड सोशल साइंसेज, वॉल्यूम XVI, से 1 एवं 2, 2009, पृ. 95-117.
- समाचार पत्रों से उद्धरण देने हेतु :
  1. संपादकीय, द टाइम्स ऑफ इण्डिया (पटना), मार्च 2, 2019, पृ. 22.
  2. बड़ोला, डी.के., 'जब पाकिस्तान को मिला करारा जवाब', हिन्दुस्तान (गया), फरवरी 16, 2019, पृ. 10.
- शोध प्रबंध से उद्धरण देने हेतु :

1. निधि, सुषमा, बिहारी ऐण्ड बेंगाली विमेन, ए कम्पेरेटिव स्टडी ऑफ देयर पर्सनेलिटी, नीड्स ऐण्ड मेरिटल एडजस्टमेंट, अप्रकाशित पीएच.डी. शोध प्रबंध, बोध गया : मगध विश्वविद्यालय

- सेमिनार अथवा सम्मेलन में प्रस्तुत शोध पत्र से उद्धरण देने हेतु :

1. सिन्हा, पीयूष कमल, "इतिहास लेखन में अभिलेखागार की भूमिका एवं महत्व" (बिहार अभिलेखागार निदेशालय, पटना द्वारा आयोजित एक दिवसीय सेमिनार में मुख्य वक्ता के रूप में प्रस्तुत शोध पत्र, 22 फरवरी, 2019।

2.4.12. संदर्भ ग्रंथ सूची का एक उदाहरण :

- प्राथमिक अथवा मूल स्रोत् :
- अमरकोश, स. शर्मा, एच.डी. एवं एन.जी. सरदेसाई, पूना : ओरिएंटल बुक एजेन्सी, 1941
- रिपोर्ट ऑफ द बोर्ड ऑफ एडुकेशन, बम्बई, 1850-51, 1851
- होम (पॉलिटिकल) प्रोसीडिंग्स, भारत सरकार, जून 1916, संख्या 280-81

पुस्तकें

- जायसवाल, सुवीरा, ओरिजिन ऐण्ड डेवेलपमेंट ऑफ वैष्णविजम, नई दिल्ली : मुंशीराम मनोहरलाल, 1981
- मजुमदार, आर.सी. एवं ए.एस. अल्तेकर (स.), द वाकाटक गुप्त एज, दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास, 1946
- याजदानी, जी. (स.), द अर्ली हिस्ट्री ऑफ द डेकन, लंदन : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1960

शोध पत्रिका

- अनाल्स ऑफ द भण्डारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीच्यूट, पुणे
- जरनल ऑफ द एशिएटिक सोसाइटी, कलकत्ता
- प्रोसीडिंग्स ऑफ द इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस, नई दिल्ली

2.4.13. संक्षिप्त रूप अथवा संकेत चिन्ह

संदर्भ ग्रंथ सूची एवं पाद टिप्पणियों में पुरावृत्ति से बचने हेतु कुछ संक्षिप्त रूपों अथवा संकेत चिन्हों का प्रयोग किया जाता है। अंगरेजी में प्रचलित कुछ संक्षिप्त रूप और हिंदी में उनके रूपांतरित रूप निम्नलिखित हैं –

ante (before)	पूर्व, पूर्ववर्ती
cf. (Compare)	तुलना
ed. (editor)	स. (संपादक)
edn. (edition)	संस्क.(संस्करण)
et. al (and others)	एवं अन्य

e.g. (for example)	उ. (उदाहरणार्थ)
f., ff. (and the following)	और आगे (उदाहरणार्थ, pp. lo ff का अर्थ है, पृष्ठ 10 एवं आगे के पृष्ठ)
ibid (As above/same)	ऊपरिवत/उपरोक्त
i.e.	अर्थात्
Infra (below)	नीचे
loc. cit. (in the same place and same page)	उसी स्थान एवं उसी पृष्ठ पर
op. cit. (in the work cited earlier)	पूर्वोद्धृत/पूर्वोक्त
p. pp. (page, pages)	पृ.
supra (above, earlier)	ऊपर
viz. (namely)	अर्थात्

2.4.14. बोध प्रश्न

1. पाद टिप्पणी के प्रकार का विवरण देते हुए इसके उद्देश्य पर विचार करें।
2. पाद टिप्पणी की प्रयोग-विधि एवं इसके प्रारूप का वर्णन करें।
3. संदर्भ ग्रंथ सूची क्या है? यह पाद टिप्पणी से किस प्रकार भिन्न होता है?
4. संदर्भ ग्रंथ सूची के प्रारूप पर प्रकाश डालें। टिप्पणी सहित संदर्भ ग्रंथ सूची क्या है?
5. विभिन्न प्रकार की स्रोत् सामग्रियों से उद्धरण देने हेतु पाद टिप्पणियों के विभिन्न प्रारूपों का सोदाहरण वर्णन करें।

2.4.15. संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

1. कृष्णस्वामी, ओ. आर., मेथोडोलॉजी ऑफ रिसर्च इन सोशल साइंसेज, बम्बई : हिमालय पब्लिशिंग हाउस, 1993.
2. बोवर्स, फ्रेडसन, प्रिंसपुल्स ऑफ विब्लिओग्राफिकल डेस्क्रिशन, न्यू यॉर्क : रसेल ऐण्ड रसेल, 1949.
3. जायसवाल, सुवीरा, कास्ट: ओरिजिन, फंक्शन ऐण्ड डायमेन्शन्स ऑफ चेंज, नई दिल्ली : मनोहर, 1998.
4. बंद्योपाध्याय, शेखर, पलासी से विभाजन तक और उसके बाद, आधुनिक भारत का इतिहास, हैदराबाद : ओरियंट ब्लैकस्वॉन, प्राइवेट लिमिटेड, 2017

खंड - 3 : इतिहास लेखन के विभिन्न सिद्धांत
इकाई - 1 : कारणवाद-कार्य-कारण सिद्धांत

इकाई की संरचना

3.1.01. उद्देश्य
3.1.02. प्रस्तावना
3.1.03. कारणवाद— कार्य-कारण सिद्धांत
3.1.03.1. इतिहास में कारणता
3.1.03.2. कार्य-कारण संबंध
3.1.03.3. ऐतिहासिक कारणों का वर्गीकरण
3.1.03.4. कारण और अवश्यंभाविता
3.1.03.5. कारण और नियतिवाद
3.1.03.6. कारणत्व के प्रमुख सिद्धांत
3.1.03.7. इतिहास के कारण और इतिहासकार
3.1.03. सारांश
3.1.04. अपनी प्रगति की जाँच करें प्रश्नों के उत्तर
3.1.05. बोध प्रश्न
3.1.06. संदर्भ ग्रंथ सूची

3.1.01. उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उद्देश्य निम्नवत हैं-

1. कारणता की अवधारणा से अवगत कराना।
2. कार्य-कारण संबंध की विवेचना करना।
3. कारणता के स्वरूप को समझाना।

3.1.02. प्रस्तावना

इतिहास में कारण की स्पष्ट अवधारणा 18 वीं सदी में सामने आई। फ्रांसीसी क्रांति में अहम भूमिका निभाने वाले महान दार्शनिक मॉन्टेस्क्यू ने कारण की स्पष्ट व्याख्या प्रस्तुत की। यद्यपि इससे पूर्व अरस्तु ने भी कारण के संबंध में अपने विचार व्यक्त किए थे। इतिहास में कारणों का अत्यधिक महत्व है। बिना कारण के कोई घटना घटित नहीं होती और घटनाओं का लेखा-जोखा इतिहास है। किसी भी घटना के लिए एक नहीं अनेक कारण उत्तरदायी होते हैं। इस दृष्टि से कारणों का वर्गीकरण भी किया गया है।

इतिहास में अतीत में घटित घटनाओं का अध्ययन या तो वस्तुनिष्ठ होता है या फिर व्यक्तिनिष्ठ। इतिहास लेखन में एक इतिहासकार से वस्तुनिष्ठता की अपेक्षा की जाती है। चूँकि इतिहास में मानव एवं उसके द्वारा घटित घटनाओं का अध्ययन किया जाता है अतः इतिहासकार अपने अध्ययन में पूर्णतः वस्तुनिष्ठ नहीं रह पाता। जब इतिहासकार अतीत का चित्रण करता है तो उस पर आंतरिक एवं वाह्य परिस्थितियाँ, अवधारणाएँ, दृष्टिकोण, वाद, संस्कृति, राग-द्वेष इत्यादि का कम या ज्यादा प्रभाव पड़ता है,

फलतः उसके अध्ययन में पूर्णत: वस्तुनिष्ठता की अपेक्षा नहीं की जा सकती। इतिहास को एक विज्ञान स्वीकारने वाले इतिहासकार इतिहास में वस्तुनिष्ठता को आवश्यक मानते हैं।

इस इकाई में इतिहास में कारण की अवधारणा, कार्य-कारण संबंध, सहित कारणों के वर्गीकरण पर प्रकाश डाला जाएगा।

3.1.03. कारणवाद— कार्य-कारण सिद्धांत

3.1.03.1. इतिहास में कारणता

कारण शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन भाषा के 'Causa' (कौजा) से हुई है। अंग्रेजी भाषा में इसे 'Causa' (काज) कहा गया है। इतिहास अतीत की घटनाओं का अध्ययन है। कोई भी घटना के घटित होने के पीछे कुछ-न-कुछ कारण विद्यमान होते हैं। कॉलिंगवुड ने कहा- "कारण वह प्रमुख तत्व है, जो मनुष्य को कार्य करने के लिए प्रेरित, प्रोत्साहित एवं बाध्य करता है।"

सर्वप्रथम अरस्तु ने कारण के महत्व को रेखांकित करते हुएकहा था कि कारणों के अभाव में किसी घटना या कार्य का होना संभव नहीं है। इतिहास में कारण की अवधारणा से इतिहास के जनक हेरोडोटस (Herodotos) भी भली भाँति परिचित थे। उन्होंने लिखा था कि मेरे इतिहास लेखन का एकमात्र उद्देश्य है ग्रीक तथा बर्बर जातियों के पारस्परिक युद्धों का कारण बताना। मगर वास्तविक अर्थों में इतिहास में कार्य-कारण संबंध पर विशेष रूप से ध्यान 18वीं शताब्दी में दिया गया। फ्रांसीसी क्रांति में प्रमुख भूमिका निभाने वाले प्रख्यात दार्शनिक मॉन्टेस्क्यू (1689-1755) ने कहा था, "प्रत्येक राजवंश के उत्थान, राजत्व काल एवं पतन के पीछे कुछ नैतिक या भौतिक अर्थात् सामान्य कारण होते हैं एवं जो कुछ भी घटित होता है इन्हीं कारणों के तहत होता है।"

कोई भी घटना अनेक कारणों से घटित होती है। कुछ कारण मौलिक या आधारभूत होते हैं, जिसमें किसी घटना के बीज निहित होते हैं। घटना घटित होने के एकदम पूर्व का कारण तात्कालिक कारण कहलाता है। कभी-कभी इतिहासकार घटना के घटित होने के पीछे उत्तरदायी एक मात्र प्रमुख कारण पर ही ध्यान केंद्रित करते हैं। इस तारतम्य में मार्शल ने लिखा है कि प्रभाव पर केंद्रित होने से लोगों को सावधान करने के लिए हर संभव उपाय करने चाहिए, क्योंकि प्रभाव में अन्य कारणों का भी हाथ होता है, जो मुख्य कारण के साथ मिले होते हैं। एडवर्ड मेयर (Eduard Meyer) ने कहा कि कारणों का अनुसंधान ही ऐतिहासिक शोध तथा ऐतिहासिक आवश्यकता है। फ्रेंच इतिहासकार टेने के अनुसार- "इतिहासकार कारणों के बिखरे हुए सूत्रों को सूक्ष्म दृष्टि से देखकर इसे बुनकर कपड़े के रूप में प्रस्तुत करता है, जैसे मकड़ी अपने जाले को बुनती है।" ई.एच. कार ने कारण और तत्संबंधी परिणाम के पारस्परिक संबंधों को क्रम से संयोजित करना ही इतिहास बताया है।20वीं सदी के इतिहासकारों का मानना है कि किसी घटना के कारणों में क्रमबद्धता पाई जाती है। इसलिए इतिहासकार को चाहिए कि वह किसी भी घटना के उत्तरदायी सभी कारणों को खोजे एवं तत्पश्चात् उन्हें क्रमबद्ध ढंग से प्रस्तुत करे।

3.1.03.2. कार्य-कारण संबंध

ई.एच. कार ने कार्य-कारण संबंध को इतिहास की कुंजी कहा है। कार्य-कारण सिद्धांत के मूल में यह तथ्य निहित है कि प्रत्येक कार्य का कोई न कोई कारण होता है और प्रत्येक कारण कार्य के रूप में प्रतिफलित होता है। कारण कार्य को उत्पन्न करता है और आगे चल कर वही कार्य अन्य कार्यों के लिए कारण बन जाता है। फलस्वरूप ऐतिहासिक घटनाएँ क्रमबद्ध रूप से घटित होती रहती हैं। इसीलिए

ऐतिहासिक घटनाओं के स्वरूप को समझने के लिए यह आवश्यक है कि उस घटना के लिए उत्तरदायी कारणों को भी समझा जाए।

कई विद्वानों ने घटना घटित होने के निर्णायक एवं तात्कालिक कारण को 'कारण' एवं अन्य कारणों को 'परिस्थिति' की संज्ञा दी है। मेंडलवाम महोदय ने किसी घटना के प्रमुख कारण को 'कारण' एवं अन्य कारणों को 'परिस्थिति' कहा है।

विलियम जेम्स महोदय के अनुसार- "इतिहासकार निष्कर्ष प्राप्ति के उद्देश्य से कारण तथा परिणाम की खोज करता है। मुहम्मद तुलगक ने चार योजनाएँ बनाई, योजना बनाने के पीछे उसकी सोच रचनात्मक थी। अब इतिहासकार यह निष्कर्ष निकालने को बाध्य हो जाता है कि आखिर ये योजनाएँ असफल क्यों हुईं। अतः उद्देश्य तथा निष्कर्ष प्राप्ति की उत्कृष्ट अभिलाषा इतिहासकार को उन कारणों के अन्वेषण के लिए बाध्य करती है, जो किसी घटना अथवा कार्य के मूल में होते हैं।

डेवी महोदय कारण-कार्य के समीकरण को रेल की पटरी की भाँति समानांतर मानते हैं अर्थात् कारण यदि सीधा होगा तो परिणाम भी सीधा-सीधा होगा।

कारण..... कारण

परिणाम ---------- परिणाम

यदि कारण घुमावदार होगा तो उसका परिणाम भी घुमावदार ही होगा।

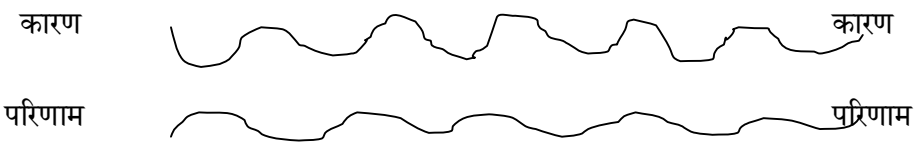

कारण परिणाम के उक्त रेखाचित्र को हम इस प्रकार समझ सकते हैं-

i. अपराधी का अपराध यदि सामान्य होगा तो उसकी सजा भी सामान्य अर्थात् कम होगी।
ii. अपराधी का अपराध यदि गंभीर होगा तो उसकी सजा भी गंभीर अर्थात् अधिक होगी।
iii. वर्षा यदि कम होगी तो बाढ़ की आशंका भी कम होगी।
iv. वर्षा अधिक होगी तो बाढ़ की संभावना भी अधिक होगी।
v. प्रथम विश्व युद्ध से पूर्व जर्मनी ने फ्रांस को काफी आतंकित किया था, फ्रैंकफर्ट की संधि द्वारा उसके दो प्रमुख क्षेत्र अल्सेस एवं लोरा छीन लिए थे। अतः इनके परिणाम भी गंभीर सिद्ध हुए। प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् वर्साय की संधि की शर्तों द्वारा जर्मनी को फ्रांस एवं इंग्लैंड ने अपंग बनाने की हर संभव कोशिश की।
vi. क्रीमिया का युद्ध 1856 ई. के न तो कारण अर्थपूर्ण थे और न ही उसके परिणाम महत्वपूर्ण निकले।
vii. 1789 ई. की राज्य क्रांति के पीछे निहित कारण काफी गंभीर थे। अतःपरिणामों की दृष्टि से भी यह क्रांति काफी महत्वपूर्ण सिद्ध हुई।

इस प्रकार हमें डेवी महोदय का यह कथन कुछ हद तक उचित प्रतीत होता है कि कारण एवं परिणामों में रेल की पटरी जैसी समानता होती है। वस्तुतः कारणों की प्रकृति के अनुरूप ही परिणामों का स्वरूप भी परिवर्तित हो जाता है। इस तारतम्य में मैंडलबाम ने भी लिखा है, ''जो किसी वस्तु को उत्पन्न

करता है अथवा वस्तु में परिवर्तन करता है, उसे कारण कहते हैं, उसके प्रभाव से परिवर्तित स्वरूप को प्रभाव कहते हैं।"

मैंडलबाम महोदय के इस कथन को हम सम्राट अशोक के परिप्रेक्ष्य में बेहतर ढंग से समझ सकते हैं। कलिंग के युद्ध के रक्तपात ने अशोक के मन में युद्ध से विरक्ति उत्पन्न की और उसका हृदय परिवर्तित हो गया। अतः कलिंग का युद्ध अशोक के हृदय परिवर्तन का प्रमुख कारण है। अब प्रमुख कारण कलिंग के युद्ध के विनाशकारी परिणाम को देखकर अशोक की विजयनीति का स्वरूप परिवर्तित हो गया। अब अशोक ने युद्ध विजय के स्थान पर धम्म विजय का मार्ग अपनाया। अतः विजयनीति का यह परिवर्तित स्वरूप ही कलिंग युद्ध का प्रमुख प्रभाव माना जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि घटना के कारण, परिस्थितियाँ एवं प्रभाव एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से संबद्ध हैं। स्थूल रूप से हमें कारण एवं परिस्थितियों में कोई अंतर नहीं दिखाई देता मगर सूक्ष्म अन्वेषण द्वारा हम कारण एवं परिस्थितियों के महत्व को भली-भाँति समझ सकते हैं। कारण एवं परिस्थितियाँ दूर तक घटना के प्रभावों के स्वरूप को प्रभावित करते हैं। कालिंगवुड महोदय के अनुसार- "कारणों की क्रमबद्धता में इतिहासकार का पुनीत कर्तव्य है कि वह कारण तथा परिस्थिति के अंतर को स्पष्ट करे।" परिस्थितियों के संदर्भ में ही कारण के निर्णायक प्रभाव का अध्ययन संभव है। इस तारतम्य में ओकशाट (Oakeshott) महोदय ने भी स्पष्ट किया है कि परिस्थितियों की व्याख्या में ही कारण के स्पष्ट प्रभाव को ढूँढ़ा जा सकता है।

3.1.03.3. ऐतिहासिक कारणों का वर्गीकरण

एक ऐतिहासिक घटना अनेक कारणों से घटित होती है और सभी कारण प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से घटना के लिए उत्तरदायी होते हैं। कौन-सा कारण किस सीमा तक घटना घटने के पीछे उत्तरदायी है, इसका निर्णय इतिहासकार अपने विवेक से करता है। किसी भी घटना के पीछे कुछ मूल कारण होते हैं एवं कुछ गौण कारण भी। अतः इतिहासकार अपने सूक्ष्म विश्लेषण द्वारा गौण कारणों के संदर्भ में मूल कारण के व्यापक प्रभाव की भी व्याख्या करता है। पी. गार्डिनर महोदय ने इस तारतम्य में स्पष्ट किया है कि इतिहासकार किसी भी घटना की व्याख्या में गौण कारण, मूल कारण, सहायक कारण, आकस्मिक कारण तथा अंतिम कारण को क्रमबद्धता प्रदान करता है।

किसी भी घटना से संबंधित कारणों का वर्गीकरण निम्नानुसार हैं-

1. प्रारंभिक कारण- किसी भी घटना के घटने के पीछे जब एक से अधिक कारण उत्तरदायी होते हैं, तो इतिहासकार काल के सापेक्ष में यह खोजने का प्रयास करता है कि कथित घटना के घटने के पीछे सबसे पहला कारण कौन-सा था, यही प्रारंभिक कारण होता है। प्रारंभिक कारण में ही घटना का बीजारोपण हो जाता है। प्रथम विश्व युद्ध का प्रारंभिक कारण कई विद्वान 1871 ई. की फ्रैंकफर्ट संधि को मानते हैं, क्योंकि फ्रैंकफर्ट संधि की कठोर शर्तों में प्रथम विश्व युद्ध के अंकुर मौजूद थे।

2. मूल कारण- इतिहास में किसी घटना का मूल कारण वह होता है, जिसके कारण घटना घटित हुई। कभी-कभी मूल कारण को केंद्र में रखकर घटना के घटित होने के लिए अन्य कारणों की तलाश की जाती है। अंग्रेज़ एवं चीन के बीच 1839-42 ई. के प्रथम अफीम युद्ध का मूल कारण था - चीन में अंग्रेज़ों द्वारा अधिकाधिक व्यापारिक सुविधाओं को प्राप्त करने की उत्कट अभिलाषा। इनके अलावा मंचू शासकों की निरंकुशता, व्यापारिक प्रतिबंध, को हॉग माध्यम, कोतो प्रथा आदि अन्य गौण कारण थे।

3. गौण कारण- किसी भी घटना के घटित होने के पीछे जितने भी कारण उत्तरदायी होते हैं, उनमें कुछ सामान्य कारण भी होते हैं। इन सामान्य कारणों को गौण कारण माना जाता है, क्योंकि ये कारण घटना के लिए मूलतः जिम्मेदार न होकर घटना में सहयोगी मात्र होते हैं।

उदाहरणस्वरूप एक घटना द्वारा हम गौण कारणों को निम्न प्रकार समझ सकते हैं-

एक मेरी नामक धनी महिला ने अपने घर शाम को किटी पार्टी के लिए अपनी सहेलियों को बुलाया। गर्मी का मौसम था एवं दिन भर लाइट किसी कारणवश न आने के कारण फ्रिज में बर्फ न जम सकी। अतः मेरी ने अपने ड्राइवर डेविड को गाड़ी से बाजार जाकर बर्फ लाने को कहा। ड्राइवर बर्फ लेने बाजार गया, बर्फ की दुकान के पास ही शराब की दुकान थी , अतः उसने शराब पी ली। लौटते समय एक स्टीप मोड़ पर जहाँ स्ट्रीट लाइट नहीं थी, डेविड ने अपनी कार मोड़ी। जॉन नामक एक व्यक्ति पान खाने के लिए सड़क पार कर रहा था। डेविड की कार के ब्रेक खराब थे, अतः जॉन कार के नीचे दबकर मर गया। जॉन की दुर्घटना स्थल पर मृत्यु के लिए निम्न कारण उत्तरदायी थे-

1. घटना का प्रारंभिक कारण था, मेरी द्वारा किटी पार्टी का आयोजन करना।
2. डेविड का शराब पीकर गाड़ी चलाना।
3. कार का ब्रेक खराब था। अतः मिस्त्री दुर्घटना का कारण था।
4. जॉन का पान का शौकीन होना दुर्घटना का कारण था।
5. बर्फ की दुकान के पास में शराब की दुकान का होना दुर्घ टना का कारण था।
6. गर्मी में दिन भर लाइट न रहना और फ्रिज में इसी कारण बर्फ न जमना, अतः बिजली विभाग दुर्घटना के लिए दोषी था।
7. सड़क के स्टीप मोड़ के लिए सार्वजनिक निर्माण विभाग दोषी था।
8. मेरी के पति एडम्स सरकारी काम से बाहर गए थे, इसीलिए मेरी ने किटी पार्टी आयोजित की। अतः मेरी के पति एडम्स का बाहर जाना घटना के लिए उत्तरदायी था।
9. यातायात नियंत्रित करने वाले पुलिस को मोड़ पर रहना चाहिए था, अतः यातायात पुलिस विभाग दोषी था।
10. स्टीप मोड़ पर प्रकाश की समुचित व्यवस्था नहीं थी, अतः नगरपालिका घटना की दोषी थी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जॉन की दुर्घटना का सूक्ष्म अन्वेषण करने पर हमें दुर्घटना के लिए उत्तरदायी कई कारण मिलते हैं। यहाँ घटना का मूल कारण था डेविड का शराब के नशे में गाड़ी चलाना। बाकी सभी गौण कारण के रूप में देखे जा सकते हैं।

4. सहायक कारण- सहायक कारण भी गौण कारण की श्रेणी में ही आते हैं, जो घटना के लिए अप्रत्यक्ष रूप से जिम्मेदार होते हैं। जॉन वाली दुर्घटना में मेरी का धनवान होना, जॉन का पान का शौकीन होना, बर्फ की दुकान के पास शराब की दुकान का होना आदि दुर्घटना के सहायक कारण माने जा सकते हैं।

5. आकस्मिक कारण- कोई भी घटना जब घटित होती है, तो उस घटना के कुछ आकस्मिक कारण भी होते हैं। आकस्मिक कारण बहुत कुछ परिस्थिति पर निर्भर करते हैं। उपरिवर्णित दुर्घटना के परिप्रेक्ष्य में देखें तो जॉन की मृत्यु का आकस्मिक कारण यह था कि जिस समय वह पान खाने के लिए सड़क पार कर रहा था, ठीक उसी समय डेविड शराब पीकर बिना ब्रेक की गाड़ी से वहाँ से निकला। अतः यह एक आकस्मिक संयोग था, जो जॉन की मृत्यु का कारण बन गया।

6. अंतिम एवं तात्कालिक कारण- अंतिम एवं तात्कालिक कारण वे होते हैं, जिनके होने से घटना घटित हो जाती है। प्रथम विश्व युद्ध के परिप्रेक्ष्य में आस्ट्रिया के राजकुमार फ्रांसिस फर्डीनेण्ड की हत्या युद्ध का तात्कालिक कारण सिद्ध हुई। द्वितीय विश्व युद्ध के परिप्रेक्ष्य में 1939 ई. में हिटलर का पोलैण्ड पर आक्रमण युद्ध का तात्कालिक एवं अंतिम कारण था।

7. परिस्थितिजन्य कारण- किसी भी घटना के पीछे कुछ परिस्थितिजन्य कारण भी ज़िम्मेदार होते हैं। मैडलबाम महोदय ने तो घटना के लिए मुख्यतः उत्तरदायी 'कारण' को कारण एवं अन्य सहायक कारणों को 'परिस्थिति' कहा है। जॉन की दुर्घटना के उदाहरण में अधिकांश कारण परिस्थितिजन्य कारण ही थे, जैसे- मेरी के पति एडम्स का बाहर जाना और इसीलिए किटी पार्टी का आयोजन होना, उस दिन बिजली न होने के कारण फ्रिज में बर्फ का न जमना, बर्फ के पास शराब की दुकान का होना, सड़क का स्टीप मोड़ इत्यादि सभी परिस्थितिजन्य कारण के रूप में देखे जा सकते हैं।

8. विविध कारण- विश्व की अनेक घटनाओं के लिए उपर्युक्त कारणों के साथ-साथ कुछ विविध कारण भी उत्तरदायी होते हैं, यथा-सामाजिक कारण, धार्मिक कारण, राजनीतिक कारण, आर्थिक कारण एवं भौगोलिक कारण आदि।

3.1.03.4. कारण और अवश्यंभाविता

जान डेवी ने कारण-कार्य के समीकरण को रेल की पटरी की भाँति समानांतर बताया है अर्थात् कारण के साथ-साथ उसका परिणाम भी चलता है। कारण परिणाम को अवश्यंभावी बनाता है, परंतु यहाँ यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि कारण के माध्यम से भविष्य में होने वाला परिणाम अन्य कारणों एवं परिस्थितियों से भी प्रभावित होता है। कारण का परिणाम कब सामने आएगा एवं उसका स्वरूप क्या होगा? इसके बारे में निश्चित भविष्यवाणी नहीं की जा सकती। इतिहासकार कॉलिंगवुड ने इसीलिए कहा भी है कि कोई घटना अवश्यंभावी नहीं होती। इसके विपरीत धार्मिक एवं भाग्यवादी अवधारणा में ऐतिहासिक अवश्यंभाविता को प्रायः स्वीकार किया गया है।

श्रीमद्भगवद्गीता के चतुर्थ अध्याय के 7-8 श्लोक में अवतार को अवश्यंभावी बताते हुए लिखा है कि धर्म की हानि होने पर दुर्जनों के संहार और सज्जनों की रक्षार्थ अवश्य ही भगवान अवतार लेते हैं। गीता की ही तरह गोस्वामी तुलसीदास ने भी अवतार को अवश्यंभावी बताया है। उन्होंने रामचरितमानस के बालकांड में दोहा क्रमांक— 120 (घ) के बाद भी चौपाई क्रमांक 3-4 में लिखा है।

जब जब होय धरम कै हानी।
बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी।।

X X X

तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा।
हरहिं कृपा निधि सज्जन पीरा।।

कार्ल मार्क्स, तालस्तोय (Tolstoy) एवं ई.एच. कार ने विभिन्न तर्कों के आधार पर घटनाओं की अवश्यंभाविता को व्याख्यायित किया है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं ज्ञान सापेक्ष इतिहासकार ऐतिहासिक अवश्यंभाविता के सिद्धांत को स्वीकार नहीं करते। उनका स्पष्ट अभिमत है कि इतिहास में

कुछ भी अवश्यंभावी नहीं होता। कई कारणों के उपस्थित होने पर भी आकस्मिक परिस्थितयों के कारण घटना उस प्रकार नहीं घटती जैसी की लोगों ने कल्पना की थी। उदाहरण के लिए 1857 के दौरान क्रांतिकारियों ने क्रांति के लिए31 मई की तिथि निश्चित की थी। मगर आकस्मिक कारण से क्रांति मेरठ में 10 मई 1857 को ही प्रारंभ हो गई। इसलिए इतिहास में अवश्यंभावी अथवा अनिवार्य शब्द के स्थान पर संभाव्य शब्द का प्रयोग करने की वकालत की गई है।

3.1.03.5. कारण और नियतिवाद

मैंडलबाम ने विश्व की ऐतिहासिक घटनाओं को नियति का परिणाम बताया है। उनके अनुसार कारण एक दूसरे से संबंधित होते हैं और नियतिवाद को जन्म देते हैं। यह सार्वभौमिक नियम है कि प्रत्येक घटना और मानवीय कार्य-व्यापार कारणों की नियति का परिणाम है। हेगेल एवं मार्क्स ने कहा है, "इतिहास में अवश्यंभावी कुछ नहीं होता, कारणों के आधार पर परिणामों की संभावना व्यक्त की जाती है।"

कोई भी ऐतिहासिक घटना बहुत से कारणों का परिणाम होती है। कई बार संयोग एवं आकस्मिक कारण से घटना उस तरह घटित नहीं होती, जिस तरह कि उसके घटित होने की संभावना थी। उदाहरणार्थ पानीपत के द्वितीय युद्ध 1556 ई. में हेमू की विजय अवश्यंभावी नजर आ रही थी। उसी समय आकस्मिक रूप से एक तीर हेमू की आँख में लगा और परिणाम बदल गया। अकबर की विजय हुई। इस प्रकार अनुकूल परिस्थितियों एवं कारणों के उपरांत भी आकस्मिकता एवं संयोग घटनाओं को स्वरूप एवं परिणाम को प्रभावित करते हैं। पॉलिबियस (Polybius) टैसियस, गिबन, ब्यूरी एवं फिशर आदि विद्वानों ने इसीलिए ऐतिहासिक घटनाओं के घटित होने में संयोगों को महत्वपूर्ण माना है।

3.1.03.6. कारणत्व के प्रमुख सिद्धांत

इतिहास लेखन में इतिहासकार घटना के लिए उत्तरदायी विभिन्न कारणों का विश्लेषण करता है। वह अपने विश्लेषण के दौरान कारणत्व के किसी-न-किसी सिद्धांत का अनुपालन करता है। कारणत्व के प्रमुख सिद्धांत निम्नवत हैं—

3.1.03.6.1. दैवी नियोजन का सिद्धांत

मिस्र, यूनान एवं बेबीलोन के कुछ इतिहासकारों ने घटना के कारणों में दैवी नियोजन के सिद्धांत के महत्व को स्वीकार किया है। इन्होंने नायकों, पुरोहितों एवं राजाओं द्वारा संभव कार्यों की व्याख्या की। जिन कारणों की व्याख्या करने में वे असमर्थ रहे उन्हें उन्होंने दैवीय इच्छा कहकर छोड़ दिया। इतिहास की कई घटनाओं के कारण तब संभावित परिणाम से अलग हटकर परिणाम देते हैं तो विद्वान इसमें दैवीय इच्छा का सिद्धांत जोड़ देते हैं। दैवी नियोजन के सिद्धांत के तहत कभी-कभी दैवीय इच्छा एवं भाग्य भी इतिहास का निर्माण करता है। सर इजायाट बर्लिन (Sir Isaiah Berlin) का कथन है, "मानवीय व्यवहार के पीछे दैवीय शक्ति निर्णायक होती है।" वर्तमान समय में इतिहास लेखन में वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रमुखता से परिलक्षित होता है। अतः आधुनिक काल में दैवीय नियोजन सिद्धांत का अनुपालन नहीं किया जाता।

3.1.03.6.2. बुद्धिवादी सिद्धांत

वर्तमान समय में इतिहासकार दैवीय नियोजन के सिद्धांत के स्थान पर बुद्धिवादी सिद्धांत का अनुप्रयोग कारण खोजने में करते हैं। 17वीं-18वीं सदी से बुद्धिवादी सिद्धांत को गति मिली।

3.1.03.6.3. मार्क्सवादी सिद्धांत

कार्ल मार्क्स ने इतिहास की आर्थिक व्याख्या की एवं भौतिकवादी सिद्धांत प्रस्तुत किया। मार्क्स ने इतिहास की प्रत्येक घटना को आर्थिक चश्मे से देखा। उन्होंने बताया कि विश्व में दो वर्ग हैं— एक शोषक एवं दूसरा शोषित। शोषक वर्ग शोषित वर्ग का शोषण करता है एवं प्रत्येक काल के इतिहास से यही शोषण दृष्टिगोचर होता है। आज भी कई इतिहासकार मार्क्सवादी सिद्धांत का उपयोग करते हुए इतिहास लेखन में संलग्न हैं। मार्क्सवादी सिद्धांत का उपयोग करने वाले इतिहासकार वर्ग संघर्ष को प्रमुखता देते हैं। प्रत्येक घटना के कारणों के पीछे आर्थिक कारण खोजते हैं। बर्टेण्ड रसेल महोदय ने मार्क्स के सिद्धांत का विरोध किया था।

3.1.03.6.4. मानवीय मनोभाव का सिद्धांत

इतिहास की घटनाएँ मानवीय कार्य व्यापार का परिणाम है। काम, क्रोध, मद, लोभ, ईष्या-द्वेष, राग, आवेश, भावना, तृष्णा, इत्यादि मनोगत प्रवृत्तियाँ मानवीय कार्य-व्यवहार को प्रभावित करती है। अतः मानव द्वारा किए गए कार्यों की व्याख्या करते समय इस बात पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि इस कार्य के पीछे कौन-सी मनोवृत्ति कार्य कर रही थी। मानव की मनोवृत्ति को यदि समझ लिया जाए तो उसके द्वारा किए गए कार्य को भी बेहतर ढंग से समझा जा सकता है। हेगेल, काम्टे (Comte) एवं सायमन इस सिद्धांत के प्रमुख समर्थक रहे हैं।

1.2.6.5 वैज्ञानिक सिद्धांत

इतिहास की वैज्ञानिक अवधारणा 19वीं सदी की देन है। राँके के नेतृत्व में इतिहासकारों ने ऐतिहासिक घटनाओं के पीछे वैज्ञानिक दृष्टि से कारण खोजे। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से कारणों की व्याख्या इतिहास को बोधगम्य बनाती है। वैज्ञानिक सिद्धांत से कारणों को खोजने पर इतिहास में वस्तुनिष्ठता आती है।

निष्कर्षतः हम देखते हैं कि इतिहास में कारणत्व के अनेक सिद्धांत हैं, जो अपने-अपने ढंग से ऐतिहासिक घटनाओं और उनके घटने के उत्तरदायी कारणों की व्याख्या करते हैं।

3.1.03.7. इतिहास में कारण और इतिहासकार

कारणों के साथ इतिहासकार का संबंध अन्योन्याश्रित है। कारणों की खोज इतिहासकार का प्रमुख कार्य है। किसी भी घटना के घटित होने के पीछे निहित कारणों की खोज इतिहासकार की योग्यता को दर्शाती है। इतिहासकार अपनी शोधपरक दृष्टि से कारणों की खोज करता है। एक ही घटना के कारणों की खोज विभिन्न इतिहासकार कारणतत्व के विभिन्न सिद्धांतों का उपयोग कर करते हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से तथ्य एवं कारणों की खोज ही इतिहास है। डेलकार्ट पार्सन के अनुसार इतिहास एक चयन प्रक्रिया है। इतिहासकार वास्तविक कारणों को बोधगम्य तथा अनुभव गम्य बनाता है। जिस प्रकार इतिहासकार

तथ्यों के महासमुद्र से आवश्यक तथ्यों का चयन करता है, उसी प्रकार कारण तथा कार्य की कतिपय श्रृंखलाओं से इतिहासकार केवल उन्हीं कारणों का चयन करता है जिनका ऐतिहासिक महत्व होता है।

इतिहासकारों को इतिहास लेखन के दौरान, व्याख्या एवं प्रभाव की अपेक्षा कारण को अधिक महत्व देना चाहिए। इस तारतम्य में डेवी ने लिखा है कि प्रभाव की अपेक्षा कारण का स्थान अधिक श्रेष्ठ होता है। इतिहासगत कारणों की व्याख्या में कल्पना का भी स्थान होता है। कल्पना ही वह गोंद है, जो तथ्यपरक कारणों को जोड़ती है। इस गोंद रूपी कल्पना के अभाव में कारणों की क्रमबद्धता मुश्किल है। कालिंगवुड महोदय ने तो कल्पना को ऐतिहासिक ज्ञान का मूल स्रोत माना है। इस प्रकार इतिहास में इतिहासकार एवं उसके द्वारा कारणों की खोज का अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान है।

अपनी प्रगति की जाँच करें

प्रश्न-1. अरस्तु ने कारण के महत्व के बारे में क्या कहा था?

प्रश्न-2. हेरोडोटस ने अपने इतिहास लेखन का क्या उद्देश्य बताया?

प्रश्न-3. "कारणों का अनुसंधान ही ऐतिहासिक शोध तथा ऐतिहासिक आवश्यकता है।" यह कथन किसका है?

प्रश्न-4. कार्य-कारण संबंध को इतिहास की कुंजी किसने कहा है?

प्रश्न-5. कार्य-कारण सिद्धांत से आप क्या समझते हैं?

प्रश्न-6. कार्य-कारण समीकरण को रेल की पटरी की भाँति समानांतर किसने बताया है?

प्रश्न-7. किन भारतीय धर्म ग्रंथों में ऐतिहासिक अवश्यंभाविता को स्वीकार किया गया है?

प्रश्न-8. किन विद्वानों ने ऐतिहासिक घटनाओं के घटित होने में संयोगों की भूमिका को महत्वपूर्ण माना है?

प्रश्न-9. तात्कालिक कारण किसे कहते हैं?

प्रश्न-10. कारणतत्व के किन्हीं चार सिद्धांतों के नाम लिखिए।

3.1.03 सारांश

इतिहास में कारण एवं वस्तुनिष्ठता का अत्यंत महत्व है। इतिहास में अतीत की घटनाओं का अध्ययन किया जाता है। उन घटनाओं के घटित होने के कारण क्या थे, उनकी खोज इतिहासकार को करनी होती है। किसी भी घटना के लिए एक से अधिक कारण जिम्मेदार होते हैं। विद्वानों ने घटना के घटित होने के एकदम पूर्व के कारण अर्थात् तात्कालिक कारण को कारण एवं अन्य कारणों को परिस्थितियों की संज्ञा दी है। इतिहासकार कारणों की खोज में विभिन्न सिद्धांतों- दैवी नियोजन का सिद्धांत, बुद्धिवादी सिद्धांत, मार्क्सवादी सिद्धांत आदि को अपनाता है। इतिहास के कारणों का वर्गीकरण भी किया गया है। कारण एवं परिणाम के बारे में भी विद्वानों ने विचार प्रकट किए हैं। डेवी महोदय ने कारण-कार्य के समीकरण को रेल की पटरी की भाँति समानांतर बताया है।

इतिहास में वस्तुनिष्ठता आज युग की पुकार है। वैज्ञानिक विधा के इतिहासकार ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता का हरसंभव प्रयास करते हैं। यद्यपि ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की कई समस्याएँ हैं, तथापि दृढ़ संकल्प एवं दृढ़ इच्छाशक्ति द्वारा इतिहास लेखन में वस्तुनिष्ठता लाई जा सकती है। ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता एवं वैज्ञानिक वस्तुनिष्ठता में अंतर है। वैज्ञानिक अचेतन वस्तुओं पर प्रयोगशाला में प्रयोग करते हैं। अतः उनके निष्कर्ष सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक होते हैं। इसके विपरीत एक इतिहासकार

मानवीय कार्य-व्यापार का अध्ययन करता है। विभिन्न मानवों के चरित्र में एकरूपता नहीं पाई जाती। अतः इतिहासकार के निष्कर्ष सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक नहीं होते। ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता सिद्धांत की चीज न होकर व्यवहार की चीज है अतः निरंतर प्रयास करने से ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता लाई जा सकती है। इतिहासकार अपनी योग्यता द्वारा भी ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता ला सकता है।

3.1.05. अपनी प्रगति की जाँच करें प्रश्नों के उत्तर

1. अरस्तु ने कारण के महत्व को स्वीकार करते हुए कहा था कि कारणों के अभाव में किसी घटना या कार्य का होना संभव नहीं है।
2. इतिहास के जनक हेरोडोटस ने लिखा है कि मेरे इतिहास लेखन का एकमात्र उद्देश्य है- ग्रीक तथा बर्बर जातियों के पारस्परिक युद्धों का कारण बताना।
3. एडवर्ड मेयर का
4. ई.एच. कार ने
5. कार्य-कारण सिद्धांत के मूल में यह तथ्य निहित है कि प्रत्येक कार्य का कोई-न-कोई कारण होता है और प्रत्येक कारण कार्य के रूप में प्रतिफलित होता है। कारण कार्य को उत्पन्न करता है और आगे चल कर वही कार्य अन्य कार्यों के लिए कारण बन जाता है। फलस्वरूप ऐतिहासिक घटनाएँ क्रमबद्ध रूप से घटित होती रहती है।
6. जॉन डेवी ने
7. गीता एवं रामचरित मानस
8. पॉलिबियस, टैसियस, गिबन एवं फिशर आदि ने
9. जिस कारण के एकदम पश्चात् कोई घटना घटित होती है वह तात्कालिक कारण कहलाता है।
10. **(1)** दैवी नियोजन का सिद्धांत
    (2) बुद्धिवादी सिद्धांत
    (3) मार्क्सवादी सिद्धांत
    (4) मानवीय मनोभाव का सिद्धांत

3.1.06. बोध प्रश्न

3.1.06.1. लघु उत्तरीय प्रश्न

1. इतिहास में कारण की अवधारणा से आप क्या समझते हैं?
2. तात्कालिक कारण से आप क्या समझते हैं?
3. कारण-कार्य समीकरण क्या है?
4. कारणत्व के दैवी नियोजन सिद्धांत से आप क्या समझते हैं?
5. कारणत्व के मार्क्सवादी सिद्धांत से आपका क्या आशय है?

3.1.06.2. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. इतिहास के कारणत्व के सिद्धांतों की विवेचना कीजिए।
2. इतिहास के कारणों के वर्गीकरण का वर्णन कीजिए।
3. इतिहास के कारण की अवधारणा की व्याख्या कीजिए।

3.1.07. संदर्भ ग्रंथ सूची (Further Readings)

01. Butterfield H. (1951). Man and the Human Relations. London.
02. Car. E.H. (1962). What is History. Macmillan. London.
03. Colleingwood, R.G. (1976). The Idea of History, Oxford University Press, London.
04. Croce, B. (1967). History its Theory and Practice. New York.
05. Walsh, W.H. (1967). An Introduction to the Philosophy of History, London.
06. चौबे झारखंड. (1999). इतिहास दर्शन, वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन।
07. दुबे, सीताराम. (2001). (सं.), समसामयिक इतिहास लेखन दिल्ली : प्रविधि एवं प्रवृत्तियां. प्रतीक्षा प्रकाशन।
08. दुबे, जगदीश नारायण. (1988). इतिहास विज्ञान. वाराणसी : सुभाष प्रकाशन।
09. पाण्डेय, गोविन्द चन्द्र. (1973). इतिहास : स्वरूप एवं सिद्धांत, जयपुर : राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी।
10. राधेशरण. (2003). इतिहास और इतिहास लेखन. भोपाल : मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी।
11. श्रीवास्तव, बी.के. (2010). इतिहास लेखन : अवधारणा, विधायें एवं साधन. आगरा : एस.वी.पी.डी. पब्लिशिंग हाउस।
12. सांकृत्यायन, राहुल. (1956). अतीत से वर्तमान. वाराणसी : विद्यामंदिर प्रेस।
13. सिंह, परमानंद (2000). इतिहास दर्शन, नई दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास।

खंड - 3 इतिहास लेखन के विभिन्न सिद्धांत

इकाई-2 इतिहास लेखन में वस्तुनिष्ठता एवं पूर्वग्रह

इकाई की रूपरेखा

3.2.1. उद्देश्य
3.2.2. प्रस्तावना
3.2.3. वस्तुष्ठिता से अभिप्राय
3.2.4. वस्तुनिष्ठता की समस्याएँ
3.2.5. वस्तुनिष्ठता की आवश्यकता
3.2.6. पूर्वग्रह से अभिप्राय
3.2.7. पूर्वग्रह के कारण
3.2.8. इतिहास में निष्पक्षता की उपेक्षा
3.2.9. सारांश
3.2.9.1. वस्तुनिष्ठता
3.2.9.2. पूर्वग्रह
3.2.10. बोध प्रश्न
3.2.10.1. लघुउत्तरीय प्रश्न
3.2.10.2. दीर्घउत्तरीय प्रश्न
3.2.11. संदर्भ ग्रंथ सूची

3.2.1. उद्देश्य

इतिहास में विभिन्न व्यक्तियों एवं घटनाओं के संबंध में विद्वानों के मध्य हमेशा से मतमतांतर रहे हैं। साथ ही साथ इतिहास को कला अथवा विज्ञान अथवा सामाजिक विज्ञान मानने पर भी विद्वानों के अपने-अपने विचार हैं। प्रस्तुत इकाई का प्रथम उद्देश्य विद्वानों के उन मतों को प्रकाश में लाना है जिसके आधार पर कहा जाता है कि इतिहास का अध्ययन व्यक्तिनिष्ठ नहीं बल्कि वस्तुनिष्ठ होना चाहिए।

वर्तमान इतिहास लेखन में पूर्वग्रह सर्वव्यापि है इतिहास में पूर्वग्रह के कौन से कारण होते है और यह किस प्रकार से इतिहास को प्रभावित करते हैं ? इन तथ्यों से अवगत कराना इस इकाई का दूसरा उद्देश्य है।

3.2.2. प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में इतिहास में वस्तुनिष्ठता की अवधारणा, वस्तुनिष्ठता की समस्याएँ, वस्तुनिष्ठता की आवश्यकता इत्यादि के साथ-साथ इतिहास में पूर्वग्रह, पूर्वग्रह के कारण एवं इतिहास की निष्पक्षता पर प्रकाश डाला जाना प्रस्तावित है। इकाई के अंत में बोध प्रश्न एवं संदर्भ ग्रंथ सूची को भी समाहित किया जाएगा।

3.2.3. वस्तुष्ठिता से अभिप्राय

भूमिका

वर्तमान में जिस प्रकार इतिहास का क्षेत्र बढ़ता जा रहा है, उसी प्रकार इतिहास की विषय वस्तु भी बढ़ती जा रही है। समाज की आवश्यकता के अनुरूप इतिहास के स्वरूप का विकास होता जा रहा है। मनुष्य के छोटे से छोटे विषयगत पहलुओं पर अब शोधकार्य होते जा रहे हैं। फलतः इतिहास की विषयगत व्यापकता बढ़ती जा रही है। मानव के विकास के साथ-साथ जैसे-जैसे इतिहास का क्षेत्र बढ़ता गया वैसे-वैसे इतिहास की विषय वस्तु भी बढ़ती गई। विषय वस्तु के विस्तार के साथ इतिहास के विविध विषयों के लेखन और उसकी वस्तुनिष्ठता का प्रश्न भी उठा। अब इतिहास के विषय के साथ उसकी वस्तुनिष्ठता एक चिंतन का विषय है।

सर्वविदित है कि कोई भी अध्ययन या तो व्यक्तिनिष्ठ होता है अथवा वस्तुनिष्ठ। जब व्यक्ति को विषय बनाते हैं तो वह अध्ययन सामाजिक विज्ञान के अंतर्गत का होता है और जब वस्तु को विषय बनाते हैं तो वह अध्ययन विशुद्ध विज्ञान का होता है, परंतु यह सोच सर्वथा भ्रामक है। अध्ययन-विषय विज्ञान का हो अथवा सामाजिक विज्ञान का, दोनों में ही व्यक्ति और वस्तु को लिया जा सकता है। हाँ, यह अवश्य सोचने का विषय है कि व्यक्ति का व्यक्तित्व दुनिया में कभी भी एक तरह का नहीं मिलता किंतु वस्तु में समानता के गुण विद्यमान होते हैं, इसलिए व्यक्ति को जिसमें अध्ययन का विषय बनाते हैं उसमें प्राप्त निष्कर्ष सार्वभौम नहीं होते होगें, किंतु वस्तुएँ क्योंकि समान मिलती हैं अतएव उनके विषय में प्राप्त निष्कर्ष सार्वभौम होते होंगे।

वस्तुनिष्ठता एक वैज्ञानिक विधा है जिसमें कोई वैज्ञानिक समुचित विधि तथा नियमों के आधार पर प्रयोगशाला में सिद्ध निष्कर्ष को प्रस्तुत करता है तो सभी वैज्ञानिक उस अन्वेषण को स्वीकार कर लेते हैं, जैसे - पानी, पारा और लोहा के विषय में प्राप्त निष्कर्ष सार्वकालिक एवं सर्वमान्य होते हैं। जो लोग यह मानते हैं कि इतिहास एक विज्ञान है उनके अनुसार इतिहास में वस्तुनिष्ठता पायी जाती है, परंतु जो विद्वान् ऐसा नहीं मानते उनके अनुसार इतिहास में वस्तुनिष्ठता नहीं होती। मानवीय क्रिया-कलापों के संबंध में सभी का एकमत होना संभव नहीं है, इसलिए ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की समस्या आज भी विवाद का विषय बनी हुई है।

3.2.4. वस्तुनिष्ठता की समस्याएँ

ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की समस्याएँ

ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की समस्याएँ गंभीर एवं जटिल हैं। इनके समाधान के पश्चात् ही ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता से संबंधित वैज्ञानिक इतिहासकारों के प्रयास को मान्यता प्रदान की जा सकती है।

(1) डार्डेल का मत

डार्डेल का मत है कि कोई भी पदार्थ स्वयमेव वस्तुनिष्ठ नहीं होता। विषय से अलग करके ही वस्तुनिष्ठता प्रतिरोपित की जाती है। आधुनिक इतिहासकार भ्रांति एवं द्वेषमूलक वस्तुनिष्ठता को भी यथार्थ देखते हैं और वे बाह्य विधाओं द्वारा इतिहास के स्वरूप को वस्तुनिष्ठ बनाने का प्रयास करते हैं। परिणामस्वरूप ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता दार्शनिकों तथा इतिहासकारों के बीच गंभीर चर्चा तथा विवाद का विषय बन गया है। इतिहासकार अतीत का चित्रण किसी विशेष दृष्टिकोण, अवधारणा, संस्कार,

व्यक्तिगत ईर्ष्या, द्वेष तथा भ्रांति के परिवेश में प्रस्तुत करता है। यदि इसे यथार्थ मान लिया जाए तो इतिहासकार का निष्कर्ष कैसे निष्पक्ष हो सकता है।

(2) कार्ल मार्क्स का मत

कार्ल मार्क्स के अनुसार मनुष्य सामाजिक प्राणी है तथा संस्कारों से जुड़ा हुआ है। इतिहासकार का भी जन्म, पालन-पोषण तथा विकास समाज, संस्कार तथा धार्मिक परिवेश में होता है। उस समाज, संस्कार तथा धर्म का प्रभाव स्वाभाविक है। अतः कोई भी इतिहासकार अपने को इन प्रभावों से मुक्त नहीं कर पाता है।

(3) कार्ल बेकर का मत

कार्ल बेकर के अनुसार इतिहास अतीतकालिक घटनाओं का सर्वांगीण विवरण है, परंतु अतीत की घटनाओं का वर्णन प्रत्येक युग का इतिहासकार समान रूप से प्रस्तुत नहीं करता। प्रत्येक पीढ़ी का इतिहासकार अपने युग के आवश्यकतानुसार इतिहास लिखता है। दास-प्रथा किसी युग की सामाजिक आवश्यकता थी और वर्तमान में सामाजिक अभिशाप। इतिहास का स्वरूप प्रत्येक युग में परिवर्तनशील रहा है। अतः इतिहास में वैज्ञानिक वस्तुनिष्ठता की कल्पना एक स्वप्न है।

(4) बियर्ड का मत

बियर्ड ने लिखा है कि इतिहास का प्रत्येक छात्र भली-भाँति जानता है कि ऐतिहासिक तथ्यों के चयन में इतिहासकार द्वेष, भ्रांति, व्यक्तिगत रुचि, सामाजिक वातावरण तथा आर्थिक परिस्थितियों द्वारा प्रभावित होता है। उसके द्वारा ऐतिहासिक नियम तथा विधाओं की उपेक्षा स्वाभाविक है। ऐसी परिस्थिति में इतिहासकार से वस्तुनिष्ठता की अपेक्षा करना उचित नहीं है।

(5) जे. ए. रॉबिन्स का मत

जे. ए. रॉबिन्स ने लिखा है कि आधुनिक इतिहासकारों द्वारा संकलित ऐतिहासिक सामग्री का प्रयोग अपने युग के आवश्यकतानुसार किया जाता है। इस प्रकार इतिहास की पुनर्रचना प्रत्येक युग की सामाजिक आवश्यकता के अनुसार होती है। क्रोचे ने स्पष्ट कहा है कि मनुष्य की आत्मा अपने युग के प्रति संवेदनशील होनी चाहिए। इतिहास की निरंतर पुनर्रचना इस आवश्यकता का प्रत्यक्ष परिणाम है। गार्डिनर के अनुसार सामाजिक आवश्यकता का कोई मापदण्ड नहीं है। एक ही ऐतिहासिक तथ्य की उपयोगिता तथा अनुपयोगिता विभिन्न युगों में बदलती रहती है। उपनिवेशवाद तथा दासप्रथा किसी युग की सामाजिक आवश्यकता रही है, परंतु वर्तमान में उन्हें सामाजिक अभिशाप माना गया है। इस प्रकार मानव-जीवन की रूचियाँ तथा निहित स्वार्थ का स्वरूप प्रत्येक युग में बदलता रहा है। उसमें समता तथा एकरूपता की आशा एक महान भूल है।

(6) शिलर का मत

शिलर के अनुसार ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता एक जटिल समस्या है। ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता एक असंभव परिकल्पना है। रचनाएँ लेखक के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति होती हैं। हैजलिट ने भी इस तथ्य को स्वीकार करते हुए कहा है - कला, अभिरूचि, जीवन तथा वाणी में व्यक्ति की भावना निर्णायक होती है, तर्क नहीं। इतिहासकार की रचना भावप्रधान होती है, तर्कप्रधान नहीं। प्रसिद्ध जर्मन इतिहासकार रांके ने भी कहा है कि इतिहास-लेखन अंतश्चेतना का विषय है। अंतश्चेतना का भावप्रधान होना स्वाभाविक है। इतिहास में तर्क तथा विवेक के लिए स्थान नहीं है। जी. पी. गूच ने इस तथ्य को भी स्वीकार करते हुए कहा है कि हाड़-मांस से बने लेखक के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति मुद्रित पृष्ठों में होती है। अतः व्यक्तिगत भावनाओं को इतिहास-लेखन से अलग कर वस्तुनिष्ठ बनाना एक असंभव प्रयास होगा।

(7) जी. एम. ट्रेवेलियन का मत

जी. एम. ट्रेवेलियन का मत है कि इतिहास में द्वेष तथा सहानुभूति का होना स्वाभाविक है। वह अपनी तथा सामाजिक रुचि के संदर्भ में अतीत के व्यक्तियों, उनके कार्यों और उपलब्धियों का वर्णन करता है। इस प्रकार उसका प्रस्तुतीकरण विषयनिष्ठ होता है। उसके वस्तुनिष्ठ होने की आशा एक भूल है। बेवर के अनुसार वस्तुनिष्ठता एक दोष है, क्योंकि इतिहास में इस उद्देश्य की प्राप्ति अत्यंत जटिल है। भावहीन निष्पक्षता इतिहास का गुण नहीं, अपितु एक दोष है। मातृभूमि के प्रति प्रेम तथा निष्ठा का परित्याग कोई भी इतिहासकार नहीं कर सकता। ओकशाट के अनुसार इतिहास का पूर्वग्रही होना स्वाभाविक है। साम्राज्यवादी ब्रिटिश इतिहासकारों ने सन् 1857 के भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को सैनिक विद्रोह कहा है, जबकि भारतीय इतिहासकार उसे स्वतंत्रता संग्राम की संज्ञा देते हैं।

(8) एल्टन का मत

एल्टन का मत है कि इतिहासकार की चयनप्रक्रिया वस्तुनिष्ठ इतिहास का बाधक तत्व होता है। इतिहासकार कितना ही निष्पक्ष क्यों न हो, विषय का चयन उसके ही द्वारा होता है। निष्कर्ष में वह कितने ही प्रमाण प्रस्तुत करे, फिर भी वह अपूर्ण होते हैं, वह घटनाओं के मूल्यांकन में कितना ही निष्पक्ष क्यों न हो, निष्कर्ष तो उसी का होता है। इतिहास के प्रस्तुतीकरण में जब इतिहासकार के सर्वांगीण व्यक्तित्व की ही अभिव्यक्ति होती है तब ऐसी परिस्थिति में इतिहासकार का स्वरूप वस्तुनिष्ठ कैसे हो सकता है?

(9) वॉल्श का मत

वाल्श के अनुसार इतिहास का स्वरूप चयनात्मक होता है। किसी भी इतिहासकार के लिए अतीत का सर्वांगीण चित्रण कठिन है। प्रायः इतिहासकार अतीत के किसी एक पक्ष का ही वर्णन करता है। अतीत का सर्वांगीण प्रस्तुतीकरण आदर्श हो सकता है, परंतु यह किसी इतिहासकार के सामर्थ्य के बाहर है। अतीत का विस्तृत क्षेत्र इतिहासकार को किसी एक पक्ष के मनोनुकूल चयन करने के लिए विवश करता ही है। इस प्रकार का चयन पूर्वग्रही बना देता है। पूर्वग्रही विचार के कारण एक ही घटना को इतिहासकार अलग-अलग ढंग से प्रस्तुत करते हैं। गियासुद्दीन तुगलक की मृत्यु आकस्मिक घटना के कारण हुई थी। डॉ. ईश्वरीप्रसाद के अनुसार सुल्तान गियासुद्दीन तुगलक की मृत्यु राजकुमार उलुग खाँ के सुनियोजित षड्यंत्र का परिणाम थी। डॉ. मेंहदी हसन ने उलुग खाँ को निर्दोष सिद्ध करते हुए कहा है कि अचानक बिजली गिरने के कारण गियासुद्दीन तुगलक की मृत्यु हुई थी। दोनों इतिहासकारों के विचारों में मतभेद का कारण उनके पूर्वग्रही विचार हैं। पूर्वग्रही विचार के कारण दोनों इतिहासकारों ने अपने तर्क के समर्थन में तथ्यों का चयन किया है। इतिहास में इस प्रकार का चयन ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता के लिए बाधक है।

(10) मैक्स नोरदोईन का मत

मैक्स नोरदोईन का कथन है कि इतिहास में वस्तुनिष्ठ यथार्थता का समावेश उसी प्रकार असंभव है जिस प्रकार मानव ज्ञान के लिए कांट का वस्तु स्वयमेव का सिद्धांत। इतिहासकार तथा पत्रकार का वस्तुनिष्ठ होना कठिन है। गार्डिनर ने तो स्पष्ट लिखा है कि इतिहास का संपूर्ण स्वरूप वस्तुनिष्ठ नहीं हो सकता। इतिहास के कुछ अंश को वस्तुनिष्ठ बनाया जा सकता है, जैसे आर्थिक इतिहास। यदि विवादयुक्त होने के कारण विज्ञान वस्तुनिष्ठ है तो तुलनात्मक अध्ययन के कारण इतिहास विषयनिष्ठ है।

(11) मैंडेलबाम का मत

मैंडेलबाम के अनुसार ऐतिहासिक न्याय मूल्यपरक होता है। अतः इसे वस्तुनिष्ठ स्वीकार करना संभव नहीं है। इतिहासकार सांस्कृतिक तथा व्यक्तिगत दृष्टिकोण से इतिहास की व्याख्या करता है।

सामाजिक मूल्यों का स्वरूप स्थायी तथा स्थिर न होकर प्रत्येक युग में परिवर्तित होते रहते हैं। दास-प्रथा उपनिवेशवाद के किसी युग में सामाजिक उपयोगिता थी, परंतु वर्तमान में उनकी सामाजिक उपयोगिता नहीं है। परिवर्तित सामाजिक मूल्यों का प्रभाव इतिहासकार के दृष्टिकोण पर पड़ता है।

(12) धर्म एवं जातिगत कठिनाई

ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता में धर्म तथा जाति भी कठिनाई उत्पन्न करते हैं। इतिहासकार अपने को धार्मिक तथा जातिगत आग्रहों से मुक्त नहीं कर पाता। मध्ययुगीन भारतीय इतिहास के इतिहासकारों ने धर्म तथा जातिगत भावनाओं से प्रभावित होकर तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। सर यदुनाथ सरकार ने औरंगजेब की धार्मिक नीति तथा मंदिरों को ध्वस्त करने की कटु आलोचना की है, परंतु फारुकी ने औरंगजेब की धार्मिक नीति तथा मंदिरों के गिराने के औचित्य को सिद्ध किया है। इसी प्रकार प्रोटेस्टेंट तथा कैथोलिक, अरब तथा यहूदी इतिहासकारों में तीव्र मतभेद स्पष्ट दिखाई देते हैं।

(13) राजनीतिक दलों का प्रभाव

सभ्य समाज में रहने वाले मनुष्यों का संबंध विभिन्न राजनीतिक दलों से रहता है जैसे- मार्क्सवादी, लिबरल्स, कैथलिक, प्रोटेस्टेंट, पूंजीवादी, प्रजातंत्रवादी, राजतंत्रवादी, साम्यवादी आदि। इतिहासकार भी इन राजनीतिक दलों के सिद्धान्तों से प्रभावित होता है। वह अपनी दृष्टि से ऐतिहासिक घटनाओं की व्याख्या करता है। ऐसे इतिहासकारों से वस्तुनिष्ठता की अपेक्षा करना उचित नहीं प्रतीत होता। वे यथार्थ तथ्य को अपनी दृष्टि से देखते तथा व्याख्या करते हैं। ऐसे इतिहासकारों की रचनाओं में ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता का सर्वत्र अभाव दिखाई देता है।

3.2.5. वस्तुनिष्ठता की आवश्यकता

इतिहास में अतीत की व्याख्या वर्तमान में होती है। अतीत की प्रकृति वर्तमान से भिन्न होती है और ऐतिहासिक घटनाओं के तथ्य समय के साथ बिखर जाते हैं। उन इतिहासपरक बिखरे तथ्यों को इतिहासकार अपने वर्तमान में टटोलता एवं संग्रहीत करता है। ऐसी स्थिति में अतीत का वर्तमान से प्रभावित होना स्वाभाविक है। अतीत में पूर्व वैदिक, वैदिक, उत्तर-वैदिक एवं बौद्ध कालीन धार्मिक अवधारणाएँ परिस्थितियों के अनुरूप भिन्न-भिन्न मिलती हैं और वर्तमान की धार्मिक अवधारणाएँ उनसे भिन्न मिलती हैं। आज का इतिहासकार अतीत की अवधारणाओं को अपने अनुरूप देखता है और उसी के अनुरूप तथ्यों पर दृष्टि डालता है, उन्हें संग्रहीत करता है। अंततः वह अतीत को वर्तमान में लेखबद्ध करता है। ऐतिहासिक काल के अंतराल को वह कहाँ तक सत्य के अनुरूप वस्तुपरक रख पाता है, कहना मुश्किल है। संदेह नहीं कि अतीत की वस्तुपरकता वर्तमान से प्रभावित रही है। इतना ही नहीं वर्तमान में तरह-तरह के वादपरक विचार भी उत्पन्न हो गये हैं। इतिहासकारों का इन विचारों से प्रभावित होना स्वाभाविक है। इतिहासकार राष्ट्रवाद, साम्यवाद, पूँजीवाद व मार्क्सवाद आदि से प्रभावित होने के कारण अपने अलग-अलग विचार रखते हैं, जो उनके लेखन में अवतरित होते हैं, परंतु वस्तुनिष्ठता इतिहासकार को इन विचारों से बचकर निष्पक्ष रहना चाहिए। अन्यथा इतिहास का दूषित होना स्वाभाविक है। इसमें संदेह नहीं कि सही इतिहास के लिए वस्तुनिष्ठता आवश्यक है। बटर फील्ड के शब्दों में 'वस्तुनिष्ठता इतिहास की वाणी है।' इस वाणी के अभाव में इतिहास मूक हो जाएगा और वह यथार्थ से परे हो जाएगा। अतः कैसे भी हो किसी न किसी रूप में वस्तुनिष्ठता इतिहास के लिए आवश्यक है। इस आवश्यकता का अहसास निष्पक्ष इतिहासकार सदैव करता है।

इतिहासकार को चाहिए कि वह तथ्यों का निरूपण, तोड़-मरोड़कर नहीं अपितु उसे यथार्थ रूप में पेश करे। इससे इतिहास की आत्मा जीवित रहेगी। तथ्य ही तो इतिहास की आत्मा है। इतिहासकार की व्याख्या तथ्यपरक होनी चाहिए। इतिहास में व्याख्या की अपेक्षा तथ्य प्रधान होते हैं। तथ्य परक इतिहास वस्तुपरक माना जाता है। कभी-कभी तथ्यों के होते हुए भी इतिहास को विकृत कर दिया जाता है और इतिहासकार जानबूझ कर तथ्यों की अवहेलना कर देता है। वास्तव में तथ्यों का निष्पक्ष प्रयोग होना चाहिए। ऐसी स्थिति में ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की रक्षा की जा सकती है।

बटरफील्ड का विचार है कि इतिहास में वस्तुनिष्ठता के समावेश के पूर्व सामान्य इतिहास और खोजपूर्ण इतिहास के अंतर को समझना चाहिए। सामान्य इतिहास संक्षिप्त एवं वस्तुनिष्ठ हो सकता है, पर खोजपूर्ण इतिहास में वस्तुनिष्ठता का अभाव हो सकता है, क्योंकि इसमें इतिहासकार मनोनुकूल तथ्यों का चुनाव कर अपनी रूचि के अनुरूप उनकी व्याख्या करता है। इसका समर्थन मंडेलवाम ने भी किया है। उसका कथन है कि इतिहास में चयन, वैयक्तिकता, संपूर्णता और निहित अर्थों का समावेश इतिहासकार द्वारा किया जाता है। वास्तव में इतिहास के प्रस्तुतिकरण में वस्तुनिष्ठता इतिहासकार पर निर्भर करता है। इसमें संदेह नहीं कि इतिहास व्यक्ति प्रधान नहीं तथ्य प्रधान होना चाहिए। तथ्य को प्रधानता देकर ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की रक्षा की जा सकती है। क्लार्क व एक्टन ने भी तथ्य की महानता को स्वीकार किया है। एक्टन साफ लिखता है कि तथ्य स्वमेव वस्तुनिष्ठ होते हैं। ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता के लिए तथ्यों का सही निरूपण जरूरी है।

यद्यपि वस्तुनिष्ठता का प्रश्न बहुत ही जटिल है। इतिहास लेखन में इतिहासकार के लिए विषय चयन, साक्ष्य संग्रह और उनकी व्याख्या जरूरी है। इन सबमें उसका व्यक्तित्व भी साथ रहता है। अब उसके लेखन को वस्तुनिष्ठ कहा जाएगा या व्यक्तिनिष्ठ ? अतः उस इतिहासकार के लेखन को वस्तुनिष्ठता और व्यक्तिनिष्ठता के मध्य ही रखा जा सकता है। इतिहासकार का कर्तव्य है कि वस्तुनिष्ठता का आदर करते हुए ऐतिहासिक तथ्यों का आदर करें। अपने विषय चयन में वस्तुनिष्ठता की उपेक्षा न करें। अपनी व्याख्या में वस्तुनिष्ठता का ध्यान रखें। वास्तव में इतिहासकार अपनी अवधारणा से इतिहास को वस्तुनिष्ठ बना सकता है।

3.2.6. पूर्वग्रह से अभिप्राय

भूमिका

इतिहासकार साक्ष्यों के आधार पर इतिहास को वैज्ञानिक रूप देता है। इस वैज्ञानिकता को बनाये रखने के लिए इतिहासकार के कुछ दायित्व हैं। उसका दायित्व है कि वह व्यक्तिगत भावनाओं से इतिहास को अतिरंजित न करे। सही इतिहास लिखने के लिए इतिहासकार को पूर्वग्रहों से परे रहना चाहिए। पूर्वग्रह इतिहास को विकृत करते हैं। इतिहासकार को पूर्वग्रहों से परे न्यायिक होना चाहिए। निष्पक्ष एवं न्याय पूर्ण इतिहास ही सत्य से परिपूर्ण, वैज्ञानिक इतिहास हो सकता है।

इतिहास में पूर्वग्रह एक समस्या है। बटरफील्ड जैसे लोगों की सोच है कि इतिहास में निष्पक्षता संभव नहीं और निष्पक्षता का दावा एक भ्रांति है। पूर्वग्रह तो इतिहास लेखन के विषय चयन से ही शुरू हो जाता है और उसके लेखन एवं निष्कर्ष तक चलता रहता है। यह लेखन तथ्यों पर चलता है, जिसका चयन इतिहासकार ही करता है। इन तथ्यों के चयन के संबंध में ई एच. कार कहते हैं कि ऐतिहासिक तथ्य मछली बेचने वाले की शिला पट्टी पर विभिन्न मछलियों की अंकित सूची की तरह होते हैं। इतिहासकार मछली रूपी ऐतिहासिक तथ्य अपनी रूचि के अनुसार खरीदता है उसे घर लाकर अपने इच्छानुसार

व्याख्या के मसाले में पकाकर रसास्वाद लेता है। यहाँ इच्छानुसार व्याख्या इतिहासकार की व्यक्तिगत रूचि की ओर संकेत करता है, जिससे उसके लेखन में पूर्वग्रह आरोपित होती है। इच्छारूपी व्याख्या का पूर्वग्रह इतिहासकार गिबन में भी देखा जा सकता है। सी. पी. स्काट कहते हैं कि इतिहास में तथ्य प्रधान नहीं होता, बल्कि व्याख्या प्रधान होती है। यहाँ ई. एच. कार का मत है कि 'तथ्य रूपी गुठली से अधिक महत्वपूर्ण व्याख्या होती है।' जार्ज क्लार्क ने भी इसे स्वीकार किया है। इतिहास के तथ्य स्वयं नहीं बोलते इतिहासकार की कलम उनका मुख खोलती है। कार कहते हैं कि 'तथ्य स्वयं नहीं बोलते हैं, बल्कि इतिहासकार उन्हें बुलवाता है।' इस प्रकार इतिहासकार के लेखन में उसकी इच्छा की अपनी भूमिका है। यही भूमिका इतिहास को पूर्वग्रह की ओर उन्मुख करती है।

मध्यम मार्ग का अनुसरण

इतिहास में एक ही विषय पर अलग-अलग इतिहासकार अपने-अपने ढंग से लिखते हैं। ब्रिटिश और अमेरिकन इतिहासकारों में समानता होते हुए भी भिन्नता है। हम देखते हैं कि अमेरिका के स्वतंत्रता-संग्राम से संबंधित तथ्यों के संकलन में दोनों देशों के इतिहासकारों ने अपनेअपने दृष्टिकोणों को प्रधानता दी है। फलतः उनके निष्कर्षों में अंतर स्वाभाविक है। अमेरिका ब्रिटेन का उपनिवेश था। अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम के समय ब्रिटेन को एक शत्रु माना जाता था। ऐसी मतभिन्नता विश्व ही नहीं भारतीय इतिहास में भी अनेक स्थानों पर मिलती है। इसी प्रकार कुछ ऐतिहासिक घटनाएँ इतिहासकरों को पूर्वग्रह पूर्ण दृष्टिकोण अपनाने के लिए विवश करती है। हम देखते हैं कि रोमन साम्राज्य का पतन, पुनर्जागरण काल का प्रारंभ, धर्मसुधार आंदोलन और औद्योगिक क्रांति के संबंधमें इतिहासकारों के भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण हैं। उनमें मतैक्य का अभाव है।

हिस्टोरिकल ऐसोसिएशन (1941) में अपना भाषण देते हुए किट्सन क्लार्क ने कहा था वे सदैव पूर्वग्रह तथा निष्पक्षता के मध्य मध्यम मार्ग का अनुसरण करते हैं। उनका प्रयास विवादग्रस्त विषयों से अपने को दूर रखना है। यह सुझाव इतिहास के विवादग्रस्त विषयों के लिए सर्वथा उपयोगी हो सकता है। विवादों पर मध्यम मार्ग का अनुसरण करते हुए भी इतिहासकार का प्रयास निष्पक्षता के लिए होना चाहिए। यदि विषय को तथ्य परक एवं संक्षिप्त रखाजाए तो निष्पक्षता का निर्वाह बहुत कुछ किया जा सकता है, पर जब विषय को व्याख्या दर व्याख्या से अधिक बढ़ाया जाता है तो विवाद का उठना स्वाभाविक है। ऐसी स्थिति में इतिहासकार मध्यम-मार्ग को छोड़ एक ओर झुक जाता है।

उल्लेखनीय है कि जब इतिहास लेखन में साक्ष्यों को प्रधानता न देकर उनकी व्याख्या पर अधिक जोर दिया जाता है तब इतिहासकार की दृष्टि पक्षपातपूर्ण हो जाती है। इसलिए इतिहास लेखन में विषयगत तथ्यों को उनके स्थान पर रखना चाहिए और उन्हीं पर अधिक जोर देना चाहिए, उनकी व्याख्या में अधिक न उलझना चाहिए। इससे विवादों का समन होगा और इतिहासगत पक्षपात से बचा जा सकेगा। इतिहासकार ऐतिहासिक तथ्यों के समायोजन में मध्यम मार्ग का अनुसरण कर सकता है।

3.2.7. पूर्वग्रह के कारण

(1) सामाजिक वातावरण का प्रभाव

प्रत्येक इतिहास अपने समाज की उपज होता है। सामाजिक वातावरण का प्रभाव उसके मस्तिष्क पर पड़ता है। उसी के अनुरूप वह सोचता तथा कार्य करता है। जी. पी. गूच का कथन यथार्थ प्रतीत होता है कि रक्त-मांस-युक्त लेखक का व्यक्तित्व मुद्रित पृष्ठों में अभिव्यक्त होता है। इतिहासकार का व्यक्तित्व सामाजिक वातावरण के अनुकूल होता है। निष्पक्षता का प्रयास करने पर भी वह अपने को निष्पक्ष नहीं बना पाता है। हेनरी पीरेन ने भी इस तथ्य को स्वीकार करते हुए कहा है कि इतिहासकार का विषय स्वयं

समाज होता है। वह इतिहास की रचना अपने समाज के लिए करता है। अतः इतिहासकार से निष्पक्षता की आशा करना एक महान भूल है।

(2) धर्म इतिहासकार की निष्पक्षता में बाधक

धर्म इतिहासकार की निष्पक्षता में बाधक होता है। हिंदू-मुस्लिम इतिहासकार, अरब-यहूदी इतिहासकार के लिए मतैक्य होना कठिन है, क्योंकि धार्मिक दृष्टिकोण से वे एक दूसरे को शत्रु मानते हैं। अरब तथा यहूदी इतिहासकार किसी भी अप्रिय घटना के लिए एक-दूसरे पर दोषारोपण करते हैं। इसका प्रमुख कारण उनमें द्वेषभाव है। इसी प्रकार मध्ययुगीन मुस्लिम इतिहासकारों ने हिंदुओं पर मुस्लिम शासकों के अत्याचारों के औचित्य को सिद्ध किया है।

(3) इतिहास लेखन पूर्वग्रही विचारों का परिणाम

प्रो. ओकशाट के अनुसार-इतिहास लेखन इतिहासकार के पूर्वग्रही विचार का परिणाम होता है। प्रो. वाल्श ने स्पष्ट कहा है कि ऐतिहासिक तथ्यों का स्वरूप चयनात्मक होता है। इस प्रकार के चयन में इतिहासकार की व्यक्तिगत अभिरुचि निर्णायक होती है। पूर्वग्रही विचारों के कारण एक ही घटना को इतिहासकार विभिन्न ढंग से प्रस्तुत करता है। औरंगजेब द्वारा हिंदू मंदिरों को ध्वस्त करने की निंदा सर यदुनाथ सरकार ने की है। फारुकी ने औरंगजेब की नीति का समर्थन किया है। इसी प्रकार कैथोलिक तथा प्रोटेस्टेंट इतिहासकारों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से ऐतिहासिक घटनाओं की व्याख्या की है।

(4) पक्षपात की उपादेयता

हाल्फेन ने पक्षपात की उपादेयता को सिद्ध किया है। जी. एम. ट्रेवेलियन ने भी इस तथ्य को स्वीकार करते हुए कहा है कि इतिहास में द्वेषपूर्ण भावना होना अवश्यम्भावी है। इतिहासकार अतीत के जिन महापुरूषों के कार्यों एवं उपलब्धियों का वर्णन करता है, उनके प्रति सहानुभूति स्वाभाविक है। बेवर ने भी कहा है कि निष्पक्षता एक दोष है, क्योंकि इतिहास में इस उद्देश्य की प्राप्ति अत्यंत जटिल है।

(5) विभिन्न दृष्टिकोण

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। इतिहाकार का संबंध विभिन्न राजनैतिक विचारधाराओं से रहता है-जैसे-मार्क्सवादी, लिबरल, कैथोलिक, प्रोटेस्टेंट, पूँजीवादी, साम्यवादी, प्रजातंत्रवादी, राजतंत्रवादी इत्यादि। इन राजनैतिक विचारधाराओं से प्रभावित होकर इतिहासकार घटनाओं की व्याख्या करता है। वे इतिहास के यथार्थ तथ्यों को अपने दृष्टिकोण से देखते हैं। गिबन ने रोमन साम्राज्य के पतन के कारणों की व्याख्या में नैतिक पतन को प्रधान माना है। कार्ल मार्क्स ने रोमन साम्राज्य के पतन का प्रमुख कारण आर्थिक माना है। विभिन्न दृष्टिकोणों के कारण इतिहास में निष्पक्षता का समावेश संभव नहीं है।

द्वेष, प्रेम, पूर्वग्रह, पसंद, नापसंद मानवीय स्वभाव का अभिन्न अंग होता है। कोई भी मनुष्य इससे अपने को मुक्त नहीं कर सकता है। इतिहासकार की रचनाओं में इसकी अभिव्यक्ति निर्बाधरूप से होती है। रांके ने उचित ही कहा है कि लेखक के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति मुद्रित पृष्ठों में होना स्वाभाविक है। इतिहास की रचनाएँ द्वेष तथा पक्षपातरहित नहीं हो सकती हैं।

(6) समसामयिक सामाजिक आवश्यकता

जी. आर. एल्टन के अनुसार मात्र घटना नहीं, अपितु इतिहासकार जिसे लिखते हैं, उसी को इतिहास कहते हैं। प्रो. वाल्श ने स्पष्ट कहा है कि वर्तमान से प्रभावित होकर इतिहासकार अगाध अतीत के अंतराल में निहित तथ्यों की गवेषणा करता है। वर्तमान में वाल्श का अभिप्राय समसामयिक सामाजिक आवश्यकता है। मैंडेलबाम ने भी समसामयिक सामाजिक संदर्भ में इतिहास की व्याख्या को स्वीकार किया है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इतिहासकार अपने इच्छानुसार तथ्यों का संकलन एवं

उसकी व्याख्या करता है। ई. एच. कार ने लिखा है कि तथ्य स्वयं नहीं बोलते हैं, बल्कि इतिहासकार उसे बुलवाता है। इसका यह अभिप्राय है कि इतिहासकार अपनी इच्छा को प्रधानता देता है। व्यक्तिगत इच्छा को प्रधानता देने का तात्पर्य पूर्वग्रह पूर्ण दृष्टिकोण को अपनाना है। ऐसी परिस्थिति में इतिहास-लेखन में पूर्वग्रह तथा द्वेष का होना अपरिहार्य है। धर्म-सुधार आंदोलन का विवरण रोमन कैथोलिक तथा प्रोटेस्टेंट इतिहासकारों ने पूर्वग्रहपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया है। इतिहासकार अपने सामाजिक वातावरण का गुलाम होता है। अतः तथ्यों की व्याख्या द्वेषरहित होना संभव नहीं है।

(7) इतिहासकारों में मतैक्य

कुछ ऐतिहासिक घटनाएँ इतिहासकारों को पूर्वग्रहपूर्ण दृष्टिकोण अपनाने के लिए विवश करती हैं। अधिकांश फ्रेंच इतिहासकार 1789 की फ्रांसीसी राज्य-क्रांति से आधुनिक युग का प्रारम्भ मानते हैं। इसी प्रकार रोमन साम्राज्य का पतन, पुनर्जागरण काल का प्रारंभ, धर्मसुधार आंदोलन तथा औद्योगिक क्रांति के संबंध में इतिहासकारों के विभिन्न दृष्टिकोण हैं। इन ऐतिहासिक घटनाओं के कारण इतिहासकारों के बीच मतैक्य का अभाव दिखाई देता है। इनसे पूर्वग्रहपूर्ण दृष्टिकोण को प्रोत्साहन मिलता है।

अंत में द्वेष तथा निष्पक्षता के विषय में कहा जा सकता है कि इतिहास-लेखन निष्पक्षता का प्रतिरोपण एक कठिन समस्या है। रक्त-माँस-युक्त इतिहासकार चाहते हुए भी अपने को निष्पक्ष नहीं बना सकता है। बटरफील्ड का कथन यथार्थ प्रतीत होता है कि ''यह सत्य है कि इतिहास में निष्पक्षता असंभव है और इसकी प्राप्ति का दावा करना तो महानतम भ्रांति है।'' जी. आर. एल्टन का अभिमत है कि ऐतिहासिक तथ्य उस समय स्पष्ट प्रकाश देते हैं जब उन्हें व्याख्यारूपी माचिस की काँड़ी से प्रज्ज्वलित किया जाता है। व्याख्या के दृष्टिकोण होते हैं। प्रो. वाल्श ने भी यह तथ्य स्वीकार किया है अतीत की व्याख्या विशेष दृष्टिकोण से की जानी चाहिए। ऐसी परिस्थिति में इतिहास-लेखन में द्वेषरहित अथवा निष्पक्षता का दावा करना सचमुच एक महान भूल है, क्योंकि इतिहास रचना में सर्वत्र इतिहास का व्यक्तित्व परलिक्षित होता है।

3.2.8. इतिहास में निष्पक्षता की उपेक्षा

इतिहास में निष्पक्षता की अपेक्षा

अतीत की घटनाओं का निष्पक्ष निर्णय देनेवाला व्यक्ति इतिहासकार होता है। यदि उसका निर्णय पूर्वग्रहपूर्ण अथवा द्वेषपूर्ण होता है तो ऐसे इतिहासकारों की सार्वभौमिक निंदा होनी चाहिए। इतिहासकार में द्वेष तथा पक्षपात की भावना उस समय आती है जब वह भ्रमवश अपने को न्यायधीश समझ लेता है। इस प्रकार वह पन्द्रहवीं सदी के सर्वाधिकारसंपन्न पोप तथा निरंकुश शासकों की भाँति अतीतकालिक घटनाओं से संबंधित व्यक्तियों के विषय में निर्णय देने लगता है। वह पोप की तरह किसी को क्षमा प्रदान करता है तथा कुछ लोगों को दंड देता है। इतिहास का कार्य न्याय देना नहीं है। बटरफील्ड ने स्पष्ट लिखा है कि इतिहासकार न्यायाधीश नहीं, अपितु ईश्वर के सेवकों का सेवक है। प्रत्येक इतिहासकार समाज का सेवक होता है। उसका पुनीत कर्त्तव्य अतीतकालिक घटनाओं का तथ्यों पर आधारित उचित मूल्यांकन करना है, न्याय देना नहीं। लार्ड एक्टन ने स्पष्ट लिखा है कि मूल्यांकन में पूर्वग्रह के लिए स्थान नहीं होता है। यथार्थ तथ्यों को संकलित करना चाहिए, उसके अर्थ स्वयमेव स्पष्ट होते हैं।

इतिहास को व्याख्याप्रधान बनाने का अभिप्राय तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत करना है। तथ्यों को स्वयं बोलने का अवसर देना चाहिए, उसे व्याख्या में गलत बोलने के लिए विवश नहीं करना चाहिए। सर पी. सी. स्कॉट ने लिखा है कि इतिहास में तथ्य कुछ नहीं होते, बल्कि व्याख्या ही सब-कुछ होती है।

जी. आर. एल्टन का अभिमत यथोचित नहीं प्रतीत होता है कि ऐतिहासिक तथ्यों में स्वयं प्रकाश नहीं होता, जब तक इतिहासकार उन्हें माचिस की व्याख्या रूपी काँड़ी से प्रज्ज्वलित कर प्रकाशित नहीं करता है। यथार्थता तो यह है कि सूर्य की भाँति तथ्य स्वयं प्रकाशयुक्त होते हैं। उन्हें व्याख्या के कृत्रिम प्रकाश की आवश्यकता नहीं है। क्या जुगुनू के प्रकाश से तथ्य रूपी कमल खिल सकता है ? इतिहास-लेखन में ऐतिहासिक तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत करने की न तो कोई आवश्यकता है और न औचित्य ही।

इतिहास-लेखन में व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति उचित नहीं है, क्योंकि इतिहास काल्पनिक उपन्यास नहीं, अपितु तथ्य तथा साक्ष्यों पर आधारित रचना है। इतिहासकार का प्रत्येक वाक्य साक्ष्य पर आधारित होता है। जी. पी. गूच का कथन है कि इतिहास के मुद्रित पृष्ठों में इतिहासकार के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति होती है। रेनियर ने स्पष्ट लिखा है कि इतिहासकार को अपने व्यक्तित्व तथा वरीयता को कथावस्तु से बाहर रखना चाहिए। बटरफील्ड का अभिमत है कि निष्पक्षता तथा निर्वैयक्तिकता इतिहास की स्वयं पुकार है। इतिहासकार का पुनीत कर्तव्य इतिहास-लेखन में बौद्धिक निष्ठा को प्रधानता देना है।

3.2.9. सारांश

3.2.9.1. वस्तुनिष्ठता

ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता एक जटिल समस्या है, परंतु इतिहासकारों ने इसका समाधान भी प्रस्तुत किया है। वैज्ञानिक वस्तुनिष्ठता की भाँति ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की कल्पना भी एक भूल है। इतिहास में हम मानव-मस्तिष्क तथा उससे उत्प्रेरित कार्यों का अध्ययन करते हैं। मनुष्य स्वयं अध्ययन का एक जटिल विषय है। वॉल्श का अभिमत है कि इतिहास में दो प्रधान तत्व होते हैं - इतिहासकार द्वारा प्रदत्त विषयनिष्ठ तत्व तथा साक्ष्य। इतिहासकार साक्ष्यों को प्रधानता देकर इतिहास को वस्तुनिष्ठ बना सकता है, क्योंकि इतिहासकार का प्रत्येक वाक्य साक्ष्यों पर आधारित रहता है।

मैंडलबाम ने ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की उपादेयता को स्वीकार किया है। ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता इतिहासकार की योग्यता में निहित है। वह किसी प्रकार घटना के अभिनेता तथा ऐतिहासिक घटना के संबंध को प्रस्तुत करता है। इतिहासकार की योग्यता का विकास सिद्धांत द्वारा नहीं अपितु अभ्यास द्वारा संभव है। वाल्श ने ठीक ही कहा है कि वस्तुनिष्ठ ऐतिहासिक अंतश्चेतना इतिहास में एक बुद्धिवादी विचारधारा का ढाँचा प्रदान करेगी, जिसे पवित्र आकांक्षाओं के रूप में सजीव रहना चाहिए। अतः यह स्पष्ट है कि ऐतिहासिक अंतःचेतना से ही बुद्धिवादी विचारधारा का विकास होता है जो ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता में सहायक सिद्ध होती है।

रेनियर के अनुसार इतिहास-लेखन की आचारसंहिता इतिहास में निहित रहती है, इतिहासकार में नहीं। कोई भी व्यक्ति इतिहास-लेखन को व्यवसाय अथवा मनोविनोद के रूप में चयन करने के लिए बाध्य नहीं है। जो इसका चयन करते हैं उन्हें नियमों तथा अनुशासन को भी स्वीकार करना चाहिए। बौद्धिक निष्ठा के अभाव में इतिहास अपने वास्तविक स्वरूप को खोकर उपन्यास अथवा काल्पनिक रचना बन जाता है। इतिहास की कोई अपनी अभ्रांत कसौटी नहीं है, वह अपने सेवकों के हाथों, मस्तिष्क एवं चेतना में सजीव रहती है। इतिहास-लेखन की नैतिकता विधायुक्त है। इतिहासकार शिक्षा के माध्यमिक स्तर से विश्वविद्यालयीय स्तर तक विषय के नियमों एवं अनुशासन का अध्ययन करता है। इतिहास के नियम तथा अनुशासन इतिहासकार को ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता के लिए सदैव प्रेरित करते रहे हैं।

सर चार्ल्स ओमन के अनुसार यह सत्य है कि इतिहास-रचना लेखक के व्यक्तित्व को प्रतिबिम्बित करती है। इतिहासकार अपनी रचना को निर्वैयक्तिक बनाने का प्रयास करते हुए भी कुछ कठोर तथ्यों को अस्वीकार नहीं कर सकता। इतिहास में तथ्य को प्रधानता देकर ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता सुरक्षित रखी जा सकती है। वर्तमानकाल इतिहासकारों से वस्तुनिष्ठ रचना की अपेक्षा करता है।

3.2.9.2. पूर्वग्रह

प्रायः इतिहासकार अपनी दृष्टि से अतीत का अवलोकन करते हैं, जो अतीत-ज्ञान की दृष्टि से उचित नहीं। किटसन क्लार्क ने इस अवधारणा को इतिहास का हानिकारक तत्व कहा है। चार्ल्स ओमन ने इसे विषाक्त इतिहास की संज्ञा दी है। ऐसा ही विषाक्त इतिहास पी. एन. ओक ने लिखा, जो सर्वमान्य नहीं हो सका। इतिहासकार को ऐतिहासिक तथ्यों से छेड़छाड़ नहीं करनी चाहिए। तथ्यों को स्वयं बोलने का अवसर देना चाहिए। इन तथ्यों की विकृत व्याख्या से उन्हें गलत बोलने को विवश नहीं करना चाहिए। देखा जाए तो ऐतिहासिक तथ्य स्वयं प्रकाश युक्त होते हैं। इन तथ्यों को व्याख्या के कृत्रिम प्रकाश की जरूरत नहीं होती। इतिहासकार को इन तथ्यों को तोड़ने-मरोड़ने का हक नहीं।

इतिहास को स्वतः बोलना चाहिए। इतिहास लेखन में व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति उचित नहीं। रेनियर ने स्पष्टतः लिखा है कि इतिहासकार को अपने व्यक्तित्व तथा वरीयता को इतिहास के कथावस्तु से बाहर रखना चाहिए। इतिहासकार का पुनीत कर्तव्य है कि वह अपने लेखन में बौद्धिक निष्ठा को प्रधानता दे। नेमियर ने कहा है कि व्यक्तित्व तथा व्यक्तिगत दृष्टिकोण मौसम की भाँति जीवन की यथार्थता है, उसे इतिहास लेखन से अलग करना संभव नहीं, परंतु जब इतिहासकार मात्र विद्वता व पाण्डित्य का सहारा लेगा तो ये सभी तत्व घने बादल की तरह स्वयंमेव लुप्त हो जायेंगे। नेमियर के कथन में काफी कुछ यथार्थता है। किट्सन क्लार्क ने स्पष्ट किया है कि इतिहास अध्ययन के साथ छात्रों में आलोचनात्मक शक्ति को विकसित करना चाहिए। ऐतिहासिक गवेषणा की आधुनिक विधाओं के प्रतिपादन में विद्वानों ने अनेक ऐसी विधाओं को प्रस्तुत किया है जिसके समुचित प्रयोग के द्वारा इतिहास-लेखन में व्यक्तिगत दृष्टिकोण अथवा पूर्वग्रह को समाप्त किया जा सकता है। इतिहासकारों को पूर्वग्रहों से बचाने के लिए यह आवश्यक है कि उनके द्वारा पूर्वग्रह से इतिहास रचने पर उनकी सार्वभौमिक निंदा होनी चाहिए।

वास्तव में अतीत की घटनाओं का प्रस्तुतिकरण यथातथ्य होना चाहिए। यह इतिहास लेखन का आवश्यक गुण है। वर्तमान के परिवेश में ऐतिहासिक घटनाओं को अनावश्यक अतिरंजित करना या उसकी उपेक्षा करना इतिहास-लेखन का दोष है। इस दोष से इतिहासकार को बचना चाहिए। इतिहास-लेखन का अपना अनुशासन, अपना नियम एवं अपना सिद्धांत है। इत्हिासकार को इनका सम्मान करना चाहिए। उसे इतिहास-लेखन की आचार संहिता का सम्मान करना चाहिए। इतिहास लेखन में निष्पक्षता को अपनाना इतिहास तथा मानव समाज की परम सेवा है। ऐतिहासिक तथ्य स्वतः वस्तुनिष्ठ होते हैं। इतिहासकार को वस्तुनिष्ठता का सम्मान करना चाहिए।

3.2.10. बोध प्रश्न

3.2.10.1. लघुउत्तरीय प्रश्न

1. ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता के संबंध में डार्डेल का क्या मत है?
2. ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता के संबंध में कार्ल बेकर का क्या मत है?

3. ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता के संबंध में बियार्ड का क्या मत है?
4. ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता के संबंध में रॉबिन्सन का क्या मत है ?
5. ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता के संबंध में शिलर का क्या मत है?
6. वस्तुनिष्ठता से आप क्या समझते हैं?
7. पूर्वग्रह से आप क्या समझते हैं ?
8. धर्म इतिहासकार की निष्पक्षता में बाधक होता है समझाइए ?

3.2.10.2. दीर्घउत्तरीय प्रश्न

1. इतिहास में पूर्वग्रह के कारणों की विवेचना कीजिए ?
2. दृष्टिकोणों के कारण इतिहास में निष्पक्षता का समावेश संभव नहीं है समझाइए ?
3. इतिहास में पूर्वग्रह की विस्तृत विवेचना कीजिए ?
4. ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता से आप क्या समझते हैं ? ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की समस्याएँ बताइए?
5. ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता को परिभाषित करते हुए इतिहास में ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की आवश्यकता का वर्णन कीजिए ?

3.2.11. संदर्भ ग्रंथ सूची

2. शेख अली बी. : हिस्ट्री : इट्स थिओरी एंड मेथठ, ट्रिनिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1978
3. शर्मा तेजराम : हिस्टोरिओग्राफी ए हिस्ट्री ऑफ हिस्टोरिकल राइर्टिंग, नई दिल्ली, 2005
4. कुप्पुरम जी. एवं कुमुदमनी के : मेथड्स ऑफ हिस्टोरिकल रिसर्च, नई दिल्ली, 2002
5. मनिक्कम वी. : ऑन हिस्ट्री एंड हिस्टोरिओग्राफी, मदुरई, 2003
6. श्रीवास्तव बी. के. : इतिहास लेखन : अवधारणा, विधायें एवं साधन, आगरा, 2008
7. श्रीधरन ई. : इतिहास-लेख, ओरियंर ब्लैकस्वॉन नई दिल्ली, 2011
8. कोठेकर शांता: इतिहास तंत्र एवं विज्ञान् नागपुर, 2015
9. पांडे जी. सी. (संपादित) : इतिहास स्वरूप एवं सिद्धांत, जयपुर, 1973
10. राधेशरण : इतिहास और इतिहास लेखन, भोपाल, 2010
11. चौबे झारखंड : इतिहास दर्शन, वाराणसी, 2001
12. सिंह परमानंद: इतिहास दर्शन, दिल्ली, 1992
13. कार ई. एच. : इतिहास क्या है, दिल्ली,
14. दुबे जे. एन. : इतिहास विज्ञान, वाराणसी, 1988

खंड - 3 इतिहास लेखन के विभिन्न सिद्धांत

इकाई-3 प्रत्यक्षवाद

इकाई की रूपरेखा

3.3.1. उद्देश्य
3.3.2. प्रस्तावना
3.3.3. प्रत्यक्षवाद का उद्भव एवं विकास
3.3.4. प्रत्यक्षवाद तथा इतिहास
3.3.5. ऑगस्ट कॉम्त का प्रत्यक्षवाद
3.3.6. रांके का प्रत्यक्षवाद
3.3.7. प्रत्यक्षवाद का मूल्यांकन
3.3.8. सारांश
3.3.9. बोध प्रश्न
3.3.9.1. लघुउत्तरीय प्रश्न
3.3.9.2. दीर्घउत्तरीय प्रश्न
3.3.10. संदर्भ ग्रंथ सूची

3.3.1. उद्देश्य

15वीं सदी में हुए पुर्नजागरण एवं वैज्ञानिक क्रांति का एकमात्र उद्देश्य प्रकृति समाज तथा अध्यात्म के उन रहस्यों का पर्दाफाश करना था जिसके परिणाम स्वरूप भ्रांतिवादी दृष्टिकोण का समाज में उद्भव हुआ। प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य प्रत्यक्षवाद, प्रत्यक्षवाद पर विभिन्न मत-मतांतर एवं एतिहासिक प्रत्यक्षवाद की विशेषताओं पर प्रकाश डालना है। साथ ही समसामयिक वाद एवं परिकल्पना से भी विद्यार्थियों को परिचित कराना इस इकाई का उद्देश्य है।

3.3.2. प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में प्रत्यक्षवाद से अभिप्राय, उद्भव एवं विकास, प्रत्यक्षवाद पर विद्वानों के मत-मतांतर इत्यादि पर प्रकाश डाला जायेगा। इसके पश्चात् इतिहास में प्रत्यक्षवाद एवं प्रत्यक्षवाद की विशेषताओं की समालोचनात्मक व्याख्या प्रस्तावित है। इस इकाई में साक्ष्य समसामयिकवाद एवं परिकल्पना पर भी प्रकाश डाला जायेगा। इकाई के अंत में बोध प्रश्नों एवं संदर्भ ग्रंथ सूची को भी रेखांकित किया जाएगा।

3.3.3. प्रत्यक्षवाद का उद्भव एवं विकास

इतिहास में वैज्ञानिक विधि का प्रयोग करके हम वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर सकते है 'प्रत्यक्ष' का अर्थ है किसी प्रकार के संशय या विवाद की संभावना से परे। ऐतिहासिक ज्ञान को वैज्ञानिक बनाने का प्रयास सत्रहवीं शताब्दी की वैज्ञानिक क्रांति के फलस्वरूप आरंभ हो गया था। नीबुर और रैंक से संबद्ध अनुसंधान पद्धति की क्रांति के साथ ऐतिहासिक अध्ययन ने अपना "वैज्ञानिक" तथा "प्रत्यक्ष" मार्ग विकसित कर लिया।

वैज्ञानिक आंदोलन का एकमात्र उद्देश्य प्रकृति, समाज तथा अध्यात्म के उन रहस्यों का पर्दाफाश करना था जिसके परिणामस्वरूप भ्रांतिमूलक प्रवृत्तियों का समाज एवं अध्यात्म के क्षेत्र में उद्भव तथा

विकास हुआ। वैज्ञानिकों के सर्वाधिक आलोचनात्मक प्रहार का लक्ष्य दर्शन तथा इतिहास था। दर्शन का स्वरूप भाववादी था जिसके परिणामस्वरूप-आत्मा, परमात्मा तथा जगत के संबंध में अनेक दार्शनिकों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से परिकल्पनात्मक विवरण प्रस्तुत किये हैं जिनका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है। वैज्ञानिक आंदोलन से प्रेरित एवं प्रोत्साहित अनेक दार्शनिकों ने इन भाववादी अवधारणाओं को यथावत स्वीकार करने के पहले ऐसे अनेक वैज्ञानिक प्रश्नों को उठाया जिनकी यथार्थता वैज्ञानिक कसौटी पर सिद्ध की जा सके। क्योंकि उपरोक्त दार्शनिक तथ्य गवेषणात्मक तथा निरीक्षणात्मक नहीं है। अतः उसका प्रत्यक्षीकरण संभव नहीं है।

1930 में वैज्ञानिक आंदोलन से प्रेरित दार्शनिकों ने वियना सर्किल संगोष्ठी के माध्यम से भाववादी दर्शन पर कठोर प्रहार किया। उनकी अवधारणा थी कि यदि वैज्ञानिक विधियों से परिकल्पनात्मक भाववादी दार्शनिक तत्वों का परीक्षण एवं निरीक्षण संभव नहीं है तो तर्क के आधार पर आत्मा, परमात्मा, जगत, स्वर्ग, नरक की यथार्थता का मूल्यांकन किया जाए। वैज्ञानिक विधि के प्रयोग से अस्पष्टता, अनेकार्थकता एवं समिश्रण को दूर किया जा सकता है। इस प्रकार बीसवीं सदी के अनेक विचारकों ने अनवेशण के लिए तार्किक तथा वैज्ञानिक विधियों के प्रयोग की आवश्यकता की उपादेयता को अपरिहार्य माना है।

3.3.4. प्रत्यक्षवाद तथा इतिहास

मनुष्य के अतीतकालीन कार्यों एवं उपलब्धियों की कहानी इतिहास है। वैज्ञानिक उपलब्धियों ने मानव जाति के सामाजिक तथा आर्थिक जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन कर समाज के सामाजिक आर्थिक, धार्मिक एवं अन्य दृष्टिकोणों में अत्यधिक परिवर्तन कर दिया है। भौतिक जीवन की आश्चर्यजनक उपलब्धियों ने उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में अनेक प्रख्यात इतिहासकारों के चिंतन को स्पंदित तथा उद्वेलित करके विचार के लिए विवश कर दिया कि यदि अन्य विधियों का परित्याग करके इतिहास को वैज्ञानिक उपादानों से परिष्कृत किया जाए और उसके अध्ययन में वैज्ञानिक विधियों तथा आदर्शों का क्रियान्वय किया जाए तो निश्चित रूप से इतिहास की उपयोगिता एवं महत्व में वृद्धि होगी। बीसवीं सदी के पूर्वाद्ध में जर्मनी, फ्रांस, इटली के वैज्ञानिक इतिहासकारों के बीच गंभीर विचार विमर्श प्रारम्भ हुआ और यह निश्कर्ष निकला कि इतिहास को वैज्ञानिक उपादानों से परिष्कृत करने का उपयुक्त समय आ गया है। इग्लैंड में सर्वप्रथम प्रो. जे. बी. ब्यूरी ने 1903 में कैंबिज विश्वविद्यालय के सत्रारम्भ के अवसर पर अपने अभिभाषण में कहा था कि - इतिहास विज्ञान है, न कम और न अधिक।

अनेक प्रख्यात इतिहासकारों ने इतिहास-अध्ययन में यथार्थता की प्राप्ति के लिए वैज्ञानिक विधियों के प्रयोग का प्रबल समर्थन किया है। कॉम्ते का प्रत्यक्षवाद पूर्णरूपेण वैज्ञानिक है जिसके अनुसार अतीत की पुनर्प्राप्ति प्रत्यक्षवादी सिद्धांत के समुचित क्रियान्वय द्वारा ही संभव है। कॉम्ते का प्रत्यक्षवाद, ह्यूम, कांट, तुर्गो, कोंदोरसे के प्रभाव का ही परिणाम है। यही नहीं उनके अप्रत्यक्षवादी सिद्धांत को मान्तेस्क्यू, सेंट पीयरे तथा सेंट साइमन के विचारों ने भी सर्वाधिक प्रभावित किया है। एच. एन. बार्न्स ने उचित ही कहा है कि इन महान दार्शनिकों के उत्कृष्ट विचारों के अद्भुत समन्वय की क्षमता कॉम्ते में निराली एवं अद्वितीय थी। विज्ञान का संस्तरण गणितशास्त्र से आरंभ होता है, खगोलशास्त्र, भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र, प्राणिशास्त्र से होता हुआ समाजशास्त्र तक समाप्त हो जाता है। इतिहास समाजशास्त्र की जननी है, कॉम्ते के प्रत्यक्षवाद से प्रभावित होना अपरिहार्य था।

प्रत्यक्षवाद का अभिप्राय एक विधा से है जिसके माध्यम से आंकड़ों का वैज्ञानिक विधि से संकलन अनुभव के आधार पर किया जाए। इसमें धार्मिक विचारों के लिए कोई स्थान नहीं है। जान स्टुअर्ट मिल ने अनुभव को गणित के समकक्ष स्वीकार करने को प्रत्यक्षवाद की संज्ञा दी है।

इतिहास जगत में वैज्ञानिक तथा प्रत्यक्षवादी आन्दोलनों का एकमात्र उद्देश्य अतीत का यथावत यथार्थ प्रस्तुतीकरण है। इसके लिए अनेक इतिहासकारों ने ऐतिहासिक गवेषणा की आधुनिक विधाओं का प्रस्तुतीकरण किया है। इस परम्परा के शिलान्यासकर्ताओं ने बड़े परिश्रम से वैज्ञानिक विधाओं के आधार पर अतीत का अध्ययन कर ऐतिहासिक गवेषणा की आधारशिला तैयार की। वे वैज्ञानिक उपलब्धियों के सुखद परिणाम से अवगत थे। जर्मनी में नेबूर तथा रांके, ब्रिटेन में ब्यूरी तथा ऐक्टन, अमेरिका में बियर्ड तथा कार्ल बेकर और फ्रांस में टेने जैसे प्रख्यात इतिहासकारों ने विद्वता का उच्च आदर्श प्रस्तुत किया। इन विद्वानों ने न केवल ऐतिहासिक गवेषणा की आधुनिक विधाओं का प्रतिपादन किया, बल्कि ऐतिहासिक अध्ययन की वैज्ञानिक प्रणाली संबंधी सुदृढ़ आधारशिला का निर्माण किया। इन लोगों ने ऐतिहासिक स्रोतों को क्रमबद्ध करके त्रुटिपूर्ण स्रोतों की व्याख्या कर उनको विश्वसनीय स्वरूप प्रदान किया। इन विद्वानों का अभिप्राय त्रुटियों को दूर कर ऐतिहासिक ज्ञान द्वारा अतीत का सुंदर प्रासाद प्रस्तुत करना था। यदि ऐतिहासिक गवेषणा की आधुनिक विधाएँ अठारहवीं सदी की देन है तो उन्नीसवीं तथा बीसवीं सदी के विद्वानों ने ऐतिहासिक गवेषणा की विधाओं को परिपक्वता तथा प्रौढ़ता प्रदान की।

3.3.5. ऑगस्ट कॉम्त का प्रत्यक्षवाद

आगस्म कॉम्त एक फ्रांसीसी विचारक थे जिन्होंने प्रत्यक्षवादी दर्शन की शुरूआत की। जिस समय जर्मनी में लिओपोल्ड रांके इतिहास लेखन में वैज्ञानिक पद्धति का महत्व एवं वस्तुनिष्ठता के बारे में विचार कर रहे थे, लगभग उसी अवधि में निकटवर्ती फ्रांस में ऑगस्ट कॉम्त नामक विचारक मानव के बौद्धिक विकास के बारे में महत्वपूर्ण सिद्धांत प्रतिपादित कर रहे थे। उनके विचार 'पॉजिटिविज्म' के रूप में जाने जाते हैं। 'Positive Philosophy of History' यह शब्द सर्वप्रथम कॉम्त ने प्रयोग किया और इतिहास के बारे में प्रत्यक्ष ज्ञान का प्रमेय प्रस्तुत कर रांके के प्रत्यक्षदर्शी इतिहास लेखन पद्धति में उन्होंने नए विचारों को शामिल किया।

वैज्ञानिको द्वारा भौतिक विज्ञान का अध्ययन 18वीं शतब्दी में बड़ी मात्रा में हो रहा था तथा यह विश्वास विज्ञान जगत में प्रचलित था कि वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग कर भौतिक जगत के तब तक के अज्ञान को दूर किया जा सकता है, प्राकृतिक शक्ति के संचलन के रहस्य खोले जा सकते हैं। वैज्ञानिक पद्धति का महत्व विचारकों के मन पर अंकित हो गया था। इसका प्रभाव मानवी व्यवहारों के अध्ययन करने वाले तत्वज्ञान पर भी पड़ रहा था। इनमें से एक कॉम्त थे। कॉम्त पेशे से गणितज्ञ थे, लेकिन प्रसिद्ध फ्रेंच विचारक सेंट सीमा के सचिव के रूप में उन्होंने काम किया। उस काल में वैज्ञानिक ज्ञान से प्रभावित होकर वह मानवी जीवन का विचार करने लगे तथा इससे उसके 'पॉजिविटिज्म का उदय हुआ।

मानवी विकास का गहन अध्ययन वैज्ञानिक पद्धति से करते हुए 1830 से 1854 के दौरान कॉम्त ने दो ग्रंथ प्रकाशित किए। पहला 'The Course of Positivist Philosophy' छः खण्डों में तथा दूसरा 'System of Positivist Politics' यह चार खण्डों में प्रकाशित हुआ। इन ग्रंथों के जरिए उन्होंने अपने प्रत्यक्ष ज्ञान के संबंध में उद्देश्य एवं मूलभूत तत्व दिए। उनकी धारणा है कि मानव के विकास का वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन करने पर उसकी तीन अवस्थाएँ दिखाई देती हैं।

प्रथम अवस्था

मानव की जंगली अवस्था का है तथा उस काल में उसकी बुद्धि का विकास न होने से प्राकृतिक शक्तियों के व्यवहारों, उसके आसपास की भौगोलिक स्थितियों का आकलन करने में वह अक्षम था। इससे वह पारलौकिक शक्तियों पर विश्वास रखता था। कुछ अति मानवी अदृश्य शक्तियाँ भौतिक जगत का संचालन करती हैं यह कॉम्त की धारणा थी।

द्वितीय अवस्था

विकास की दूसरी अवस्था को कॉम्त आध्यात्मिक भूमिका का चरण कहते हैं। इस काल में आसपास के विश्वास को तात्विक भूमिका से समझने का प्रयत्न मानव ने किया। लेकिन इस भूमिका से वह विश्व के संचलन का मर्म नहीं समझ सके।

तृतीय अवस्था

तीसरा चरण मानव के बौद्धिक विकास की परिणत अवस्था है। इस चरण में संपूर्ण विश्व, उसके मूलभूत तत्वों का तात्विक भूमिका से समग्र आकलन करने का प्रयास छोड़ कर, प्रकृति के एक एक घटक का स्वतंत्र रूप से, वैज्ञानिक पद्धति से आकलन करने, उनके बीच आंतरिक परस्पर संबंधों को उद्घाटित कर उन्हें तर्कसंगत ढंग से समझने, उनमें आंतरिक जुड़ाव तथा नियमितता का सूत्र समझने का मानव प्रयास करता है। यह वैज्ञानिक ज्ञान की, अनुभवसिद्ध प्रयोगों द्वारा मूलभूत सत्य का आकलन करने की अवस्था है। इस पद्धति से भौतिक जगत के व्यवहारों के पीछे निश्चित नियम खोजे जा सकते हैं, यह जगत निश्चित नियमों के अनुसार संचालित होता दिखाई देता है, और ऐसे नियमों को खोजा गया कि उनका उपयोग मानवी समाज के विकास के लिए किया जा सकता है - यह कॉम्त के 'पॉजिटिव' अर्थात् वैज्ञानिक पद्धति से चिरंतन सत्य का आकलन करने के तत्वज्ञान की बुनियाद है।

कॉम्त कहते हैं कि वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग कर जिस तरह विश्व के संचलन के पीछे स्थिर नियमों को खोजा जा सकता है, उसी पद्धति का उपयोग कर पूर्वकालीन मानवी जीवन का अध्ययन किया जा सकेगा, और उस संबंध में सामान्य नियम खोजे जा सकेंगे, इसके लिए पूर्वकालीन घटनाओं का वैज्ञानिक पद्धति से विश्लेषण कर एवं उनके बीच आंतरिक संबंधों को खोज कर मानवी जीवन के बारे में सामान्य निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। 'पॉजिटिविज्म' की तात्विक भूमिका है कि, इतिहास के अध्येता को केवल पूर्वकालीन सत्य घटनाओं को खोज निकालने को ही अपना कर्तव्य न मानकर, उन घटनाओं के पीछे आंतरिक सूत्र खोजना चाहिए, उसमें से सामान्य नियम खोजें, मानवी व्यवहारों का नियमन करने वाले मूलभूत सूत्रों की खोज होने पर उस आधार पर भविष्य में मानवी जीवन को दिशा दी जा सकेगी, अर्थात मानवी व्यवहारों के विषय में वैज्ञानिक ज्ञान मानव के विकास के लिए, तथा समाज की प्रगति के लिए उपकारक होगा। कॉम्त की इस विचार प्रणाली का तत्कालीन विश्व पर गहरा प्रभाव पड़ा। मानवी जीवन से संबंधित ज्ञानशाखाओं की अध्ययन पद्धति को इससे नई दिशा मिली। इतिहास और मानवी समाज के वैज्ञानिक अध्ययन की उपयोगिता अधोरेखित हुई।

उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्ध में नीबूर और रांके ने तत्कालीन गूढ़वादी इतिहास लेखन पद्धति ठुकराकर ऐतिहासिक लेखन के लिए मूल स्रोत-साधनों के अध्ययन एवं वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग कर सत्य की खोज करने और वह सत्य वस्तुनिष्ठ रूप से प्रस्तुत करने पर बल दिया। इसी तरह ऐतिहासिक स्रोतों से सत्य खोज निकालने की वैज्ञानिक पद्धतियाँ प्रतिपादित कीं। लेकिन इतिहास का अध्ययन वहीं तक सीमित रखना पॉजीटिविज्म के प्रवर्तक कॉम्त नहीं मानते, जबकि उनका ठोस निश्कर्ष है कि, मानवी व्यवहारों के वैज्ञानिक अध्ययन से हाथ लगे सत्य के आधार पर उस बारे में कुछ सामान्य सिद्धांत खोजे

जा सकेंगे। उसके इस तत्वज्ञान का प्रभाव मनोविज्ञान के अध्ययन पर हुआ। मानवी जीवन के प्रवाह के पीछे मूलभूत सूत्र खोजने का प्रयास अध्येता करने लगे। उनमें कार्ल मार्क्स, अर्नाल्ड टॉयन्बी का समावेश होता है। इसी तरह का वैज्ञानिक स्वरूप का अध्ययन औद्योगिकीकरण, तानाशाही, उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद जैसे विषयों पर होने लगा।

ऑगस्त कॉम्त और उसके अनुयायी जानते थे कि, इतिहास मानविकी शास्त्र होने से उसे सौ फीसदी विज्ञान नहीं कहा जा सकेगा तथा भौतिक विज्ञानों के अध्ययनों की पूर्णतः वैज्ञानिक पद्धति इतिहास अध्ययन में नहीं अपनाई जा सकती। इसलिए वे इतिहास को विज्ञान नहीं कहते। लेकिन उनकी भूमिका है कि, निरीक्षण, चिकित्सक विश्लेषण, सत्य को खोजना ये पद्धतियाँ सभी ज्ञानशाखाओं के इतिहास के भी अध्ययन में उपयोग की जा सकती हैं और उस आधार पर सामान्य निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। ऐसा कह कर वे इतिहास को समाजशास्त्र का दर्जा देते हैं। बीसवीं सदी के के. आर. पॉपर जैसे पॉजिटिविस्ट विचारकों ने पूर्वकालीन घटनाओं के सत्यशोधन एवं उसके लिए वैज्ञानिक पद्धतियों के उपयोग का तत्व स्वीकार किया है। उनकी भूमिका है कि, मानवी जीवन परिवर्तनशील है। इसलिए सभी घटनाएँ समान नहीं होतीं, कल हुई घटना जस के तस आज नहीं घटेगी और इसलिए उनमें से सामान्य सिद्धांत खोजना तथा मुख्य रूप से उस आधार पर भविष्य के बारे में अनुमान लगाना उचित नहीं है। पूर्वकालीन अनेक घटनाओं के अध्ययन से ज्यादातर कुछ सामान्य निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं लेकिन उन्हें चिरकालीन स्वरूप के मानना एवं उस आधार पर भविष्य का विचार करना अवैज्ञानिक और गलत होगा।

बीसवीं सदी के गहन विचारक रॉबिन कोलिंगवूड और एडवर्ड कार ने कॉम्त की पॉजिटिविस्ट भूमिका की त्रुटियाँ उजागर की हैं। कोलिंगवूड ने अपने ग्रंथ 'Idea of History' में राय व्यक्त की है कि भौतिक बातों का अध्ययन करने वाली वैज्ञानिक पद्धतियाँ मानवी जीवन के अध्ययन के लिए उपयोग में लाना उचित नहीं है, हर घटना अनोखी होती है, उसका विवरण भिन्न होता है और इसलिए कुछ घटनाओं के आधार पर सामान्य निष्कर्ष निकालना गलत होगा। एडवर्ड कार ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'What is History' में कहा है कि ऐतिहासिक सत्य चिरंतन स्वरूप का नहीं होता, इसी तरह वह व्यक्ति सापेक्ष होता है, सत्य बहुआयामी होता है ये सभी आयाम प्रत्येक अध्येता को दिखाई देते ही हैं, ऐसा नहीं है और इसलिए सामान्य सिद्धांत निकालना अथवा संपूर्ण सत्य का ज्ञान होने का इतिहासकार द्वारा दावा करना गुमराह करने वाला है। इसी तरह उन्होंने पूर्णतः वस्तुनिष्ठ लेखन असंभव होने की बात भी कही है।

इन सभी आपत्तियों को ध्यान में लें तब भी रांके और कॉम्त के इतिहास के तत्वज्ञान ने इतिहास लेखन के क्षेत्र में क्रांति की, ऐतिहासिक सत्य पर बल दिए जाने से इतिहास को विश्वसनीयता का ठोस आधार मिला, मूल स्रोतों के अध्ययन, संकलन एवं प्रकाशन को प्रेरणा मिली, उसके लिए सहायक शास्त्रों का उपयोग होने लगा तथा उन शास्त्रों के विकास को भी गति मिली और तथ्यों में परस्पर संबंधउद्घाटित करने पर बल दिया जाने से इतिहास लेखन में सुसंगतता एवं अर्थपूर्णता आयी - यह सभी प्रत्यक्षवादी लेखन का इतिहास को मौलिक योगदान है।

3.3.6. रांके का प्रत्यक्षवाद

लियोपोल्ड फॉन रांके 19 वीं सदी के जर्मन इतिहासकार थे। उन्हें आमतौर पर अनुभवात्मक इतिहासलेखन का जनक माना जाता है। रांके ने उन तथ्यों के महत्व पर जोर दिया जो स्रोतों में आधारित प्रमाणों से पुष्ट होते हैं। रांके ने तथ्यों और व्याख्याओं में भेद किया। उनके अनुसार इतिहासकार का काम

पहले तथ्यों को प्रस्तुत करना फिर उनकी व्याख्या करना है। उनके अनुसार इतिहास को ऐसे स्रोतों की तलाश नहीं करना चाहिए जो उसकी परिकल्पना की पुष्टि करें बल्कि उसे स्रोतों में उपलब्ध तथ्यों के आधार पर अपनी परिकल्पना का निर्माण करना चाहिए। इतिहासकारों को अपने स्रोतों को भाषाशास्त्रीय आलोचना की कसौटी पर तौलना चाहिए ताकि सत्य का पता चल सके। रांके ने संदर्भों को देने के महत्व पर भी बल दिया है क्योंकि इससे इतिहासकारों द्वारा प्रस्तुत प्रमाणों की दोहरी जांच का अवसर मिल जाता है।

कोलम्बस आधुनिक इतिहास तथा ऐतिहासिक प्रत्यक्षवाद के जनक थे। उनकी चिंतन शक्ति को विज्ञान की उपलब्धियों तथा अनेक विचारकों तथा दार्शनिकों ने प्रभावित किया था। इस युग में मानव व्यवहार तथा सामाजिक परिवर्तन की अनुभूति ही विचारकों का चिंतन विषय बन गया था। स्रोतों पर आधारित इतिहास अध्ययन के अग्रणी एवं प्रबल समर्थक बार्थोल्ड जार्ज नेबूर ने रांके की वैज्ञानिक विधाओं की पृष्ठभूमि तैयार की थी। नेबूर का अनुकरण करते हुए उन्होंने ग्रन्थालयों में बिखरे अनेक ऐतिहासिक स्रोतों को संपादित किया। उनके अनुसार ऐतिहासिक तथ्यों की प्राप्ति तभी संभव हो सकती है जब ऐतिहासिक स्रोतों को समुचित रूप से संपादित करके शोधकर्त्ता के समक्ष प्रस्तुत किया जाय। यदि भोजनालय में अच्छी सामग्री होगी तो निश्चितरूप से स्वादिष्ट खाद्य पदार्थ तैयार होगा।

बर्लिन विश्वविद्यालय में इतिहास शोध की विधाओं की शिक्षा के लिए रांके ने अनेक संगोष्ठियों का आयोजन किया तथा इतिहास के शोध छात्रों को नवीन तकनीक से अवगत कराने का सराहनीय प्रयास किया। अल्प समय में ही उनके सिद्धांतों का प्रचार फ्रांस तथा ब्रिटेन तक हो गया। रांके ने एक पत्रिका का प्रकाशन आरंभ कर शोध छात्रों को ऐतिहासिक गवेषणा की नवीन विधाओं एवं तकनीक से अवगत कराने का यथाशक्य प्रशंसनीय प्रयास किया। सी. जी. क्रम्प के अनुसार ऐतिहासिक विधा के इतिहास में रांके का यह सर्वप्रथम प्रयास है इसीलिए इस महान इतिहासकार को आधुनिक इतिहास का कोलम्बस तथा प्रत्यक्षवाद का जनक कहा जाता है।

बर्थहोल्ड जार्ज नेबूर तथा रांके ने ऐतिहासिक गवेषणा की सुदृढ़ आधारशिला रख कर भावीपीढ़ी के शोधकर्त्ताओं के लिए वैज्ञानिक विधियों से परिष्कृत विधाओं का प्रतिपादन किया तथा प्रत्यक्षवाद की उपयोगिता को शोध में अपरिहार्य बताया। 1859 में सर्वप्रथम ऐतिहासिक पत्रिका Historiche Zeitischrift का प्रकाशन कुछ प्रख्यात इतिहासकारों ने मिलकर किया। इस पत्रिका में इतिहासकारों ने ऐतिहासिक गवेषणा में वैज्ञानिक विधा संबंधी अनेक लेख लिखे थे। अल्प समय में संपूर्ण पाश्चात्य जगत इस वैज्ञानिक विधा से प्रभावित हो गया। आधुनिक इतिहास अध्ययन एवं लेखन का एकमात्र श्रेय नेबूर तथा रांके को है। मार्विक ने रांके की प्रशंसा में लिखा है कि इतिहास अध्ययन को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करने में सर्वाधिक योगदान रांके का है, आधुनिक ऐतिहासिक गवेषणा विधा के शिलान्यासकर्त्ता को इस योगदान के लिए सर्वोच्च उपाधि से विभूषित करना चाहिए।

3.3.7. प्रत्यक्षवाद का मूल्यांकन

इतिहास-लेख पर प्रत्यक्षवाद का प्रभाव सर्वोत्तम रूप में एक नए प्रकार के इतिहास के विकास में देखा जा सकता है जिसमें विवरणों की प्रस्तुति में अत्यधिक सतर्कता बरती गई। प्रत्यक्षवादियों ने, चाहे वे रैंकवादी हों या कौंतवादी, तथ्यों को एक चमत्कारिक प्रभामंडल के साथ प्रस्तुत किया और विवरणों के एक नए पथ का प्रवर्तन किया तथा इतिहासकारों ने उन सभी तथ्यों को सुनिश्चित करने का संकल्प जताया जो उन्हें उपलब्ध हो सकते थे। इसका परिणाम साहित्यिक, अभिलेखीय या पुरातत्वीय दृष्टियों से

विस्तृत एवं शोधित ऐतिहासिक सामग्रियों में अभूतपूर्व वृद्धि के रूप में सामने आया। कॉलिंगवुड हमें यह जानकारी देते हैं कि मॉमसेन या मेटलैंड जैसे सर्वश्रेष्ठ इतिहासकार विवरणों के महानतम पुरोधा बन बए जिसके कारण सार्वभौमिक इतिहास का आदर्श एक खोखला स्वप्न बन गया जबकि एकल विषयक पुस्तिका या मोनोग्राफ ऐतिहासिक साहित्य का आदर्श बन गई।

रैंकवादी और कौंतवादी प्रत्यक्षवादियों के लिए इतिहास के प्रत्येक तथ्य की एक पृथक सत्ता है जो संज्ञान की एक विशिष्ट क्रिया द्वारा नियत होने में सक्षम है। इस प्रकार सूक्ष्म तथ्यों का एक अपरिमित विस्तार हो सकता था। ऐसे प्रत्येक तथ्य को न केवल शेष तथ्यों से बल्कि इसे जानने वाले से भी स्वतंत्र माना गया जिससे कि इतिहासकार के दृष्टिकोण में व्याप्त सभी विषयपरक तत्वों को निर्मूल किया जा सके। इतिहासकार को तथ्य पर कोई निर्णायक टिप्पणी करने से बचना चाहिए, उसे हमेशा केवल वही करना चाहिए जो वे हैं।

उपरोक्त के साथ ही साथ प्रत्यक्षवाद के कुछ आलोचनात्मक पहलू भी हैं जिनका दुष्प्रभाव भी दृष्टिगत होता है। इनका उल्लेख निम्नानुसार है:

इतिहासकारों ने प्रत्यक्षवादी अभिगम को स्वीकार करने में उदासीनता दिखाई क्योंकि उन्हें यह आशंका रही है कि यह मूलतः अनैतिहासिक है। इसका कारण यह है कि इतिहासकार को जैसा कि आर्थर मार्विक कहते हैं, विशिष्ट और अद्वितीय घटनाओं से अनिवार्यतः अपना कार्य आरंभ करना चाहिए, उस मानवीय तथा सामाजिक व्यवहार के अमूर्त सामान्य विधानों की बजाय जो कुछ वस्तुतः हुआ उसमें अधिक रूचि लेनी चाहिए।

ऐतिहासिक प्रक्रिया प्राकृतिक प्रक्रिया के समान नहीं होती है इतिहास व्यक्तिगत तथ्यों का ज्ञान है और विज्ञान सामान्य विधानों का। इतिहासकारों को वस्तुतः जो काम करना था वह था स्वयं उन तथ्यों को खोजना और व्यक्त करना न कि सामान्य विधानों का प्रतिपादन करना।

प्रत्यक्षवाद ने आधुनिक इतिहास लेखन को जो विरासत दी वह लघुस्तरीय समस्याओं में अभूतपूर्व महारत तथा वृहतस्तरीय समस्याओं का समाधान करने में अभूतपूर्व अक्षमता का एक संयोजन था। अत्यंत सूक्ष्म विवरणों पर प्रत्यक्षवादियों द्वारा दिए गए बल ने इतिहास को महान घटनाओं या व्यापक समस्याओं पर खासकर विचार करने से रोक दिया। प्रत्यक्षवादी काल के महानतम् इतिहासकार मॉमसेन ने विवरण पर अत्यधिक ध्यान केंद्रित करते हुए ऐतिहासिक सामग्रियां विपुल परिणाम में एकत्र कीं, किंतु रोम का इतिहास लिखने का उनका प्रयास बिल्कुल उस बिंदु पर तिरोहित हो गया जहाँ रोमन इतिहास को उनका अपना योगदान महत्वपूर्ण होने लगा था। उनकी पुस्तक हिस्ट्री ऑफ रोम, एक्टियम के युद्ध के साथ समाप्त हुई। ई. एच. कार इसी तरह इस प्रश्न पर विचार करते हैं कि क्या तथ्यों के प्रति उन्नीसवीं शताब्दी के मोह ने ही एक्टन को एक इतिहासकार के रूप में हताश कर दिया था। एक्टन ने यह दुख प्रकट किया था कि इतिहासकार की जरूरतों ने उनके लिए "एक विद्वान व्यक्ति से एक विश्वकोश का संकलनकर्ता होने का खतरा उत्पन्न कर दिया था।"

कॉलिंगवुड कहते हैं कि मूल निर्णय देने के विरूद्ध प्रत्यक्षवादी नियम ने इतिहासकारों पर जो प्रभाव डाला वह कम नकारात्मक नहीं था। इस नियम ने इतिहासकारों को किसी नीति की बुद्धिमता, किसी आर्थिक व्यवस्था की सशक्ता अथवा कला, निर्माण या धर्म की उन्नति अथवा अवनति पर परिचर्चा करने से रोक दिया। मूल निर्णय पर प्रत्यक्षवादी प्रतिबंध के कारण प्रत्यक्षवादी इतिहासकार यह समझ पाने में विफल रहे कि प्राचीन काल के लोग दासता के विषय में क्या सोचते थे, या रोम के लोग सम्राट-पूजन के अपने कार्य-व्यवहार के संबंध में क्या महसूस करते थे। इस तरह के मुद्दों के बारे में

खोजबीन स्वच्छंदतावादी इतिहासकारों के लिए अत्यंत विधिसम्मत थे जिन्होंने सब कुछ की तह तक पहुँचने का प्रयास किया किंतु इस तरह की समस्याएँ उनके प्रत्यक्षवादी उत्तराधिकारियों के दायरे से बाहर थीं। तथ्यों के मूल्यांकन को नकारने का अर्थ ही इतिहास हो सका। यह उस चिंतन या सोच का इतिहास नहीं बन पाया जिससे उन घटनाओं का जन्म हुआ।

3.3.8. सारांश

इतिहास में वैज्ञानिक विधि का प्रयोग करके हम वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर सकते है 'प्रत्यक्ष' का अर्थ है किसी प्रकार के संशय या विवाद की संभावना से परे। ऐतिहासिक ज्ञान को वैज्ञानिक बनाने का प्रयास सत्रहवीं शताब्दी की वैज्ञानिक क्रांति के फलस्वरूप आरंभ हो गया था। नीबुर और रैंक सेसंबद्ध अनुसंधान पद्धति की क्रांति के साथ ऐतिहासिक अध्ययन ने अपना "वैज्ञानिक" तथा "प्रत्यक्ष" मार्ग विकसित कर लिया।

प्रत्यक्षवाद का अभिप्राय एक विधा से है जिसके माध्यम से आंकड़ों का वैज्ञानिक विधि से संकलन अनुभव के आधार पर किया जाए। इसमें धार्मिक विचारों के लिए कोई स्थान नहीं है। जान स्टुअर्ट मिल ने अनुभव को गणित के समकक्ष स्वीकार करने को प्रत्यक्षवाद की संज्ञा दी है।

इतिहास जगत में वैज्ञानिक तथा प्रत्यक्षवादी आंदोलनों का एकमात्र उद्देश्य अतीत का यथावत यथार्थ प्रस्तुतीकरण है। इसके लिए अनेक इतिहासकारों ने ऐतिहासिक गवेषणा की आधुनिक विधाओं का प्रस्तुतीकरण किया है। इस परम्परा के शिलान्यासकर्ताओं ने बड़े परिश्रम से वैज्ञानिक विधाओं के आधार पर अतीत का अध्ययन कर ऐतिहासिक गवेषणा की आधारशिला तैयार की। वे वैज्ञानिक उपलब्धियों के सुखद परिणाम से अवगत थे। जर्मनी में नेबूर तथा रांके, ब्रिटेन में ब्यूरी तथा ऐक्टन, अमेरिका में बियर्ड तथा कार्ल बेकर और फ्रांस में टेने जैसे प्रख्यात इतिहासकारों ने विद्वता का उच्च आदर्श प्रस्तुत किया। इन विद्वानों ने न केवल ऐतिहासिक गवेषणा की आधुनिक विधाओं का प्रतिपादन किया, बल्कि ऐतिहासिक अध्ययन की वैज्ञानिक प्रणाली संबंधी सुदृढ़ आधारशिला का निर्माण किया। इन लोगों ने ऐतिहासिक स्रोतों को क्रमबद्ध करके त्रुटिपूर्ण स्रोतों की व्याख्या कर उनको विश्वसनीय स्वरूप प्रदान किया। इन विद्वानों का अभिप्राय त्रुटियों को दूर कर ऐतिहासिक ज्ञान द्वारा अतीत का सुंदर प्रासाद प्रस्तुत करना था। यदि ऐतिहासिक गवेषणा की आधुनिक विधाएँ अठारहवीं सदी की देन है तो उन्नीसवीं तथा बीसवीं सदी के विद्वानों ने ऐतिहासिक गवेषणा की विधाओं को परिपक्वता तथा प्रौढ़ता प्रदान की।

प्रत्यक्षवादी परंपरा में ऑगस्त कॉम्त द्वारा प्रतिपादित प्रत्यक्षवादि दर्शन तथा रांके द्वारा शुरू कि गई इतिहास लेखन की परंपरा का मुख्य रूप से चलन है। इन परंपराओं में इतिहास को वैज्ञानिक आधार पर लाने का प्रयास किया गया है। तथ्यों का इतिहासकार से स्वतंत्र अर्थ होता है इतिहास के इस दृष्टिकोण के आलोचना 19वीं शताब्दी में विल्हेम डिल्थी जैसे दर्शनिकों ने कि तथा क्रोचे कॉलिंगवुड जैसे विचारकों ने वैज्ञानिक तटस्थता और वस्तुपरकता के दृष्टिकोण की बुनीयाद पर सवाल लगा दिया। इन्होंने इतिहासकार के स्वतंत्र तथ्यों के अस्तिव से इन्कार किया और इतिहासलेखन में व्ययाख्या को अत्याधिक महत्व दिया।

3.3.9. बोध प्रश्न

3.3.9.1. लघु उत्तरीय प्रश्न

1. प्रत्यक्षवाद क्या है ?
2. इतिहास में प्रत्यक्षवाद पर प्रकाश डालिए ?
3. प्रत्यक्षवाद का उद्भव एवं विकास बताइए?
4. आगस्ट कॉम्ते (प्रत्यक्षवाद के जनक) पर टिप्पणी लिखिए ?
5. रांके पर टिप्पणी लिखिये।

3.3.9.2. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. एतिहासिक प्रत्यक्षवाद की विस्तृत विवेचना कीजिए ?
2. एतिहासिक प्रत्यक्षवाद की प्रमुख विशेषताएँ बताइए ?
3. एतिहासिक प्रत्यक्षवाद की अलोचनात्मक व्याख्या कीजिए ?
4. इतिहास लेखन का प्रत्यक्षवाद पर क्या प्रभाव पड़ता है ?
5. इतिहास लेखन की पत्यक्षवादी अवधारणा की विवेचना कीजिए ?
6. इतिहास लेखन की प्रत्यक्षवादी अवधारणा में आगस्त कॉम्ते के विचारों को समावेशित कीजीए ?
7. इतिहास लेखन की प्रत्यक्षवादी अवधारणा में एल. एफ. रांके के विचारों को समावेशित कीजिए ?

3.3.10. संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शेख अली बी.: हिस्ट्री: इट्स थिओरी एंड मेथठ, ट्रिनिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1978
2. शर्मा तेजराम: हिस्टोरिओग्राफी ए हिस्ट्री ऑफ हिस्टोरिकल राइर्टिंग, नई दिल्ली, 2005
3. कुप्पुरम जी. एवं कुमुदमनी के: मेथड्स ऑफ हिस्टोरिकल रिसर्च, नई दिल्ली, 2002
4. मनिक्कम वी.: ऑन हिस्ट्री एंड हिस्टोरिओग्राफी, मदुरई, 2003
5. श्रीवास्तव बी. के.: इतिहास लेखन: अवधारणा, विधायें एवंसाधन, आगरा, 2008
6. श्रीधरन ई.: इतिहास लेख, नई दिल्ली, 2011
7. कोठेकर शांता: इतिहास तंत्र एवं विज्ञान, नागपुर, 2015
8. पान्डे जी. सी. (संपादित): इतिहास स्वरूप एवं सिद्धांत, जयपुर, 1973
9. राधेशरण: इतिहास और इतिहास लेखन, भोपाल, 2010
10. चैबे झारखंड: इतिहास दर्शन, वाराणसी, 2001
11. सिंह परमानंद इतिहास दर्शन, दिल्ली, 1992
12. कार ई. एच.: इतिहास क्या है, दिल्ली,
13. दुबे जे. एन.: इतिहास विज्ञान, वाराणसी, 1988

खंड - 3 इतिहास लेखन के विभिन्न सिद्धांत

इकाई-4 इतिहास का चक्रवादी सिद्धांत

इकाई की रूपरेखा

3.4.1. उद्देश्य
3.4.2. प्रस्तावना
3.4.3. भूमिका
3.4.4. युगचक्रवादी सिद्धांत
3.4.4.1.भारतीय युगचक्रवादी सिद्धांत
3.4.4.2.इस्लामी युगचक्रवादी सिद्धांत
3.4.4.3.यूनानी एवं रोमन युगचक्रवादीसिद्धांत
3.4.4.4.चीनी युगचक्रवादी सिद्धांत
3.4.4.5.ईरानी युगचक्रवादी सिद्धांत
3.4.4.6.यहूदी एवं ईसाई युगचक्रवादीसिद्धांत
3.4.5. आधुनिक युग में चक्रीयसिद्धांत
3.4.5.1.विको का चक्रवादी सिद्धांत
3.4.5.2.हर्डर का चक्रवादी सिद्धांत
3.4.5.3.स्पेंगलर का चक्रवादी सिद्धांत
3.4.5.4.टॉयनबी का चक्रवादी सिद्धांत
3.4.6. सारांश
3.4.7. बोध प्रश्न
3.4.7.1. लघुउत्तरीय प्रश्न
3.4.7.2. दीर्घउत्तरीय प्रश्न
3.4.8. संदर्भ ग्रंथ सूची

3.3.1. उद्देश्य

इतिहास की विविध घटनाओं का समग्रता से सर्वव्यापी अध्ययन कर उस संबंध में कुछ सिद्धांत प्रस्तुत करने के प्रयास प्राचीनकाल से विद्वानों ने दिए है। क्या विविध एतिहासिक घटनाओं में एकसूत्रता होती है ? संपूर्ण मानवीय जीवन सदियों से मानव की यात्रा का सैद्धांतिक भूमिका से परिशीलन कर उससे अनुमानात्मक पद्धति से कुछ सिद्धांत प्रस्तुत किए गए है इस इकाई का उद्देश्य इतिहास के युगचक्रवादी सिद्धांत की विस्तृत व्याख्या करना है।

3.4.2.प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में इतिहास के युग चक्रवादी सिद्धांत की व्याख्या की जाना प्रस्तावित है जिसके अंतर्गत प्राचीन भारतीय विचार, इस्लामिक विचार, यूनानी विचार, रोमन विचार एवं चीनी विचार पर प्रकाश डाला जायेगा साथ ही इसके अंतर्गत ईरानी विचार, यहूदी विचार एवं ईसाई विचारों को भी

सम्मिलित किया जायेगा। इसके साथ ही इस विषय के विशेषज्ञ विद्वानों का परिचय दिया जाना भी प्रस्तावित है। इकाई के अंत में बोध प्रश्नों के साथ-साथ संदर्भ ग्रंथ सूची को भी रेखांकित कियाजायेगा।

3.4.3. भूमिका

इतिहास की प्रमुख विषय-वस्तु के रूप में मनुष्य, समाज, संस्कृति एवं सभ्यताएँ मानी जाती हैं। अतः इतिहास की गति एवं दिशा को लेकर विद्वानों द्वारा विभिन्न व्याख्याएँ एवं सिद्धांत प्रस्तुत किये गये हैं। इतिहास का युग चक्रवादी सिद्धांत अपने विभिन्न स्वरूप में भारत सहित ग्रीको-रोमन एवं ईसाई परंपराओं में विद्यमान है। इस अवधारणा का मूल यह है कि मानव इतिहास एक पूर्व निर्धारित परियोजना के तहत अग्रसर है।

इतिहास की गति के स्वरूप के विषय में तीन सिद्धांत प्रस्तुत किए गए हैं। वे हैं - प्रथम, चक्रीय गति का सिद्धांत, द्वितीय, एक सीधी रेखा का सिद्धांत और तृतीय चक्करदार सिद्धांत। चक्रीय गति के सिद्धांत का अर्थ है विविध ऐतिहासिक घटनाओं की गति चक्र की तरह होती है, चक्र जिस तरह वृत्ताकार घूमता है, अर्थात जिस बिंदु से गति आरंभ होती है, उस बिंदु से ऊपर जाते जाते वह फिर आरंभ के बिंदु पर आ जाता है और वही वृत्ताकार गति फिर प्रारंभ होती है। भोर, दिन, शाम एवं रात इस तरह चौबीस घंटों का क्रम, अथवा प्रकृति में ऋतुओं का चक्र निरंतर उसी पद्धति से जारी रहता है, मानवी जीवन की घटनाओं में भी इसी तरह की नियमबद्धता का एक निश्चित क्रम दिखाई देता है, यह चक्रीय गति के सिद्धांत का स्थूल रूप से अर्थ है।

3.4.4. युगचक्रवादी सिद्धांत

भारतीय परम्परा एवं ग्रीको-रोमन परम्परा दोनों में ही इतिहास को एक निरंतर गतिशील चक्र के रूप में माना जाता है। चक्रीय सिद्धांत से तात्पर्य है कि चक्रवत घूमते हुए जहाँ से प्रारम्भ हुए थे, वहीं पुनः वापस आ जाता है। विभिन्न संस्कृतियों में इतिहास के विभिन्न युगों की परिकल्पना की गई है जो एक के बाद एक एक आते हैं और उनकी गति चक्रीय है। भारतीय अवधारणा में चार युगों - कृत, त्रेता, द्वापर एवं कलियुग की परिकल्पना मिलती है। ग्रीको-रोमन अवधारणा में चार युगों को धातुओं के नाम-स्वर्ण युग, रजत युग, कांस्य युग एवं लौह युग पर आधारित किया गया है। युगों के चक्रात्मक क्रम के इससिद्धांत का प्रमुख आशय यह है कि जिस प्रकार रात के बाद दिन एवं दिन के बाद रात आते हैं, जिस प्रकार सुख के बाद दुःख एवं दुःख के बाद सुख आते हैं एवं जिस प्रकार एक ऋतु के पश्चात् दूसरी ऋतु क्रमानुसार आती है, ठीक उसी प्रकार ये विभिन्न युग एक के बाद एक क्रमानुसार आते हैं और इतिहास की गति को नियमित करते हैं।

3.4.4.1. भारतीय युग चक्रवादी सिद्धांत

प्राचीन भारतीय विद्वानों में डॉ. शर्मा, डॉ. पी.वी. काणे आदि का विचार है कि मानव जीवन की यात्रा का सैद्धांतिक विवेचन भारत में ऋग्वेद काल से दिखाई देता है। मानव जीवन की गति चक्रीय होती है यह कल्पना चार युगों की संकल्पना से जुड़ी हुई है। प्राचीन साहित्य में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि मानवी जीवन का प्रवाह सत्य, त्रेता, द्वापर एवं कलि इन चार युगों में विभाजित है और कलियुग के बाद फिर सत्य युग से यात्रा आरंभ होगी। इसी तरह प्रत्येक युग के विशेष लक्षण भी स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किए गए। सत्य युग में सभी लोग सत्प्रवृत्ति के होंगे, सभी जगह खुशहाली होगी, परंतु इसके बाद के युगों में धीरे-धीरे नीति का क्षय होगा, प्रकृति की अनुकूलता कम होती जाएगी और समृद्धि घटती जाएगी,

धार्मिक श्रद्धाएँ कम होती जाएँगी, कर्मकाण्डों को महत्व प्राप्त होगा, मनुष्य की नैतिक अवनति होती जाएगी, कलियुग हर दृष्टि से पतन का युग होगा और कलियुग के बाद फिर सतयुग का उदय होगा। प्राचीन भारतीय साहित्य में यह भी विवेचन किया गया है कि कालचक्र ईश्वरी योजना है। कालचक्र दैवी योजना का अंग है। पृथ्वी पर अत्यधिक अवनति होते ही प्रलय हो जाएगा तथा सबकुछ नष्ट हो जाएगा और इस विनाश के बाद फिर सतयुग का उदय होगा। जैन एवं बौद्ध धर्म में भी कालचक्र की संकल्पना दिखाई देती है। जैन एवं बौद्ध विचारकों का मानना है कि मानवी जीवन का कालचक्र विशिष्ट गति तथा विशिष्ट पद्धति से चलता है। लेकिन, प्राचीन भारतीयों की तरह ईश्वर को वे कालचक्र का सूत्रधार नहीं मानते।

3.4.4.2. इस्लामी युग चक्रवादी सिद्धांत

कालचक्र की अवधारणा को इस्लाम धर्म में भी प्रस्तुत की गयी है। यह अवधारणा कुरान के विचारों से जुड़ी हुई है। इस्लाम के लगभग सभी विचारक यह मानते हैं कि कालचक्र पूरी तरह से ईश्वरीय इच्छा से चलता है। किंतु अपवाद स्वरूप इब्न खल्दून नामक विचारक कहते हैं कि मैं नहीं मानता कि मानव जीवन के बदलाव पूरी तरह ईश्वरीय इच्छा से ही निर्धारित होते हैं। उनका कहना है कि इसके पीछे अनेक घटक होते हैं। अरब इतिहास लेखन में चैदहवीं सदी के प्रज्ञावान लेखक इब्न खल्दून ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'Muqaddima' में ऐतिहासिक विकास एवं परिवर्तन का तर्कसंगत विवेचन कर उससे सामान्य सिद्धांत को खोजा। उन्होंने यह कहते हुए सभ्यता की चक्रीय गति की संकल्पना स्पष्ट की कि, इतिहास सभ्यता का शास्त्र है और सभ्यता का उदय सामाजिक, आर्थिक, भौगोलिक, नैतिक, राजनीतिक जैसी अनेक बातों के समुच्चय से होता है तथा सभ्यता जीवों की तरह सजीव और परिवर्तनशील है एवं सजीव प्राणियों की तरह सभ्यता में भी उदय, विकास एवं नाश के नियम लागू हैं। अतः जो उदय हुआ है वह अस्त भी होगा।

3.4.4.3. यूनानी एवं रोमन युग चक्रवादीसिद्धांत

यूनानी विचारकों ने मानव के जीवन के अनेक पहलुओं पर तर्कसंगत तरीके से गंभीर रूप से विचार किया है। यूनानी विचारकों के अनुसार मानव विशिष्ट युग में विशिष्ट पद्धति से बर्ताव करेगा, क्योंकि वह काल का रूझान होता है, मनुष्य की विचार शक्ति के लिए उसमें अवसर नहीं होता, मानवी इतिहास का चक्र विशिष्ट गति से घूमता है और वह वैसे ही घूमता रहेगा, उसमें मनुष्य बदलाव नहीं कर सकता। पायथागोरस नामक यूनानी गणितज्ञ ने विश्व की अनेक प्रकार की घटनाओं का संबंध ग्रहों के भ्रमण से जोड़ दिया। ग्रहों का भ्रमण विशिष्ट गति एवं विशिष्ट पद्धति से चक्रीय गति से चलता है, यह कहते हुए वह इतिहास की पुनरावृत्ति के सिद्धांत का प्रतिपादन करता है। एपिक्यूरस नामक प्रसिद्ध चिंतक ने कालचक्र के विचार को अधोरेखित करते हुए कहा है कि विश्व एक विशाल शून्य स्थान है और उसमें अगणित परमाणु हैं, उनके संघातों से विश्व की निर्मित होती है और परमाणु के विकेंद्रीकरण से विश्व का अंत होता है, यह बार-बार इसी तरह होता रहेगा। रोमन लेखक मुख्यतः यूनानियों की राह पर चलने वाले एवं भौतिक जीवन में रुचि रखने वाले थे। उन्होंने मानवी जीवन का तात्विक दृष्टि से स्वतंत्र विचार नहीं किया।

3.4.4.4. चीनी युग चक्रवादी सिद्धांत

प्राचीन कालीन चीनी साहित्य में हमें कालचक्र का विवेचन मिलता है। चीनी विचारकों के अनुसार प्रकृति में परिवर्तनों और ग्रहों के भ्रमण के अनुसार मानव जीवन में विविध घटनाएँ होती हैं। तुंग चुंग श् के अनुसार पानी के सूक्ष्म जंतु की तरह मनुष्य की उत्पत्ति हुई है और उन सभी सूक्ष्म जीवों में

मनुष्य श्रेष्ठ जीव है। लेकिन यह अवस्था कायम नहीं रहेगी। क्रमानुसार यह गति पीछे जाकर मनुष्य फिर सूक्ष्म जंतु का रूप लेगा और यह चक्रीय गति अखंड चलती रहेगी। अनेक सदियों का मानवी इतिहास भी इसी चक्रीय गति को निर्धारित करने वाला है। अतः चीनी युग में भी हमें कालचक्र का विवेचन मिलता है।

3.4.4.5. ईरानी युग चक्रवादी सिद्धांत

प्राचीन ईरानी साहित्य में भी इतिहास की गति के बारे में चक्रीय गति की कल्पना प्रस्तुत की गई है। वहाँ के कालचक्र की संकल्पना में बारह हजार वर्ष का एक कालचक्र माना गया है तथा उसका विभाजन चार समान भागों में किया गया है। अर्थात, तीन हजार वर्ष का एक युग इस तरह चार युग वे मानते हैं। मानवी जीवन की विविध घटनाओं का संबंध वे भी ग्रहों के भ्रमण से जोड़ते हैं। कालचक्र की गति एवं उसकी दिशा निर्धारित होती है, अतः व्यक्ति को इसे ध्यान में रख कर कार्य करना चाहिए यह इतिहास विषयक विचार भी ईरानी साहित्य में मिलता है।

3.4.4.6. यहूदी एवं ईसाई युग चक्रवादीसिद्धांत

फिलीस्तीन में प्राचीनकालीन यहूदी धर्म तथा बाद में स्थापित ईसाई धर्म विश्व को ईश्वर द्वारा निर्मित मानते हैं। यहूदी धर्म के अनुसार विश्व के आरंभ में स्वर्णयुग था, किंतु कालांतर में ईश्वर की आज्ञा का उल्लंघन करने से मनुष्य का पतन प्रारंभ हुआ तथा उसके जीवन में दुख एवं विपत्तियाँ आने लगीं तथा पाप एवं अनीति का साम्राज्य फैलने लगा तब इससे मनुष्य को मुक्त करने के लिए ईश्वर अवतार लेंगे और फिर स्वर्णयुग आरंभ होगा। यही युगचक्र है। ईसाई धर्म का कहना है कि यह अवतार ही ईसा है। ईसा ही मनुष्य का पाप धोने एवं उसे मुक्ति देने का कार्य करते हैं तथा वही ईश्वर तक पहुँचने वाले हैं। हिंदू धर्मशास्त्रों की प्रलय की कल्पना की तरह उसमें भी प्रलय का विचार आया है, लेकिन नोहा की नौका में कुछ जीव सुरक्षित रहेंगे और उससे पुनः नए विश्व का निर्माण होगा तथा कालचक्र जारी रहेगा, यह सोच भी प्रस्तुत की गई है।

कालचक्र एवं ईश्वरीय सूत्र के विचार को प्राचीन काल में चिंतकों ने प्रायः स्वीकार किया है, लेकिन चीन के हैन-फी-त्से अथवा भारत के चाणक्य ने इस विचार का पूर्णतः समर्थन नहीं किया है। अरब विचारक इब्न खल्दून भी इसका पूरी तरह समर्थन नहीं करते और मानवी कृति का महत्व प्रतिपादित करते है।

आधुनिक यूरोपीय विचारक भूतकालिक मानव जीवन की विविध घटनाओं का व्यापक एवं तर्कसंगत ढंग से परिशीलन करने लगे और उसके निष्कर्ष के रूप में चक्रीय गति का सिद्धांत पेश करने लगे। इन आधुनिक तत्ववेत्ताओं में इतालवी विचारक विको, जर्मन विचारक स्पेन्गलर तथा इतिहास के गहरे अध्येता ब्रिटिश इतिहासकार टॉयन्बी आदि हैं।

3.4.5. आधुनिक युग में चक्रीयसिद्धांत

आधुनिक युग में इतिहास के चक्रीयसिद्धांत के साथ मुख्यतः विको, हर्डर, स्पेंगलर एवं टायंबी के नाम जुड़े हुए हैं। इतिहास की युगचक्रवादी व्याख्या प्रस्तुत करने का प्रमुख श्रेय ओसवाल्ड स्पेंगलर एवं आरनोल्ड टायंबीको जाता है।

3.4.5.1. विको का चक्रवादी सिद्धांत

जियाम्बतिस्ता विको अठारहवीं शताब्दी में एक कुशल तथा प्रशिक्षित इतिहासकार था तथा उसने ऐतिहासिक विधि के सिद्धान्तों के निर्माण का प्रयास किया। विको के अनुसार ऐतिहासिक प्रक्रिया एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें रहते हुए मनुष्य अपनी भाषा प्रथाओं, विधि तथा प्रशासन इत्यादि से संबंधित

संस्थाओं की रचना करता है। इस प्रकार, उसके अनुसार इतिहास मानव समाजों तथा इनकी संस्थाओं के उद्भव तथा विकास की कहानी है। मानव समाज की संपूर्ण संरचना स्वयं मनुष्य के द्वारा ही रची गई है तथा यह मानव के मस्तिष्क द्वारा पूर्णतः परिज्ञेय है। विको ने विधि तथा भाषा इत्यादि विषयों के इतिहास का स्वयं गंभीर शोधपूर्ण अध्ययन किया था और उनके विचार इस अध्ययन पर आधारित थे। उन्होंने इन शोधों को उसी प्रकार का निश्चित ज्ञान प्रदान करने में सक्षम पाया जिस प्रकार के निश्चित ज्ञान को देकार्त ने भौतिकशास्त्रीय तथा गणितीय शोधकार्यों से संबद्ध किया था। विको का कहना है कि इतिहासकार अपने मस्तिष्क में उस प्रक्रिया की पुनर्रचना कर सकता है जिसमें अतीतकालिक मनुष्यों ने इसके विभिन्न तत्वों का निर्माण किया था। इतिहासकार के मस्तिष्क तथा इसके द्वारा अध्येय विषयवस्तु के बीच एक प्रकार का पूर्वस्थित सामरस्य होता है। सुदूर अतीत के कालों के इतिहास में विको की विशेष रूचि थी।

विको ने यह प्रतिपादित किया कि इतिहास के कुछ कालों का एक अलग सामान्य स्वभाव था जिनका ग्रंथ कालों में पुनप्रर्काशन हुआ, और इस प्रकार दो भिन्न युगों का समान स्वभाव संभव है। उदाहरण के लिए उन्होंने कहा कि यूनानी इतिहास के होमर-काल तथा यूरोपीय मध्य युग में सामान्य सादृश दिखाई पड़ता है, और इन दोनों युगों को ही उसने 'हीरोइक युग' की सामान्य संज्ञा प्रदान की, इन दोनों युगों में कुछ सामान्य तत्व देखे जा सकते हैं - योद्धा-कुलीन तन्त्र के हाथ में प्रशासन का होना, कृषि पर आधारित नैतिकता गाथा-काव्य इत्यादि। उन्होंने यह भी कहा कि ये समान युग उसी क्रम में इतिहास में घटित हुए हैं। प्रत्येक 'हीरोइक युग' के पश्चात् 'क्लासिक-युग' आता है जिसमें कल्पना के स्थान पर विवेक की गाथाकाव्य के ऊपर गद्य-साहित्य की, कृषि के ऊपर उद्योग की प्रभुता होती है तथा नैतिकता का आधार युद्ध न हो कर शान्ति होता है। इस युग के पश्चात् एक नए प्रकार की बर्बरता में पतन का युग आता है, यह नए प्रकार की बर्बरता होती है जिसमें विचार अथवा विवेक तो होता है किंतु इसकी सर्जनात्मक शक्ति क्षीण हो चुकी होती है। विको इस चक्रीय विकास को सुनिश्चित कालों के चक्र में इतिहास का पुनरावर्तन मात्र नहीं मानते। उनका कहना है कि यह एक वृत्त न होकर सर्पिल आकार का है क्योंकि इतिहास कभी भी अपने को दुहराता नहीं अपितु प्रत्येक नए युग में वह अतीतकालिक घटनाओं द्वारा विशिष्टीकृत रूप में पदार्पण करता है।

3.4.5.2. हर्डर का चक्रवादी सिद्धांत

हर्डर ने युगचक्रवाद पर मनुष्य के जीवन से संबंधित अवस्थाओं की समवृत्तिता के आधार पर विचार किया है। उनके अनुसार, मानव-जीवन भौतिक विश्व में अपने परिवेश के साथ घनिष्ट रूप से संबंधित है। इस भौतिक ब्राह्मांडका सामान्य स्वरूप एक जीवी का है जो इस प्रकार नियोजित है कि यह अपने अंदर उच्च स्तर के जीवी को विकसित करता रहता है। भौतिक ब्राह्मांड एक योनि के समान है जिसमें किसी क्षेत्रविशेष में सौर मण्डल का जन्म होता है पुनः सौर मंडल वह योनि है जिसमें पृथ्वी का जन्म होता है जो कि अन्य सभी ग्रहों की अपेक्षा मनुष्य का उपयुक्त कार्य-क्षेत्र बनती है, पृथ्वी की इस भौतिक संरचना के अंतर्गत विशिष्ट खनिजीय निर्मितियों, विशिष्ट भौगोलिक जीवी (प्रायद्वीप) इत्यादि का जन्म होता है। पृथ्वी पर फिर जीवन का प्रारम्भ होता है जिसमें सबसे पहले वनस्पति जीवन का आविर्भाव होता है, पशु-जीवन वनस्पति जीवन का ही और विकसित रूप है और अधिक विकसित रूप मानव जीवन के आविर्भाव में देखा जा सकता है।

प्रकृति के नियमानुसार मानव जाति कई नस्लों में विभाजित है। प्रत्येक नस्ल का अपने भौगोलिक परिवेश के साथ घनिष्टरूपेण संबद्ध होता है और इस भौगोलिक परिवेश से प्रभावित उसकी अपनी विशिष्ट मौलिक शारीरिक तथा मानसिक विशिष्टताएँ होती हैं, किंतु प्रत्येक नस्ल मानव जाति के

एक विशिष्ट प्रकार का प्रतिनिधित्व करती है, जिसके अनेक विशिष्ट चिरस्थायी लक्षण होते हैं। प्रत्येक नस्ल सुख तथा जीवन के आदर्श के विषय में अपने विचार रखता है। विभिन्न नस्लों में विभक्त मानव जाति भी एक योनि के समान है जिसमें ऐतिहासिक जीवी का जन्म होता है जो कि मानवीय जीवी का एक उच्चतर प्रकार है। हर्डर के मतानुसार, योरोप प्रकृति का वह प्रिय केंद्र है जिसमें, इसकी विशिष्ट भौगोलिक तथा जलवायु संबंधी विशिष्टताओं के कारण ऐतिहासिक जीवन का उद्भव होता है, और इस कारण केवल योरोप में ही मानव जीवन को विशुद्ध अर्थो में ऐतिहासिक कहा जा सकता है, चीन, अमेरिका तथा भारत में कोई वास्तविक ऐतिहासिक प्रगति नहीं हुई है, अपितु इसके विपरीत, यहाँ एक अपरिवर्तनशील सभ्यता रही है। इस प्रकार, यूरोप मानव जाति का एक विशेषाधिकार प्राप्त क्षेत्र है, ठीक उसी प्रकार जैसे मनुष्य पशुओं में विशेष स्थान रखता है। हर्डर प्रकृति की विकास-प्रक्रिया को किसी लक्ष्य की ओर उन्मुख मानता है जिसमें विकास की प्रत्येक अवस्था प्रकृति द्वारा इस प्रकार नियोजित है ताकि वह आगामी अवस्था का मार्ग प्रशक्त कर सके।

3.4.5.3. ओसवाल्ड स्पेंगलर का चक्रवादी सिद्धांत

स्पेंगलर (1880-1936) की प्रसिद्ध कृति पश्चिम का पतन है जो एक अत्यंत लोकप्रिय रही है। स्पेंगलर के चिंतन पर प्रथम विश्वयुद्ध का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। स्पेंगलर की पुस्तक की प्रथम जिल्द 1918 में प्रकाशित हुई और लगभग चार साल बाद इसकी दूसरी जिल्द बड़े आकार में प्रकाशित हुई। स्पेंगलर ने अपने ऊपर नीत्शे के विचारों का प्रभाव स्वीकार किया है।

स्पेंगलर के अनुसार, इतिहास उन विविध पृथक्-पृथक् इकाइयों का अनुक्रम है जिन्हें कि हम संस्कृति कहते हैं। प्रत्येक संस्कृति का अपना विशिष्ट स्वभाव होता है, जिसकी अभिव्यक्ति उसके विकास-क्रम के विभिन्न पक्षों में विस्तार से होती है। साथ ही प्रत्येक संस्कृति की एक निश्चित आयु होती है। व्यक्ति के समान संस्कृति भी विकास तथा परिपक्वता का भोग करने के पश्चात् मृत्यु को प्राप्त होती है। स्पेंगलर ने इस बात पर बल दिया कि हमें सत्य का सामना करने से बचना नहीं चाहिए। कई रूपों में वह एक प्रकार की निराशावादिता में आनंद प्राप्त करते हुए दिखाई पड़ता है।

स्पेंगलर के अनुसार, प्रत्येक संस्कृति एक जैव इकाई के समान है। प्रत्येक संस्कृति का प्रारम्भ प्रारंभिक समाजों की बर्बरता से होता है, कालांतर में इसके अंतर्गत विविध राजनीतिक संस्थाओं, कला तथा विज्ञान इत्यादि का विकास होता है, जो प्रारम्भ में सामान्य होता है किंतु अनुवर्ती युग में विविध क्षेत्रों में उत्कृष्टता दिखाई पड़ती है, पुन, संस्कृति का पतनशील युग आता है जिसमें सर्वत्र विकृति दिखाई पड़ने लगती है, संस्कृति की सृजनशीलता समाप्त हो चुकी होती है और अंततोगत्वा यह संस्कृति विनष्ट हो जाती है। अतः स्पेंगलर के अनुसार प्रत्येक संस्कृति के प्रारंभ के साथ उसका पतन भी सुनिश्चित है।

3.4.5.4. टायनबी का चक्रवादी सिद्धांत

टायनबी की प्रसिद्ध पुस्तक स्टडी ऑफ हिस्ट्री है। टायनबी का मुख्य प्रयोजन सार्वभौमिक इतिहास का लेखन है और इस दृष्टिकोण से उनका लक्ष्य स्पेंगलर के लक्ष्य से सादृश्य रखता दिखाई पड़ता है। किंतु टायनबी ने अपने इतिहास-विषयक निष्कर्षों को समीक्षापूर्ण तथा वस्तुनिष्ठतात्मक पर्यवेक्षण पर आधारित होने का दावा किया है। किंतु टायनबी के आलोचकों का यह कहना है कि उनमें इतिहासकार की निष्पक्षता का अभाव है एवं वे अपने सिद्धांतों के मोह में इस प्रकार बंधे दिखाई पड़ते हैं कि प्रायः ऐतिहासिक तथ्यों की सम्यक् व्याख्या उनसे नहीं हो पाती। पीटर गेल ने उनकी कठोर आलोचना की है। उनका कहना है कि टायनबी के इतिहास-ज्ञान में किसी को कोई संदेह नहीं हो सकता

किंतु वे एक धर्मदूत हैं, इतिहासकार नहीं। उनका कहना है कि अपने सिद्धांतों से संगत बनाने के लिए टायनबी ने ऐतिहासिक तथ्यों को मनमाने ढंग से विकृत करके प्रस्तुत किया है।

टॉयनबी की पुस्तक 1934 ई. में प्रारंभ हुई थी तथा 20 वर्षों बाद पूर्णतः लेखबद्ध हो पाई। इतने लम्बे समय को अन्तर्भूत करने वाले टॉयनबी के चिंतन की प्रारम्भिक तथा परवर्ती अवस्थाओं में पूर्ण समंजसता तथा विचार-समानता नहीं दिखाई पड़ती। जहाँ प्रारम्भ में वे मुख्यतः एक समाजवैज्ञानिक के रूप में दिखाई पड़ते हैं, पुस्तक की अंतिम जिल्दों में उन्होंने अपने विषय के विस्तार क्षेत्र को बहुत अधिक बढ़ा लिया है। इस परवर्ती अवस्था में वे समाजवैज्ञानिक की अपेक्षा अध्यात्मशास्त्री अधिक दिखाई पड़ते हैं, और उनकी मुख्य अभिरूचि ऐसे प्रश्नों उत्तर ढूँढ़ने में दिखाई पड़ती है जैसे इतिहास में कोई अंतर्निहित अर्थ है या नहीं ? अथवा क्या यह किसी लक्ष्य विशेष की ओर बढ़ रहा है ? इत्यादि, तथा उनका यह भी विश्वास है कि वे इन प्रश्नों का उत्तर देने में सक्षम हैं क्योंकि उनका विचार है कि उन्होंने अतीतकाल में विभिन्न समाजों के पतन के मूलभूत कारण को समझ लिया है।

टॉयनबी के अनुसार इतिहास की विषयवस्तु मानवजाति की कुछ विशिष्ट इकाइयाँ हैं जिन्हें टायनबी ने समाज की संज्ञा प्रदान की है। इन विभिन्न समाजों को सभ्यताएँ भी कह सकते हैं जो मानवजाति के इतिहास में समय-समय पर उद्भूत विकसित और विनष्ट हुई हैं। सभ्यता ही, उनके अनुसार, इतिहास अध्ययन की एकमात्र इकाई है और उन्होंने अतीत काल तथा वर्तमान युग की इस प्रकार की इक्कीस सभ्यताओं को छांट निकाला है। विभिन्न सभ्यताओं के उद्भव, विकास तथा पतन का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करना उनका प्रमुख प्रयोजन है। प्रत्येक समाज या तो आदिम होता है या सभ्य। अधिकांश समाज प्रथम कोटि के अंतर्गत आते हैं और दूसरी कोटि के समाजों की सख्या न्यून होती है। प्रथम कोटि के समाजों की जीवन-अवधि प्रायः कम होती है और या तो वे सभ्य समाजों की हिंसा का शिकार बनते हैं अथवा किसी अन्य आदिम समाज द्वारा ही विनष्ट कर दिए जाते हैं। प्रत्येक सभ्यता एक स्वतः पर्याप्त इकाई होती है तथा एक प्रकारविशेष का प्रतिनिधित्व करती हैं। इस प्रकार, टायनबी के अनुसार, सभ्यताएँ देश और काल दोनों में परस्पर पृथक् और सर्वथा विशिष्ट होती हैं, जैसे ही कोई सभ्यता अपने स्वरूप में परिवर्तन करती है वह मूल सभ्यता नहीं रह जाती और उसके स्थान पर एक नई तथा पृथक् सभ्यता का जन्म मानना चाहिए। टायनबी की व्यवस्था में इस विचार का स्थान नहीं है कि कोई सभ्यता अपने कुछ तत्वों को छोड़ते हुए तथा दूसरों से कुछ तत्वों को ग्रहण करते हुए अपना विकास कर सकती है और फिर भी वही मूल सभ्यता रह सकती है।

टायंबी के चिंतन में मुख्य दोष यह है कि उन्होंने सभ्यता के जीवन को केवल जैव जीवन के रूप में समझा है, एक मानसिक जीवन के रूप में नहीं। उनके विचार में इतिहास तथ्यों का भंडारमात्र रह जाता है जिन्हें इतिहासकार देखता है और संगृहीत करता है। टायनबी ने तथ्यों को इस रूप में लिया है मानों उनको केवल व्यवस्थित करना है तथा इन पूर्व-प्राप्त तथ्यों को अपनी व्यवस्था में इधर-उधर उपयुक्त स्थान पर बिठा देना है। इन दोषों के बावजूद, टायनबी में एक परिष्कृत ऐतिहासिक बुद्धि का दर्शन होता है।

3.4.6. सारांश

इतिहास की प्रमुख विषय-वस्तु के रूप में मनुष्य, समाज, संस्कृति एवं सभ्यताएँ मानी जाती हैं। अतः इतिहास की गति एवं दिशा को लेकर विद्वानों द्वारा विभिन्न व्याख्याएँ एवं सिद्धांत प्रस्तुत किये गये हैं। इतिहास का युग चक्रवादी सिद्धांत अपने विभिन्न स्वरूप में भारत सहित ग्रीको-रोमन एवं ईसाई परंपराओं में विद्यमान है। इस अवधारणा का मूल यह है कि मानव इतिहास एक पूर्व निर्धारित परियोजना के तहत अग्रसर है।

भारतीय परम्परा एवं ग्रीको-रोमन परम्परा दोनों में ही इतिहास को एक निरंतर गतिशील चक्र के रूप में माना जाता है। चक्रीय सिद्धांत से तात्पर्य है कि चक्रवत घूमते हुए जहाँ से प्रारम्भ हुए थे, वहीं पुनः वापस आ जाता है। विभिन्न संस्कृतियों में इतिहास के विभिन्न युगों की परिकल्पना की गई है जो एक के बाद एक एक आते हैं और उनकी गति चक्रीय है। भारतीय अवधारणा में चार युगों - कृत, त्रेता, द्वापर एवं कलियुग की परिकल्पना मिलती है। ग्रीको-रोमन अवधारणा में चार युगों को धातुओं के नाम-स्वर्ण युग, रजत युग, कांस्य युग एवं लौह युग पर आधारित किया गया है। युगों के चक्रात्मक क्रम के इस सिद्धांत का प्रमुख आशय यह है कि जिस प्रकार रात के बाद दिन एवं दिन के बाद रात आते हैं, जिस प्रकार सुख के बाद दुःख एवं दुःख के बाद सुख आते हैं एवं जिस प्रकार एक ऋतु के पश्चात् दूसरी ऋतु क्रमानुसार आती है, ठीक उसी प्रकार ये विभिन्न युग एक के बाद एक क्रमानुसार आते हैं और इतिहास की गति को नियमित करते हैं।

आधुनिक युग में इतिहास के चक्रीय सिद्धांत के साथ मुख्यतः विको, हर्डर, स्पेंगलर एवं टायंबी के नाम जुड़े हुए हैं। इतिहास की युगचक्रवादी व्याख्या प्रस्तुत करने का प्रमुख श्रेय ओसवाल्ड स्पेंगलर एवं आरनोल्ड टायंबी को जाता है। चक्रीय गति के सिद्धांत का अर्थ है विविध ऐतिहासिक घटनाओं की गति चक्र की तरह होती है, चक्र जिस तरह वृत्ताकार घूमता है, अर्थात जिस बिंदु से गति आरंभ होती है, उस बिंदु से ऊपर जाते जाते वह फिर आरंभ के बिंदु पर आ जाता है और वही वृत्ताकार गति फिर प्रारंभ होती है। भोर, दिन, शाम एवं रात इस तरह चैबीस घंटों का क्रम् अथवा प्रकृति में ऋतुओं का चक्र निरंतर उसी पद्धति से जारी रहता है, मानवी जीवन की घटनाओं में भी इसी तरह की नियमबद्धता का एक निश्चित क्रम दिखाई देता है, यह चक्रीय गति के सिद्धांत का स्थूल रूप से अर्थ है।

3.4.7. बोध प्रश्न

3.4.7.1. लघु उत्तरीय प्रश्न

1. युग चक्रवादी सिद्धांत क्या है ?
2. भारतीय युग चक्रवादी सिद्धांत बताइए ?
3. इसाई परंपरा में चक्रवादी सिद्धांत पर प्रकाश डालिए?
4. ग्रीकोरोमन युग चक्रवादी सिद्धांत क्या है?

3.4.7.2. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. युग चक्रवादी सिद्धांत की विस्तृत विवेचना कीजिए ?
2. युग चक्रवादी सिद्धांत में गामबातिस्ता विको का मत समझाइए ?
3. विविध एतिहासिक घटनाओं की चक्रीय गति सिद्धांत की व्याख्या करने वाले विचारक ओसवाल्ड स्पेन्गलर का मत समझाइए ?
4. युग चक्रीय सिद्धांत में अनविड टॉयंबी का मत दीजिए ?

3.4.8. संदर्भग्रंथसूची

1. शेख अली बी.: हिस्ट्री: इट्स थिओरी एंड मेथठ, ट्रिनिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1978
2. शर्मा तेजराम: हिस्टोरिओग्राफी ए हिस्ट्री ऑफ हिस्टोरिकल राइर्टिंग, नई दिल्ली, 2005
3. कुप्पुरम जी. एवं कुमुदमनी के: मेथड्स ऑफ हिस्टोरिकल रिसर्च, नई दिल्ली, 2002
4. मनिक्कम वी.: ऑन हिस्ट्री एंड हिस्टोरिओग्राफी, मदुरई, 2003
5. श्रीवास्तव बी. के.: इतिहास लेखन: अवधारणा, विधायें एवं साधन, आगरा, 2008
6. श्रीधरन ई.: इतिहास लेख, नई दिल्ली, 2011
7. कोठेकर शांता: इतिहास तंत्र एवं विज्ञान, नागपुर, 2015
8. पान्डे जी. सी. (संपादित): इतिहास स्वरूप एवं सिद्धांत, जयपुर, 1973
9. राधेशरण: इतिहास और इतिहास लेखन, भोपाल, 2010
10. चैबे झारखंड: इतिहास दर्शन, वाराणसी, 2001
11. सिंह परमानंद इतिहास दर्शन, दिल्ली, 1992
12. कार ई. एच.: इतिहास क्या है, दिल्ली,
13. दुबे जे. एन.: इतिहास विज्ञान, वाराणसी, 1988

खंड - 4 : इतिहास लेखन की पद्धति-प्राचीन और मध्यकालीन
इकाई - 1 ग्रीक रोमन

इकाई की रूपरेखा

4.1.01. उद्देश्य
4.1.02. प्रस्तावना
4.1.03. यूनानी इतिहास लेखन व इतिहासकार
4.1.03.1. होमर
4.1.03.2. हेसियड
4.1.03.3. हिकेटियस
4.1.03.4. हेरोडोटस
4.1.03.5. थ्यूसीदाइदीज
4.1.03.6. जेनोफोन
4.1.03.7. पोलिबियस
4.1.04. रोमन इतिहास लेखन व इतिहासकार
4.1.04.1. फेबियस पिक्टर
4.1.04.2. एम.पोर्सियस केटो
4.1.04.3. लिवी
4.1.04.4. टेसीटस
4.1.05. सारांश
4.1.06. बोध प्रश्न
4.1.07. संदर्भ ग्रंथ सूची

4.1.01. उद्देश्य

1. यूनान-रोमन इतिहास लेखन की अवधारणा एवं विकास की जानकारी देना।
2. यूनान-रोमन इतिहासकारों के लेखन के बारे में बताना।

4.1.02. प्रस्तावना

मानव इतिहास विकास की प्रक्रिया पर आधारित है, जिनके कारण समय-समय पर सामाजिक आवश्यकताओं और मूल्यों में भी परिवर्तन होता रहा है। यही कारण है कि भिन्न-भिन्न काल के विद्वानों और इतिहासकारों ने अपनी आवश्यकताओं को दृष्टिगत करते हुए इतिहास लेखन की ओर ध्यान दिया है। उत्थान और पतन प्रकृति का शाश्वत नियम है और मानव आदिकाल से संघर्षरत रहा है। इतिहास में मुख्य रूप से दो स्वरूप प्रारंभ में पाए जाते थे प्रथम कथात्मक और दूसरा वैज्ञानिक। प्रथम में इतिहास के लेखन का स्वरूप मात्र एक कहानी रहा है, परंतु वैज्ञानिक अवधारणा के समर्थक प्रत्येक घटना व उसके स्वरूप को बदलने में सफल रहे हैं।

यूनानी-रोमन इतिहास की अवधारणा का मुख्य आधार मानववाद था और इतिहास में मानव के कार्यकलापों, उसकी उपलब्धियों और उत्थान-पतन का वर्णन स्पष्ट रूप से वर्णित किया जाता था। मानव

विवेक और बुद्धि के साथ-साथ इतिहास के क्षेत्र में विकसित होता गया। तत्कालीन लेखकों ने व्यक्ति की अभिरुचि का ध्यान रखते हुए कल्पना के आधार पर अतीत और भविष्य का वर्णन प्रस्तुत किया है। प्रारंभिक इतिहास लेखक हेरोडोटस से लेकर आधुनिक विद्वान टायनबी (Toynbee) तक विकास और परिवर्तन की प्रक्रिया निरंतर दृष्टिगोचर होती रही है। यूनान और रोम के इतिहासविदों के विचारों और उनकी लेखन कला को स्पष्ट रूप से समझने के लिए हम अलग शीर्षक के अंतर्गत उनका अध्ययन करके उनके संबंध में पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

4.1.03. यूनानी इतिहास लेखन व इतिहासकार

इतिहास लेखन के क्षेत्र में यूनानी इतिहासकारों का अद्वितीय योगदान रहा है। उन्होंने इतिहास को साहित्य और दर्शन के समान ज्ञान की एक शक्तिशाली स्वतंत्र शाखा के रूप में स्थापित किया है। इतिहास के प्रति रुचि के कारण यूनानी इतिहासकारों ने सर्वप्रथम ऐतिहासिक साहित्य की रचना की ओर ध्यान दिया। ये केवल अपनी पारिवारिक वंश परंपरा में ही रुचि नहीं रखते थे, अपितु तत्कालीन भूगोल एवं वातावरण के ज्ञान की प्राप्ति के प्रति भी सजग थे। यही कारण है कि उनके द्वारा रचित इतिहास में उपरोक्त दोनों तत्व विशद रूप से वर्णित पाए गए हैं।

4.1.03.1. होमर (Homer)

ऐतिहासिक महत्व की प्रथम रचना होमर की कविताओं के रूप में यूनानी विद्वानों द्वारा प्रस्तुत की गई, परंतु इसके लेखक के संबंध में इतिहासकारों और विद्वानों के मध्य तीव्र मतांतर है। कवि को नाम के संबंध में अपना ध्यान केंद्रित करना चाहिए जो यह प्रमाणित करता है कि कवि के सौंदर्य के प्रति दृष्टिकोण उसकी जीवंत बुद्धिमत्ता का परिचायक है। प्रो. शॉटवेल (Shotwell) ने स्पष्ट लिखा है कि ''होमर की कविताओं का श्रेय उसी प्रकार से यूनानियों को दिया जा सकता है, जिस प्रकार से ओल्ड टेस्टामेंट के लेखन का यहूदियों को दिया जाता है।''

4.1.03.2. हेसियड (Heriod)

होमर के पश्चात् दूसरा यूनानी विद्वान हेसियड कहा जाता है, जिनका ध्यान मुख्यतः धर्म की ओर था, परंतु उन्होंने इतिहास लेखन की ओर भी विशेष ध्यान दिया। उन्होंने ईश्वर के जन्म और जनता के प्रति उसके व्यवहार का वर्णन भी अपनी पुस्तक में किया है। हेसियड ने युग चक्र सिद्धांत के आधार पर चार धातुओं के नाम के आधार पर चार युगों का वर्णन किया है, जो स्वर्ण युग, रजत युग, कॉस्य युग और लौह युग के नाम से जाने जाते हैं। अंतिम काल को उन्होंने मानव के दुःखों और उत्पीड़न से समय के रूप में वर्णित किया है, जबकि प्रथम युग की उसने अत्यधिक प्रशंसा की है। दूसरे अर्थात् रजत युग तक आते-आते मानव की स्थिति में हीनता की भावना का उदय होने लगा था, तो कांस्य युग में व्यक्ति भावना शून्य होने के कारण परस्पर गृह कलह और संघर्ष की ओर अग्रसर होने लगा था।

हेसियड ने युगचक्र सिद्धांत के आधार पर होने वाले परिवर्तनों की कल्पना की है। जिस प्रकार दिन, रात एवं ऋतुओंका आवागमन निरंतर होता रहता है उसी प्रकार ब्रह्मांड में निरंतर यह चक्र चलता रहता है, परंतु कॉलिंगवुड़ हेसियड के वर्णन से सहमत नहीं है और उन्होंने युगचक्र सिद्धांत की आलोचना करते हुए उसे 'अनैतिहासिक अवधारणा' लिखा है, क्योंकि उनकी मान्यता है कि मानव में

निःसंदेह धार्मिक प्रवृत्ति है, किंतु इतिहास का आधार धर्म न होकर मानव तथा उसके क्रियाकलाप होते हैं।

सच तो यह है कि यूनान में इतिहास लेखन का वास्तविक स्वरूप छठी शताब्दी ईसा-पूर्व से प्रारंभ हुआ। कविता के माध्यम को उचित न मानते हुए कालांतर में विद्वानों ने गद्यके माध्यम से इतिहास लिखना प्रारंभ किया। उन्होंने केवल पूर्व के लेखकों के वर्णन को अपना आधार न बनाकर खोज और आलोचना के माध्यम से इतिहास लेखन की ओर ध्यान दिया। प्रो. शाटवेल ने उनके इस प्रयास की अत्यधिक प्रशंसा की है।

4.1.03.3. हिकेटियस (Hecataeus)

यूनानी लेखकों में सर्वप्रथम हमें हिकेटियस (Hecataeus) का वर्णन प्राप्त होता है, जो हेरोडोटस का पूर्वगामी था। उनका जन्म छठी शताब्दी ई.पू. में यूनान के एक समृद्ध परिवार में हुआ था। उन्होंने मिस्र का विस्तृत भ्रमण करने के बाद अपने ग्रंथ को लिखा, जिसके प्रथम भाग में उन्होंने ईरानी संसार का वर्णन प्रस्तुत किया है और दूसरे में प्राचीन अवधारणाओं की आलोचना व खंडन किया। उन्होंने अपने संदर्भ में लिखा है, ''मैं केवल वही लिखता हूँ, जिसे मैं सत्य समझता हूँ, क्योंकि यूनानियों की भिन्न-भिन्न और हास्यास्पद कहानियाँ हैं।'' कालांतर में उनके लेखन को आधार मानकर अन्य विद्वानों ने अपनी रचनाओं को पूर्ण किया, जो उनकी क्षमता और योग्यता का स्पष्ट प्रमाण हैं।

4.1.03.4. हेरोडोटस (Herodotus)

हेरोडोटस को सच्चे अर्थ में 'इतिहास के जनक' की उपाधि प्रदान की जाती है, क्योंकि इस क्षेत्र में उनका योगदान सर्वाधिक था। उनका जन्म 48 ई.पू. में एशिया माइनर के समुद्री तट पर स्थित हालिकार नेसस तुर्की में हुआ था। उनकी यह मान्यता थी कि व्यक्ति का भाग्य उसके निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है और देवता भी अपने भाग्य द्वारा ही नियंत्रित होते हैं। अतः इतिहास की गति का आधार ईश्वर की इच्छा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। व्यक्ति के कार्यों को महत्व प्रदान करते हुए हेरोडोटस ने अपने इतिहास लेखन में 'पर्शियन वार्स' को अपना मुख्य विषय बनाया और उसका वर्णन इस सुंदर ढंग से किया कि वह केवल युद्धों का वर्णन प्रतीत न होकर युग का इतिहास जान पड़ता है। उन्होंने अपने वर्णन में यूनानियों की विजय का सजीव वर्णन प्रस्तुत किया है। उनकी सर्वप्रमुख विशेषता यह है कि न तो उनके वर्णन में कोई पक्षपात है और न ही पूर्वग्रह। एक निष्पक्ष इतिहासकार के रूप में अत्यंत सराहनीय है। उन्होंने ईरानियों की उनकी बहादुरी के कारण अत्यधिक प्रशंसा की है और प्राकृतिक कारकों को भी महत्व प्रदान किया है तथा मानव के सुख-दुःख के लिए व्यक्ति को स्वयं जिम्मेदार माना है। वे मानवीय कार्यों को प्रकृति, भौगोलिक परिस्थिति और वातावरण के प्रभाव का परिणाम मानते हैं। एक कथाकार के रूप में वे अद्वितीय हैं। उन्होंने सर्वप्रथम ऐतिहासिकता को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया। उनकी लेखन कला सुंदर, स्पष्ट और प्रभावशाली है एवं उन्होंने घटनाओं का उत्कृष्ट वर्णन प्रस्तुत किया है।

हेरोडोटस की आलोचनात्मक दृष्टि अत्यंत गहन और तीक्ष्ण थी और वे असंबद्ध घटनाओं के समूह को सुव्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत करने की अद्भुत क्षमता रखते हैं। वे इतिहास लेखन में अभिलेखों के महत्व से भी भली भाँति अवगत थे। उन्होंने ही सर्वप्रथम 'हिस्ट्री' शब्द का उपयोग अनुसंधान के संदर्भ में

किया था। कॉलिंगवुड ने लिखा है कि ''उनके इतिहास लेखन का एक मात्र उद्देश्य भावी पीढ़ी के लिए अतीत के मानवीय कार्यों को सुरक्षित रखना है।''

4.1.03.5. थ्यूसीदाइदीज (Thucydides)

यूनानी इतिहासकारों में वे दूसरे महत्वपूर्ण विद्वान थे, जिन्होंने इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किया। एक इतिहासकार के रूप में उन्होंने हेरोडोटस को भी पीछे छोड़ दिया था। इतिहास के प्रति उनका दृष्टिकोण कदाचित् हेरोडोटस से भिन्न था। उन्होंने न केवल इतिहास को महाकाव्यात्मक कविता और अलौकिकवाद से अलग कर दिया अपितु उसमें विश्लेषणात्मक पद्धति को महत्व प्रदान करके गंभीर एवं वर्णनात्मक इतिहास लेखन को प्रारंभ किया। बी.शेख अली ने थ्यूसीदाइदीज के संदर्भ में लिखा है कि ''वे प्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने हमें इतिहास के मूल सत्य से अवगत कराया। जिसको अक्सर हम दोहराते रहते हैं कि इतिहास घटनाओं और तथ्यों का अध्ययन है। जिसके माध्यम से हम तर्क, निश्चित पद्धति और स्थायी क्रमबद्धता से जुड़े रहते हैं।''

थ्यूसीदाइदीज के लेखन का प्रमुख विषय पेलोपोनेसियन (Poloponnesian) युद्ध (431-404 ई.पू.) थे। जिनके साथ वे इतने निकटता से संबद्ध थे और उनसे कभी अलग नहीं हुए थे। वे युद्ध शास्त्र में पारंगत थे और उन्होंने पेलोपोनेसियन युद्ध की घटनाओं का अत्यंत सजीव वर्णन प्रस्तुत किया है। उन्होंने अपने लेखन में केवल प्रत्यक्ष रूप से संबंधित तथ्यों का वर्णन किया है और असंबंधित तथ्यों की अवहेलना की है। वे कथा, व्याख्यान और कहावत में विश्वास नहीं करते थे, अपितु लेखन से पूर्व उन्हें तर्क की कसौटी पर कसते थे, ताकि घटनाओं के भीतर छिपी मनोवृत्ति का अध्ययन और विश्लेषण संभव हो सके। वास्तव में वे एक शुद्ध बुद्धिवादी विद्वान थे। कॉलिंगवुड ने स्पष्ट लिखा है, ''हेरोडोटस इतिहास के जन्मदाता हो सकते हैं, किंतु मनोवैज्ञानिक इतिहास के जनक थ्यूसीदाइदीज हैं।''

समस्त गुणों के होते हुए भी थ्यूसीदाइदीज के वर्णन में कतिपय दोष पाए जाते हैं। प्रसिद्ध विद्वान बर्नेस के अनुसार, ''समय की अवधारणा को वे ठीक प्रकार से समझने में असफल रहे और न ही ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में वह तथ्यों को देख सके तथा न ही वे हेरोडोटस की भाँति भौगोलिक पहलुओं का ऐतिहासिक परिस्थितियों में महत्व आकलन कर सके''। अंत में हम यह कह सकते हैं कि थ्यूसीदाइदीज एक युगांतकारी विचारक एवं इतिहासकार थे। उन्होंने तथ्यों व घटनाओं का स्पष्ट वर्णन करते हुए विश्लेषणात्मक पद्धति के द्वारा इतिहास लेखन के माध्यम से प्रसिद्धि की चरम सीमा को प्राप्त किया था।

4.1.03.6. जेनोफोन (Xenophon)

यूनानी इतिहासकार जेनोफोन ने थ्यूसीदाइदीज के युग में और अधिक वृद्धि की। उनके द्वारा लिखित पुस्तक 'हेलेनिका' में 411 ई.पू. से 363 ई.पू. तक की घटनाओं का वर्णन उपलब्ध होता है। जेनोफोन बड़े विद्वान व्यक्ति थे। उन्होंने इतिहास के अतिरिक्त दर्शनशास्त्र, अर्थशास्त्र और राजनीति पर भी लेखन कार्य किया। हेलेनिका (Hellenica) के साथ ही उन्होंने इतिहास पर एक अन्य ग्रंथ 'एनाबेसिस' (Anabasis) भी लिखा। अपने ऐतिहासिक ग्रंथ में इपामीनोन्दास (Epaminondas) और पेलोपीदास (Pelopidas) के जीवन वृत्त के संबंध में विस्तृत वर्णन किया। साथ ही उन्होंने एनाबेसिस (Anabasis) में दस हजार सैनिकों के अभियान की जीवन गाथा का वर्णन किया। उनके ग्रंथ में स्पार्टा के गणतंत्र का भी उल्लेख उपलब्ध होता है। वे इतिहास की उपयोगिता में विश्वास करते थे, परंतु उनके लेखन में सक्ष्मता

और निष्पक्षता का अभाव स्पष्ट दिखाई देता है। फिर भी यूनानी इतिहास लेखन में उनकी भूमिका को नकारा नहीं जा सकता है।

4.1.03.7. पोलिबियस (Polybius)

रोमन इतिहासकार पोलिबियस का यूनान के इतिहास लेखन में अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान है। वह थ्यूसीदाइदीज के पश्चात् दूसरे सर्वाधिक प्रसिद्ध इतिहासकार स्वीकार किए जाते हैं। वह इतिहास के 'युग चक्रवादी सिद्धांत' में विश्वास करते थे। 'विश्व साम्राज्य' की सर्वप्रथम कल्पना पोलिबियस ने ही की थी। उन्होंने चालीस खंडों में रोम के साम्राज्य के संवैधानिक विकास का वर्णन किया। यूनानी और रोमन इतिहास लेखन में पोलिबियस का दृष्टिकोण पूरी तरह से भेदभाव रहित था। उन्होंने हेलास (Hellas) के पतन एवं रोम के साम्राज्य के उत्थान का भी सुंदर वर्णन अपने ग्रंथ में किया है। पोलिबियस रोम के नेतृत्व में विश्व के एकीकरण की भावना से अत्यधिक उत्तेजित थे इसलिए उन्होंने 'आकमेनिकल हिस्ट्री' (विश्व इतिहास) की रचना की थी।

पोलिबियस पूर्णतया बुद्धिवादी थे। वे राज्य के संदर्भ में दैनिक कारणों को महत्व प्रदान नहीं करते थे। कार्य-कारण के संबंध में इनकी अवधारणा है कि प्रत्येक घटना के घटित होने में कुछ कारणों का योगदान होता है। कुछ विद्वानों की उनके संदर्भ में यह मान्यता है कि जब तक इतिहास का अस्तित्व रहेगा, पोलिबियस के आदर्श सदैव पाठकों व लेखकों को अपनी ओर आकर्षित करते रहेंगे। पोलिबियस ने स्वयं लिखा है, ''जिस प्रकार दृष्टिहीन व्यक्ति का कोई अस्तित्व नहीं रहता, उसी प्रकार सत्य को अलग कर देने से इतिहास एक व्यर्थ की महत्वहीन कहानी मात्र बन जाता हैं।'' वस्तुतः पोलिबियस के आलोचनात्मक इतिहास लेखन ने कालांतर में रोमन इतिहासकारों को अत्यधिक प्रेरणा प्रदान की।

4.1.04. रोमन इतिहास लेखन व इतिहासकार

यूनानियों की तुलना में रोमन इतिहास लेखन की परंपरा का स्वरूप पिछड़ा हुआ है। उनके लेखन में यूनानी इतिहासकारों के समान न तो तीक्ष्णता है और न ज्ञान। इसलिए रोमन इतिहासकारों को यूनानी इतिहासकारों के समान श्रेणी में नहीं रखा जाता है। चूँकि उन्होंने लंबे समय तक इतिहास लेखन की ओर कोई ध्यान नहीं दिया, अतः उनका चिंतन मौलिक नहीं है। वे साधारण रूप में अपने पूर्वगामी लेखकों के विचारों का ही समर्थन और अनुशरण करते रहे। यही कारण है कि रोम के इतिहास लेखन में हेरोडोटस और थ्यूसीदाइदीज के समान कोई इतिहासकार दिखाई नहीं पड़ता है।

रोम के इतिहासकार केवल वर्णनात्मक पद्धति का प्रयोग करते थे। उनका दृष्टिकोण मुख्यतः राजनीतिक व उपयोगितावादी था। वास्तव में रोम के लोगों ने ऐतिहासिक वर्णन की परंपरा यूनानियों से ग्रहण की थी और इस क्षेत्र में वे यूनानियों से अत्यधिक प्रभावित थे इसलिए उनके इतिहास लेखन में यूनानी प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। द्वितीय पूनिक (Punic) युद्धों के समय तक रोमन विद्वानों ने इतिहास लेखन की ओर कोई विशेष ध्यान आकर्षित नहीं किया था। उन्होंने हेरोडोटस और थ्यूसीदाइदीज जैसे महान यूनानी विद्वानों के ग्रंथों के बाद ही इस दिशा में अपना कार्य प्रारंभ किया और अपनी उपलब्धियों एवं कार्यों को लिपिबद्ध किया।

4.1.04.1. फेबियस पिक्टर (Fabius Pictor)

इन्हें प्रारंभिक रोमन इतिहासकार स्वीकार किया जाता है। अपनी 'गाथाओं' में उसने एनीस (Aeneas) के समय से लेकर अपने समय तक के इतिहास का वर्णन किया है। उनके परिवार का अलग संग्रहालय था, जहाँ उन्होंने उन सभी दस्तावेजों का अध्ययन किया, जो उपलब्ध थे। अपने इतिहास के ग्रंथ में उन्होंने केवल बड़े आदमियों और सामंतों की जीवन शैली व रहन-सहन का वर्णन किया है। उन्होंने तत्कालीन साधारण वर्ग के जीवन से संबंधित समस्याओं की ओर बिल्कुल भी ध्यान नहीं दिया, परंतु उसमें पिक्टर का कोई दोष नहीं था, क्योंकि उस समय तक इतिहास को केवल बड़े और श्रेष्ठ लोगों की जीवन गाथा का ही विचार समझा जाता था। कदाचित् यह तात्पर्य भी नहीं है कि फेबियस पिक्टर द्वारा लिखित इतिहास का कोई महत्व नहीं है। वस्तुतः उनके द्वारा लिखित इतिहास को कालांतर में यूनानी और रोमन इतिहासकारों ने महत्वपूर्ण साक्ष्य के रूप में प्रयोग किया।

4.1.04.2. एम. पोर्शियस केटो (M. Porcius Cato)

केटो को रोमन इतिहास लेखन पद्धति का पिता स्वीकार किया जाता है, उनके उदय के साथ ही रोमन इतिहास लेखन की परंपरा में परिवर्तन आया। 'ओरिजिन्स' (Origines) नामक उनका ग्रंथ सात भागों में लिखा गया था। अपने इस ग्रंथ में उन्होंने केवल रोम की राजनीतिक दशा का वर्णन किया है और उस समय की सामाजिक स्थिति का कोई वर्णन नहीं किया। अपने लेखन में केटो ने नवीन लेखन शैली व पद्धति को अपनाया था। उसकी भाषा भी तत्कालीन समय में प्रयोग की जाने वाली भाषा से भिन्न थी।

4.1.04.3. लिवी (Livy)

केटो और लिवी के मध्य कई इतिहासकारों का वर्णन मिलता है, जिनमें से एन्टीपेटर, (Antipater) जूलियस सीजर (Julius Caesar) और क्रिस्पस (Crispus) का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन विद्वानों ने अपने-अपने समय में पृथक-पृथक साधनों से रोमन इतिहास लेखन को समृद्ध बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

लिवी न केवल एक प्रसिद्ध इतिहासकार थे, अपितु रोमन इतिहास लेखन में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते थे। अपने समकालीन इतिहासकार टेसिटस (Tacitus) की भाँति उन्हें भी रोम का हेरोडोटस और थ्यूसीदाइदीज कहा जाता है। उन्होंने अपने ग्रंथों की रचना रोमन सम्राट आगस्तस (Augustus) के संरक्षण में पूर्ण की थी। अपनी प्रथम पुस्तक की प्रस्तावना में उन्होंने रोमन इतिहास को प्राचीन व आधुनिक दो भागों में विभाजित किया। उनके द्वारा लिखित सौ से भी अधिक पुस्तकें उनकी योग्यता और क्षमता का प्रत्यक्ष प्रमाण है, परंतु दुर्भाग्यवश उनके द्वारा लिखित पुस्तकों में से 35 पुस्तकें ही उपलब्ध हैं और शेष का अस्तित्व नष्ट हो चुका है। कॉलिंगवुड ने उनके संदर्भ में लिखा है, ''प्रारंभिक रोम के इतिहास में परंपरागत अभिलेखों को एकत्र करके उन्हें एक पुस्तक के रूप में संकलित करके रोमका इतिहास लिखना उनकी योग्यता का स्पष्ट प्रमाण था, परंतु उन्होंने अपने लेखन में कभी मौलिकता का दावा प्रस्तुत नहीं किया।'' लिवी के अनुसार इतिहास का उत्तरदायित्व केवल इतिहास को प्रस्तुत करना या घटनाओं को प्रस्तुत करना नहीं था, अपितु मनुष्य में नैतिकता और देशप्रेम को जागृत करना भी था।

अपने इतिहास लेखन में क्षमता और कुशलता के कारण लिवी का स्थान रोमन युग के इतिहासकारों में महत्वपूर्ण है। एकमात्र वे ही ऐसे इतिहासकार थे, जिनके तत्कालीन शासक के साथ अत्यंत निकट संबंध थे।

4.1.04.4. टेसीटस (Tacitus)

कुछ विद्वानों ने टेसीटस को रोम के थ्यूसीदाइदीज की संज्ञा प्रदान की है। उनकी प्रसिद्ध ऐतिहासिक रचनाओं में एक 'ऐनल्स' (Annals) में उन्होंने सम्राट आगस्टस की मृत्यु से लेकर 69 ई. तक का वर्णन किया है। वे प्रजातंत्रात्मक संस्था के महान प्रेमी थे। टेसीटस ने दूसरी रचना 'हिस्ट्रीज' में भी फ्लेवियन (Flavian) सम्राट का वर्णन किया है। उनकी इतिहास लेखन की शैली प्रवक्ता के समान है। उनकी विश्लेषणात्मक शक्ति अद्वितीय थी और वे तथ्यों और घटनाओं को विश्लेषण के बाद ही अपने ग्रंथ में स्थान देते थे। प्रो. कॉलिंगवुड ने लिखा है, ''टेसीटस के द्वारा लिखित इतिहास रोमन ऐतिहासिक अवधारण का मरूस्थल हैं।'' टेसीटस का मूल्यांकन करते हुए प्रो. शाटवेल ने लिखा है ''कुछ त्रुटियों के बाद टेसीटस का नाम विश्व के इतिहासकारों में अग्रणीय है, जिनका मूल कारण उनकी चरित्र चित्रण की अद्भुत क्षमता नहीं, अपितु इतिहास के प्रति उनका दृष्टिकोण है, जिनके द्वारा वह लोगों के अच्छे व बुरे कार्यों का लेखा प्रस्तुत करते हैं।''

संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि टेसीटस एक तेज मस्तिष्क के विद्वान थे। प्रथम उन्होंने इतिहास के महान व्यक्तियों के उद्देश्यों को समझने का प्रयास किया और तत्पश्चात् उन्हें अपने लेखन का विषय बनाया।

4.1.05. सारांश

इतिहास लेखन के क्षेत्र में रोमन इतिहासकार सदैव यूनानियों के मुकाबले में पिछड़े हुए रहे जिनके लिए मुख्य रूप से निम्नलिखित कारण उत्तरदायी कहे जा सकते हैं। उनके पिछड़ेपन के कारण कुछ विद्वानों ने उन्हें अनैतिहासिक भी कहा है।

1. रोमन विद्वानों ने मूल साक्ष्यों को महत्व नहीं दिया और न ही तथ्य के आकलन के लिए विस्तृत प्रयास किए। उनके इतिहास लेखन का आधार सरकारी सूचनाएँ मात्र थी। इन सूचनाओं को देने वाले लोग भी कुशल नहीं थे और उन्होंने सूचना की विश्वसनीयता को प्रमाणित करने का कोई यत्न नहीं किया।
2. रोम के इतिहासकारों का दृष्टिकोण विश्लेषणात्मक और आलोचनात्मक नहीं था। वे घटना को लिखकर ही संतुष्ट हो जाते थे और वैज्ञानिक दृष्टिकोण की ओर उनका ध्यान कभी आकर्षित नहीं हुआ।
3. रोम के विद्वानों ने पराजित देशों की भावनाओं को जानने का कभी प्रयास नहीं किया, अतः उनके अभिलेख सत्य पर आधारित नहीं थे।
4. रोम के इतिहासविद सदैव दरबारी शानशौकत और आनंद में निमग्न रहते थे। उन्हें तत्कालीन रीति-रिवाजों, तौर-तरीकों और व्यापार का भी उचित ज्ञान नहीं था और न ही वे साधारण लोगों की जीवनशैली से अवगत थे। अतः उन्होंने अपने लेखन में अपने व्यक्तिगत ज्ञान और अनुभव का प्रयोग नहीं किया।

वस्तुतः यूनानी व रोमन इतिहासकार पूरी तरह एक दूसरे से कोसों दूर थे। यूनानियों का दृष्टिकोण सत्य पर केंद्रित था और उनके इतिहास लेखन का क्षेत्र भी बहुत विकसित था, जबकि रोम के विद्वानों ने

गुण को महत्व न देकर मात्रा की ओर ध्यान दिया और मानव की सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक गतिविधियों को पूरी तरह से नकार दिया। यही कारण है कि यूनानी इतिहासकारों की तुलना में रोम के इतिहासकार अत्यंत पीछे रह गए। फिर भी यह स्पष्ट है कि दोनों देशों के इतिहासकारों ने अपने युग की परिस्थितियों और आवश्यकताओं को दृष्टि में रखते हुए उद्देश्यपूर्ण इतिहास की रचना में महत्वपूर्ण प्रयास किए।

4.1.06. अभ्यासार्थ प्रश्न

1. यूनानी इतिहास लेखन एवं इतिहासकारों पर प्रकाश डालिए।
2. रोमन इतिहास लेखन पद्धति की विवेचना कीजिए।
3. ग्रीक-रोमन इतिहास लेखन पद्धति की समीक्षा कीजिए।

4.1.07. संदर्भ ग्रंथ

1. बेहार, राम कुमार एवं पाण्डेय, श्रृंषिराज, इतिहास पद्धति एवं इतिहास लेखन, छत्तीसगढ़ शोध संस्थान (2003). रायपुर।
2. गुप्त, मानिक लाल. (2004). इतिहास-लेखन, धारणाएँ एवं शोध पद्धतियाँ. कानपुर : अमित पब्लिकेशन।
3. खुराना, के.एल. (2011). इतिहास-लेखन, धारणाएँ तथा पद्धतियाँ. आगरा : लक्ष्मीनारायण अग्रवाल।
4. राधेशरण. (2006). इतिहास एवं इतिहास लेखन, मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल।
5. सिंह, परमानन्द. (2003). इतिहास दर्शन. वाराणसी : मोतीलाल बनारसी दास।
6. पांडे, गोविंद चंद्र (1971). इतिहास स्वरूप एवं सिद्धांत राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी।
7. चौबे, झारखंड. इतिहास दर्शन. वाराणसी विश्वविद्यालय प्रकाशन।

खंड - 4 : इतिहास लेखन की पद्धति-प्राचीन और मध्यकालीन
इकाई - 2 : अरेबियन

इकाई की रूपरेखा

4.2.01. उद्देश्य
4.2.02. प्रस्तावना
4.2.03. अरबी इतिहास लेखन एवं इतिहासकार
4.2.3.01. इब्नइसाक (Ibn Ishaq)
4.2.3.02. हिसांम अल-कल्बी (Hisham Ibn al – Kalbi)
4.2.3.03. अल्बकिदी
4.2.3.04. अल्बनादूरी, अल दिनावरी (Al Dinawari) अली इब्न ताहिर तथा अहमद इब्न-अबी याकूब
4.2.3.05. अल-तबारी (Al-Tabari)
4.2.3.06. अलमसूदी
4.2.3.07. अलबरुनी
4.2.3.08. इब्न-ख़ल्दून
4.2.04. सारांश
4.2.05. बोध प्रश्न
4.2.06. संदर्भ ग्रंथ सूची

4.2.01. उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप -

1. अरबी इतिहास लेखन की विषय वस्तु को समझने का प्रयास करना।
2. अरबी इतिहास लेखन के प्रमुख इतिहासकार के बारे में जानना।

4.2.02. प्रस्तावना

मध्य एशिया में इतिहास लेखन की दो धाराएँ प्रारंभ और विकसित हुईं— अरबी और फारसी इतिहास लेखन। इन्हें मुस्लिम या इस्लामिक इतिहास लेखन के नाम से भी जाना जाता है। 7वीं शताब्दी में हजरत मुहम्मद साहब के द्वारा इस्लाम धर्म की स्थापना के साथ मुस्लिम इतिहास लेखन का प्रारंभ हुआ। इतिहास लेखन का तब मूल उद्देश्य इस नव प्रतिपादित इस्लाम धर्म की प्रमुख बातों, विचारों और परंपराओं को लोगों तक पहुँचाना था और इस प्रकार पैगंबर के साथ उनके संबंध मजबूत करना था। इसका मूल उद्देश्य धार्मिक था। कालांतर में विभिन्न राजवंशों के शासकों ने अपने प्रश्रय में इतिहासकारों को रख कर इतिहास लेखन करवाया, जिसमें अपने काल के महत्वपूर्ण विवरण और विशेषकर विजयों का उल्लेख था। प्रारंभिक मुस्लिम इतिहासकारों ने इस प्रकार मुहम्मद साहब की जीवन से जुड़ी घटनाएँ, आख्यान एवं इस्लाम के द्वारा हासिल की गई विजयों को ही, इतिहास की विषय वस्तु बनाया।

अरबी भाषा में लिखी गई प्राचीनतम ऐतिहासिक कृतियाँ अब्बासी शासनकाल से संबंधित हैं। पैगंबर मुहम्मद के नाम तथा जीवन से संबंधित धार्मिक परंपराओं को इतिहास की विषय वस्तु स्वीकारने के पूर्व किंवदंतियों को भी मुस्लिम इतिहास लेखन में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया था, जिसे पूर्व इस्लामिक युग के नाम से जाना जाता है।

4.2.03. अरबी इतिहास लेखन एवं इतिहासकार

4.2.3.01. इब्नइसाक

मुहम्मद साहब की जीवनी— 'सीरत रसूल अल्लाह' (The Biography of the prophet) (पैगंबर की आत्मकथा) सर्वप्रथम इब्नइसाक ने लिखी, जिसमें पैगंबर से संबंधित तथ्य, परंपराएँ एवं इस्लाम के उद्भव की जानकारी दी। यह पुस्तक परवर्ती इतिहासकारों द्वारा उपयोग की गई है और अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जाती है। इब्नहिसाम (Ibn Hisam) ने भी इसी विषय पर 'सीरत इब्न हिसाम' (Sirat Ibn Hisam) (Biography of Mohammad) के नाम से पुस्तक लिखी, जिसमें इब्नइसाक के पूर्व उल्लिखित पुस्तक का उल्लेख किया। धार्मिक परंपराओं पर आधारित यह इतिहास की प्रथम पुस्तक है। इब्नइसाक अलमदीना का रहने वाला था।

4.2.3.02. हिसांम अल-कल्बी

पूर्व इस्लाम युग के इतिहासकारों में अल्कूफा के हिसांम अल-कल्बी (819 ई.) का नाम अत्यधिक महत्वपूर्ण है। उनके द्वारा अनेक पुस्तकें लिखी गईं, जिनमें से 29 पुस्तकों की सूची अल्फिहरिसत में मिलती हैं। वर्तमान में इस सूची में से केवल 3 कृतियाँ ही उपलब्ध हैं। परवर्ती इतिहासकार अल-तबारी, याकुत आदि की रचनाओं में इनके उदाहरण बड़ी मात्रा में मिलते हैं।

4.2.3.03. अल्बकिदी (747-823 ई.)

इस्लामिक युद्धों और पैगंबर के युद्ध भी अरबी इतिहास लेखन की महत्वपूर्ण विषय वस्तु हैं। अल्बकिदी (747-823 ई.) अब्बासी शासकों का दरबारी इतिहासकार था, जिसने इस्लामी युद्धों और पैगंबर के युद्धों का इतिहास लिखा।

4.2.3.04. अल्बनादूरी, अल दिनावरी (Al Dinawari) अली इब्न ताहिर तथा अहमद इब्न-अबी याकूब

अल्बनादूरी ने 'Conquest of country' (देश की विजय) नामक पुस्तक लिखी। इस काल की अन्य कृतियों में- अल दिनावरी की अरब और फारस का इतिहास तथा अली इब्न ताहिर ने बगदाद और इसके खलीफाओं का इतिहास लिखा। इस्लाम की विजयों के विषय में अरबी भाषा में लिखने वाले परसिया निवासी इतिहासकार अहमद इब्न-अबी याकूब (892 ई.) की दो पुस्तकें 'कुतुब-अब-बुल्दन' (Kitabo'L – Boldan) एवं 'अन्साब-असराफ' हैं। 'असराफ' में विभिन्न नगरों की विजय और विविध विधि संग्रहों को एकत्र कर प्रस्तुत किया गया है।

4.2.3.05. अल-तबारी

अरब इतिहासकारों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण दो इतिहासकार अबु-जाफर-मुहम्मद इबन-जरीर अल-तबारी तथा अबु-अल-हसन-अली अल मसूदी हैं। अल तबारी (838-929 ई.) की प्रमुख कृति 'तारिख अल-रसूल-वा-अल-मुलूक' (पैगंबरों तथा राजाओं का इतिहास) है। इस पुस्तक की रचना से पूर्व तबारी ने अनेक दूरस्थ देशों की यात्राएँ की और मुस्लिम विधि का गहन अध्ययन किया। वे पहले मुस्लिम इतिहासकार हैं, जिन्होंने इतिहास अध्ययन में आख्यान पद्धति का प्रयोग किया है। अपनी यात्राओं के प्रसंग में उन्होंने मौखिक परंपराओं का भी प्रयोग किया। इसके अतिरिक्त उपलब्ध साहित्यिक कृतियों का भी उन्होंने प्रयोग किया, जो उस समय बगदाद तथा अन्य विद्या केंद्रों में शेखों से प्राप्त हुई। उन्होंने पर्याप्त लेखन सामग्री इकट्ठी की थी, जिसे उन्होंने स्वयं भी एवं बाद के इतिहासकारों ने भी इस्तेमाल किया। उन्होंने कुरान की टीका भी लिखी। तबारी ने इतिहास लेखन में घटनाओं को तिथिक्रम के आधार पर व्यवस्थित किया एवं उन्हें हिजरी संवत् के आधार पर लिखा। सृष्टि की रचना के दिन से प्रारंभ होकर हिजरी 302 (905 ई.) तक लिखा गया। उनका इतिहास मूल पुस्तक के रूप में अप्राप्य है और प्राप्त संस्करण 10 गुणा अधिक बड़ा माना जाता है। तबारी को मुस्लमान इतिहासकारों का लिबी कहा जाता है।

4.2.3.06. अलमसूदी

अलमसूदी ने इतिहास लेखन की एक नई विधा का प्रारंभ किया। उन्होंने अल-तबारी की इतिवृत पद्धति के स्थान पर घटनाओं के विवरण और वर्षों को केंद्र में रखकर लेखन के स्थान पर राजवंशों, राजाओं और तत्संबंधी प्रसंगों के अनुसार व्यवस्थित रूप में इतिहास लेखन की पद्धति को अपनाया। इतिहास लेखन में ऐतिहासिक दृष्टांतों का सम्यक प्रयोग भी उन्होंने किया। अलमसूदी की एक विशेषता यह भी है कि उन्होंने राजनीति के अतिरिक्त लोगों के सांस्कृतिक एवं सामाजिक जीवन का भी विवरण दिया। अल-तबारी की तरह उन्होंने भी यात्राएँ की, वे बगदाद से जंजीबार तक गए। अपने जीवन के अंतिम दशक में वे सीरिया तथा मिस्र में रहे। यहीं उन्होंने 30 खंडों में अपनी प्रमुख रचना लिखी है, जो 'मुरुज-अल-धहाब-वा-मदीन-अल-जवाहार' अर्थात् सोने के चारागाह और जवाहरों की खान 'Meadows of Gods' के नाम से संक्षिप्त रूप में मिलती है। वे उदार और जिज्ञासु थे तथा भारतीय, पारसी, रोमन और यहूदी इतिहास के तरफ भी आकर्षित थे। वे प्राकृतिक जगह के तरफ भी आकर्षित थे। अपनी प्रथम रचना के प्रारंभ में ही वे लिखते हैं कि जहाँ आजकल सूखा स्थल है वहाँ पहले समुद्र था और जहाँ आजकल समुद्र है वह कभी सूखा स्थल था। इसके लिए वे भौतिक शक्तियों को उत्तरदायी मानते थे। अपनी मृत्यु के पूर्व उन्होंने इतिहास दर्शन और प्राकृतिक जगत के विषय में अपने विचारों को 'अल-तनबिह-वा-अल ईसराफ' नामक ग्रंथ में प्रस्तुत किया। मसूदी की तुलना हिरोडोटस से की जाती है। उसे (अरब का हेरोडोटस) 'Herodotus of Arabs' कहा जाता है। खल्दून जैसे इतिहासकारों ने भी मसूदी की लेखन विधा को अपना आधार बनाया।

तबारी और मसूदी के इतिहास ग्रंथों ने अखी इतिहास लेखन को उत्कृष्टता प्रदान की। उसी काल के मिस्कावाय (Miskawayh) (1030 ई.) ने प्रशासकीय और सैनिक विषयों पर निष्पक्षता पूर्वक लेखन किया। उन्होंने प्रमुख मुस्लिम शासकों की उपलब्धियों का भी मूल्यांकन किया।

4.2.3.07. अलबरुनी (973-1048)

अलबरुनी महमूद गजनवी के दरबार में थे और कुछ दिनों तक भारत में ठहरे थे। भारत में हिंदू धर्म और संस्कृति, आम जीवन, शासन को करीब से देखा और भारत का इतिहास लिखा। 1030 ई. में लिखी 'किताब-उल-हिंद' पूर्व मध्यकालीन भारत के इतिहास का महत्वपूर्ण स्रोत है, जिसमें हिंदू संस्कृति की आलोचना है।

4.2.3.08. इब्न-ख़ल्दून (1334-1406)

अरबी इतिहासकारों में इब्न-ख़ल्दून का विशेष स्थान है। वे इतिहास विज्ञान के संस्थापक माने जाते हैं और ऐतिहासिक दार्शनिक भी। उनके अनुसार— इतिहास केवल घटनाओं का वर्णन नहीं, बल्कि सामाजिक संबंधों के आंतरिक और बाह्य स्वरूपों की व्याख्या है। इब्न—ख़ल्दून की प्रमुख कृति- 'किताब-अल-इबार' है। इसमें उन्होंने ऐतिहासिक तथ्यों, अपने अनुभवों के आधार पर ऐतिहासिक घटनाओं के स्वरूप और कारकों का विश्लेषण किया है और तुलना करके उसके अंर्तनिहित रहस्यों को समझने का प्रयास किया है। उनका कहना था कि बाह्य घटनाएँ केवल वस्तु सामग्री प्रदान करती है। उनके पीछे निहित नियमों को ढूँढना चाहिए, जिनसे उन घटनाओं के स्वरूप व कारण का पता लग सके और उनकी व्याख्या की जा सके। इसी गूढ़ विचार को ध्यान में रखकर इब्न-ख़ल्दून ने अपनी पुस्तक के शीर्षक में 'इबार' (विवेक/दृष्टि) शब्द का प्रयोग किया 'तारीख' (इतिहास) का नहीं।

इस प्रकार इब्न—ख़ल्दून ने इतिहास के अध्ययन को एक दार्शनिक स्वरूप प्रदान किया। वे पहले मुस्लिम इतिहासकार थे, जिन्होंने इस दृष्टिकोण से इतिहास का अध्ययन एवं लेखन किया। ख़ल्दून ने ऐतिहासिक विकास में निरंतरता को देखा और बताया कि इतिहास में निरंतर परिवर्तन हो रहा है और इसीलिए गतिमान है। साम्राज्यों का उत्थान और पतन एक ऐतिहासिक घटना है, जो चक्रीय सिद्धांत पर आधारित है। मनुष्य की तरह ही समाज का जीवन काल होता है। प्रथम चरण ग्रामीण समाज से द्वितीय चरण शहरी समाज में प्रवेश के साथ समाज की आंतरिक शक्ति का क्षय होता है और बाह्य शक्ति जैसे कला, विज्ञान, जीवन स्तर आदि का विकास होता है, किंतु इस विकास में मुट्ठी भर लोगों के हाथों में सत्ता और संसाधन केंद्रित हो जाते हैं— विलासिता, अत्याचार एवं दमन बढ़ता जाता है और अंततः समाज का पतन हो जाता है। ऐसा ही क्रम साम्राज्य के साथ भी होता है। इस काल चक्र के तीन चरण हैं- (अ) युद्ध व विजय (ब) आवास व शहरीकरण (स) क्षय व विघटन। अलग-अलग समाज में विकास अलग-अलग क्रम में होता है— पतन का कारण अक्सर प्राकृतिक-पर्यावरण, जलवायु, भूमि की प्रकृति भी होता है।

इब्न—ख़ल्दून के अनुसार इतिहास के दो घटक हैं— संस्कृति का शास्त्र अथवा संस्कृति विज्ञान, जो ऐतिहासिक घटनाओं के स्वरूप से संबंधित है और दूसरा प्रमाण समीक्षा, जो घटनाओं की जानकारी देने वाले प्रमाणों की क्षमता और ज्ञान तथा उसके प्रयोजन से संबंधित है। संस्कृति उसके अनुसार मनुष्य से संबंधित है। उसमें बुद्धि विचार, आचरण है। संस्कृति पर उन्होंने वृहद चर्चा की है। उन्होंने संस्कृति के विविध प्रकारों, स्वरूपों और पक्षों पर विस्तार से लिखा और इतिहास 'विश्व संस्कृति पर आधारित मानव समाज का ज्ञान' करवाता है। अनेक इतिहासकारों की तरह उन्होंने इस्लामी अस्तिवाद के रूप में इतिहास की व्याख्या नहीं की। वे दैवीय उद्देश्य पर विश्वास नहीं करते थे। यद्यपि वे पैगंबरवाद और लोगों के धार्मिक अनुभवों को महत्व देते थे। वे पहले इतिहासकार हैं, जिन्होंने इतिहास को वस्तुनिष्ठ विज्ञान बताया। अपने इन सिद्धांतों को उन्होंने सात खंडों में लिखे तथा अपनी विश्व प्रसिद्ध ग्रंथ- 'Universal

History' में प्रस्तुत किया है। इब्न—ख़ल्दून केवल अरबी अथवा मुस्लिम इतिहासकारों में ही नहीं वरन् विश्व के प्रमुख इतिहासकारों और ऐतिहासिक दार्शनिकों की प्रथम पंक्ति में स्थान रखते हैं।

4.2.04. सारांश

इस प्रकार स्पष्ट है कि इस्लामी इतिहास लेखन की प्राचीनतम कृतियाँ अरबी भाषा में अब्बासी शासन काल में लिखी गई। प्रथम काल की रचनाएँ मूलतः किंवदंतियों पर आधारित धर्म प्रधान, धर्म को केंद्र में रखकर लिखी गई है। बाद की रचनाएँ इस्लाम की विजय और प्रचार से संबंधित हैं।14वीं शताब्दी में इब्न ख़ल्दून ने इतिहास लेखन को एक नई दिशा दी और इतिहास को एक नई दृष्टि से देखा। इतिहास को दार्शनिक नजरिए से देखकर उन्होंने संस्कृति के महत्व को समझाया और बतलाया कि इतिहास का मानव समाज के बारे में ज्ञान विश्व संस्कृति पर आधारित है और इसीलिए उसका विशिष्ट महत्व है।

4.2.05. बोध प्रश्न

1. अरबी इतिहास लेखन के प्रमुख इतिहासकारों का परिचय दीजिए।
2. अरबी इतिहास लेखन की पद्धति की विवेचना कीजिए।
3. अरबी इतिहास लेखन में इब्न—ख़ल्दून के योगदान को बताइए।

4.2.06. संदर्भ ग्रंथ सूची

01. अली, मुबारक. (2002). इतिहासकार का मतांतर: राजकमल प्रकाशन।
02. भारद्वाज, दिनेश चंद्र. (1965). भारतीय संस्कृति की रूपरेखा. भोपाल : कैलाश पुस्तक सदन।
03. चतुर्वेदी, हेरम्ब. (2003). मध्यकालीन इतिहास के स्रोत. इलाहाबाद : साहित्य संगम।
04. चौबे, झारखंड. (2001). इतिहास दर्शन. वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन।
05. गुप्ता, मानिक लाल. (2004). इतिहास लेखन, धारणाएँ एवं पद्धत्तियाँ. कानपुर : अमित पब्लिकेशन।
06. गुप्त, हीरालाल. (1990). प्राचीन भारत के आधुनिक इतिहासकार. वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन।
07. खुराना, के.एल., एवं बंसल, आर.के. इतिहास लेखन, धारणाएँ एवं पद्धतियाँ. आगरा : (2006) लक्ष्मीनारायण अग्रवाल।
08. पाण्डेय, गोविन्दचंद्र. (1988). इतिहास स्वरूप एवं सिद्धांत जयपुर : राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी।
09. पांचाल, एस.सी., बघेला, एच.एस., इतिहास के चिंतन के सिद्धांत एवं पद्धतियाँ जयपुर: रिसर्च पब्लिकेशन।
10. राय, कोलेश्वर. (2004). इतिहास दर्शन. इलाहाबाद : किताब महल।
11. राधेशरण. (2003). इतिहास और इतिहास लेखन. भोपाल : मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी।
12. श्रीधरन, ई. (2011) अनुवादक सलूजा, मनजीत सिंह, इतिहास-लेख. नई दिल्ली : ओरियंट ब्लैकस्वान।
13. सिंह, परमानंद (2005). इतिहास दर्शन. वाराणसी : मोतीलाल बनारसी दास।

14. थापर, रोमिला., नासिर., तैय्यबजी, पांडे, बिपनचंद्र, ज्ञानेन्द्र. इतिहास की पुर्नव्याख्या. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली (1996)
15. वर्मा, लाल बहादुर.; इतिहास के बारे में, बोध. इलाहाबाद : बोध प्रकाशन, इलाहाबाद (2003)

.

खंड-4 : इतिहास लेखन की पद्धति-प्राचीन और मध्यकालीन

इकाई-3 : मध्य यूरोपियन

इकाई की रूपरेखा

4.3.1. उद्देश्य

4.3.2. प्रस्तावना

4.3.3. इतिहास लेखन में ईसाइयत का प्रभाव

4.3.4. पुनर्जागरण कालीन मानववादी इतिहास लेखन

4.3.5. बुद्धिवादी युग में इतिहास लेखन

4.3.6. रूमानीवादी युग में इतिहास लेखन

4.3.7. मध्य यूरोपियन प्रमुख इतिहासकार व उनके इतिहास लेखन

4.3.7.1. इटली के प्रमुख दार्शनिक

4.3.7.2. जर्मनी के प्रमुख दार्शनिक

4.3.7.3. इंग्लैंड के प्रमुख दार्शनिक

4.3.8. सारांश

4.3.9. बोध प्रश्न

4.3.10. संदर्भ-ग्रंथ सूची

4.3.1. उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप -

1. मध्य यूरोपियन इतिहास लेखन व लेखन शैली से परिचित कराना।
2. इस काल के प्रमुख इतिहासकारों और उनके अध्ययन व चिंतन के केंद्रीय बिंदु से परिचित कराना।
3. इतिहास लेखन में काल क्रमानुसार आए परिवर्तन को समझाने का प्रयास करना।

4.3.2. प्रस्तावना

मानव जीवन में इतिहास का विशेष महत्व है। इतिहास अतीत में घटित घटनाओं, मानव समाज की अतीत की उपलब्धियों, क्रियाकलापों को जानने का प्रमुख साधन है। इतिहास एक ऐसा दस्तावेज है, जिसकी सहायता से मानव समाज के विविध पक्षों जैसे- समाज, धर्म, संस्कृति, राजनैतिक, कृषि, अर्थ, विज्ञान आदि के विषय में भी जानकारी प्राप्त हो सकती है। मनुष्य एक बौद्धिक व जिज्ञासु प्राणी है और संभवतः इसी प्रवृत्ति के कारण इतिहास और इतिहास लेखन की अवधारणा में समय के साथ परिवर्तन आता गया है। सभ्यता के विकास के साथ-साथ पृथक विकास की प्रक्रिया आरंभ हुई और इस तरह इतिहास लेखन निरंतर चलने वाली प्रक्रिया बन गई।

पुनरुत्थान कालीन यूरोप में आधुनिक संस्कृति का प्रादुर्भाव हुआ। इसी काल में बेकन ने ज्ञान को इतिहास काव्य और दर्शन के विभागों में बाँटकर इतिहास का संबंध स्मृति से सिद्ध किया। कामडेन (Camden) ने ब्रिटेन के ऐतिहासिक भूगोल और पुरातत्व का अध्ययन शुरू किया। सत्रहवीं और अठारहवीं सदी में विचार और चिंतन में परिवर्तन आया, जिसका प्रभाव इतिहास लेखन पर भी पड़ा। इसी काल में वोल्टेयर (Voltaire) ने इतिहास को मानव कार्यकलाप की समग्र अभिव्यंजनाओं का विवरण माना है। इस काल के एक श्रेष्ठ इतिहासकार एडवर्ड गिबन थे। इस काल के अन्य इतिहासविदों में कोंदासे और विको (Vico) उल्लेखनीय हैं। देखा जाए तो पुनरुत्थान काल मध्यकाल व आधुनिक काल के मध्य संक्रांति काल था। यद्यपि रूमानीवादी इतिहास लेखन का 19वीं शताब्दी के मध्य में अवसान हो गया तथापि किसी-न-किसी रूप में यह विद्यमान रहा, किंतु आधुनिक काल में इतिहासकारों ने इसे त्याग दिया है और वे स्रोतों के आधार पर ऐतिहासिक तथ्यों को प्रस्तुत करने लगे हैं। संक्षेपतः आधुनिक इतिहासकारों ने आलोचनात्मक और वैज्ञानिक पद्धति अपनाई है। इतिहास लेखन में ऐतिहासिक तथ्यों की प्रामाणिकता की ओर ध्यान दिया जाने लगा है। आधुनिक इतिहास लेखन की अन्य महत्वपूर्ण विशेषता इतिहास दर्शन का विकास है।

इस काल की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इतिहासकारों ने सामाजिक, राजनैतिक, राजनयिक, बौद्धिक, आर्थिक और सांस्कृतिक घटनाओं की ओर ध्यान दिया तथा इन सभी पर इतिहास की रचना की।

4.3.3. इतिहास लेखन में ईसाइयत का प्रभाव

ईसाई दृष्टिकोण के अनुसार इतिहास विश्वव्यापी, देवप्रधान, चमत्कारपूर्ण और युगपरक है। इतिहास में ईश्वर की एक योजना कार्यशील है, जिसका संदेश ईसा के आगमन द्वारा प्राप्त हुआ। दिव्य प्रेरणा और योजना से नियंत्रित इतिहास की प्रक्रिया मनुष्य को अपने में लपेटे हुए अनंत सुख और प्रसाद की ओर ले जा रही है। इस दृष्टिकोण से लिखे गए इतिहास में यद्यपि गंभीर दार्शनिकता थी, किंतु प्रचार और पक्षपात का भाव भी बहुत गहरा था। अतः तथ्य निरूपण की दृष्टि से यह इतिहास पर्याप्त महत्वपूर्ण नहीं हो सका। इसकी आलोचना पद्धति भी बहुत विकसित नहीं हो पाई।

पश्चिम में ईसाइयत के उदय का इतिहास लेखन के अवसान में सीधा उत्तरदायित्व था। इसका केंद्र बिंदु वर्तमान से हटकर भविष्य की चिंता की ओर हो गया। आत्मा की शाश्वत मुक्ति को ही परम कर्तव्य माना जाने लगा। आम आदमी की जिंदगी, राज्य का अस्तित्व और सामूहिक हितों की रक्षा को नजर अंदाज कर दिया गया। जन कल्याण के प्रति उदासीनता आ गई। विधर्मियों पर ईसाइयत की विजय ने इतिहास लेखन को काफी प्रभावित किया। विधर्मियों का इतिहास लेखन काफी उच्च कोटि का था फिर भी उसे शैतान की कृति कहकर अस्वीकार कर दिया गया।

तीसरी सदी तक के मध्य तक भी डाइडेसकेलिया अपोस्टोलोरम (Didascalia Apostolorum) के लेखक कहते हैं— "तुम्हें ईश्वर के शब्द में क्या कमी दिखती है कि तुम इन विधर्मी इतिहासों में डुबकी लगाते हो। इस प्रकार ईसाइयत आध्यात्मिक विचार पर ही टिक गई। इतिहास के प्रति

अपनी सारी उदासीनता के बावजूद आरंभिक ईसाई चर्च को इतिहास की जरूरत थी, ईसा मसीह को देवत्व के साथ-साथ उनकी मनुष्यता को भी स्थापित करना जरूरी था। अतः न चाहते हुए भी इतिहास के प्रति उनकी सोच बदल रही थी, क्योंकि ईसाइयत के प्रचार के लिए, यरुशलम में चर्च के फैसलों को याद रखने के लिए, शहीदों की स्मृति के लिए यादों को संजोकर रखना आवश्यक हो गया।

प्रमुख ईसाई इतिहासकार

1. सेक्टस जुलियस अफ्रीकन्स (Sextus Julius africanus) (160-240)

ये इसाई इतिहास लेखन के पहले इतिहासकार माने गए हैं। इन्होनें क्रोनोग्राफिया (Chronographiai) नामक ग्रंथ की रचना की और यही आगे चलकर प्राथमिक स्रोत बना।

2. यूसीबियस पैम्फिलस (Eusebius Pamphili) (260-340)

यूसीबियस चर्च इतिहास के जनक माने जाते हैं। इनकी प्रमुख कृति क्रोनिकल और चर्च हिस्ट्री है। शाटवेल के शब्दों में वे स्रोत के महत्व पर अधिक जागरूक थे और मूल स्रोतों के आधार पर उन्होंने इतिहास की रचना की।

3. संत आगस्टीन (Saint Augustine) (354-430)

संत आगस्टीन महत्वपूर्ण ईसाई इतिहासकार माने जाते हैं। उनका प्रमुख ग्रंथ'सिटी ऑफ गॉड' दुनिया की महानतम कृतियों में से एक है। अनेक इतिहासकारों ने माना कि दर्शन के रूप में इस ग्रंथ में ईसाइयत की शुरुआत हुई। यह मध्य युगीन मानस का पहला निश्चित सिद्धांतीकरण था। यह पुस्तक कैथोलिक धर्म के ज्ञान का आधार बना।

4. पालस ओरोसियस (Paulus orosius) (380-420)

पालस ओरोसियस संत आगस्टीन के शिष्य थे उन्होंने अपने ग्रंथ 'सेवन बुक्स ऑफ हिस्ट्री अंगेस्ट पेजनिजम' (Historiae Adversus Paganos) अपने गुरू के सुझावों पर लिखा है। पालस ओरोसियस महत्वपूर्ण ईसाई इतिहासकार माने गए। ईसाई इतिहास लेखन में इनके सिद्धांतों का अनुसरण किया गया।

5. टूअर्स के संत ग्रेगरी (Saint Gregory of Tours) (539-594 ई.)

टूअर्स के ग्रेगरी मध्य युग के सबसे प्रामाणिक इतिहासकार थे। इनका हिस्टोरिया रीगम फ्रैंकोरम (Historia Francorum) (हिस्ट्री ऑफ द किंग्स ऑफ द फ्रैंक्स) फ्रैंको का एक मात्र इतिहास है। इस पुस्तक से चर्च, प्रशासकीय मामलों और संस्थाओं, सामाजिक वर्गों, आर्थिक स्थितियों, वाणिज्य व्यापार, गुलामी, शिष्टाचार और नैतिकता, शिक्षा, प्राचीन संस्कृति में गिरावट एवं अंधविश्वासों के बारे में जानकारी मिलती है।

6. वेनरेबल बीड (Venerable Bede) (673-735 ई.)

वेनरेबल बीड महान और विद्वान इतिहासकार माने जाते हैं। इसका स्पष्टीकरण यह है कि उत्तरी इंग्लैंड में लैटिन, अंग्रेजी और आइरिश संस्कृतियों के संगम से एक उल्लेखनीय ऊर्जावान बौद्धिक आंदोलन पैदा हुआ, जिसकी प्रमुख अभिव्यक्ति इतिहास लेखन था। वेनरेबल बीड ने उच्च आदर्श

स्थापित किए। वे कहते हैं, "मैं नहीं चाहूँगा कि मेरे बच्चे कोई झूठी बात पकड़ें।" बीड को अंग्रेजी इतिहास का जनक कहा जाता है। इतिहास लेखन में इनका उत्साहवर्द्धक प्रभाव पड़ा।

4.3.4. पुनर्जागरण कालीन मानववादी इतिहास लेखन

पुनर्जागरण कालीन मानववादी इतिहास लेखन ने इतिहास लेखन को बड़ा प्रभावित किया। पुनर्जागरणोत्तर वर्षों में इतिहास को धर्म से मुक्त किया गया। साथ ही शास्त्रीय साहित्य में दिलचस्पी ली जाने लगी। इसी समय से ऐतिहासिक दस्तावेजों की पाठमूलक आलोचना शुरू हुई। इस समय के इतिहासकार, चर्च के पादरी या धार्मिक व्यक्ति नहीं अपितु व्यवहार कुशल व्यक्ति थे। फलतः राजनैतिक घटनाओं और शक्तियों पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा। मानववादी इतिहास लेखन इटली में शुरू हुआ। इस समय न केवल सामयिक इतिहास, अपितु पुरातन इतिहास भी लिखा गया। मानववादी इतिहासकारों का सबसे बड़ा योगदान पुरातन या शास्त्रीय को यथोचित स्थान दिलाना ही नहीं वरन् अंधविश्वासों और चमत्कारों का परित्याग कराना भी था।

प्रमुख मानववादी इतिहासकार-

1. लिओनार्डो ब्रूनी (Leonardo Bruni) (1369-1444 ई.)

ब्रूनी ने मानववादी इतिहास लेखन को काफी प्रभावित किया है। उसकी प्रमुख कृतियों में "The Twelve Books of Florentine History and Commentries" ने सामयिक की अपेक्षा पुरातन संस्कृति से अधिक प्रेरणा प्राप्त की। उन्होंने फ्लोरेंस (Florence) से संबंधित राजनैतिक घटनाओं और गतिविधियों का व्यावहारिक विश्लेषण किया तथा आख्यानों और चमत्कारों को हटा दिया।

2. फ्लेवियस ब्लोंडे (Flavio Biondo) (1388-1463 ई.)

ब्लोंडे इटली के सबसे महान विद्वान थे। उनकी मुख्य कृतियों में 'सचित्र इटली', 'रोम स्थापित', 'विजयी रोम', 'रोमन साम्राज्य का अधःपतन' आदि है।

3. एनियस सिलवियस पिकोलोमिनी (Enea silvio (Aeneas silvius) Piccolomini) (1405-1464 ई.)

पिकोलोमिनी ने इतिहास लेखन में बड़ा योगदान दिया है। उन्होंने बेसिल परिषद् (Council of Basel) पर टीकाएँ, यूरोप का इतिहास, विश्व इतिहास, टिप्पणियाँ, फ्रेडरिक तृतीय का इतिहास आदि की रचना की।

4. निकोलो मैकियोवेली (Niccolo Machiavelli) (1469-1527 ई.)

मैकियावेली ने आधुनिक इतिहास लेखन की परंपरा शुरू की। उन्होंने राजनीति को मध्यकालीन धार्मिक प्रभावों से मुक्त किया और इसे धर्मनिरपेक्ष बनाया।

4.3.5. बुद्धिवादी युग में इतिहास लेखन

17वीं और 18वीं शताब्दी में अनेक महत्वपूर्ण अनुसंधानों और अन्वेषणों के फलस्वरूप लोगों की बौद्धिक जिज्ञासा में वृद्धि हुई। इसने इतिहासकारों को भी प्रभावित किया, जिसका इतिहास लेखन पर

व्यापक असर पड़ा। इतिहासकारों ने आलोचनात्मक विवरण को महत्व दिया, इतिहास लेखन में वैज्ञानिक पद्धति अपनाई जाने लगी। स्रोतों का महत्व स्थापित हुआ। इसी काल में कारणों की खोज को महत्व दिया गया। चमत्कारों का त्याग किया गया और कारण के आधार पर व्यवस्था को इतिहास में स्थान मिला।

इस युग के प्रमुख इतिहासकार निम्नलिखित हैं—

1. वोल्टेयर (Voltaire) (1694-1778 ई.)

वोल्टेयर बुद्धिवादी युग के जनक माने जाते हैं। इनका इतिहास लेखन दर्शन, विज्ञान और तर्क पर आधारित है। इनकी प्रमुख कृति 'स्वीडन का चार्ल्स बारहवाँ' और 'लुई चौदहवाँ का युग' महत्वपूर्ण है।

2. डेविड ह्यूम(David Hume) (1711-1776 ई.)

तार्किक एवं बुद्धिवादी युग के प्रारंभिक इतिहासकारों में से एक डेविड ह्यूम ने जूलियस सीजर के आक्रमण से 1688 ईं की क्रांति इंग्लैंड का इतिहास लिखा।

3. विलियम रॉबर्टसन (William Robertson) (1721-1793 ई.)

इस युग के अन्य इतिहासकार विलियम रॉबर्टसन ने 'हिस्ट्री ऑफ स्कॉटलैंड', 'हिस्ट्री ऑफ द ऐम्परर चार्ल्स फिफ्थ' और 'हिस्ट्री ऑफ द अमेरिका' लिखा है।

4. एडर्वड गिबन (Edward Gibbon) (1737-1794)

एडर्वड गिबन बुद्धिवादी युग के सर्वश्रेष्ठ प्रमुख इतिहासकार है। इन्होंने रोमन साम्राज्य का उत्थान एवं पतन के एवं संबंध में ऐतिहासिक रचना लिखी है।

4.3.6. रूमानीवादी युग में इतिहास लेखन

फ्रांसीसी क्रांति के बाद तार्किकवादी चिंत्त में व्यापक प्रतिक्रिया आई। फ्रांसीसी क्रांति के घटनाओं ने स्पष्ट कर दिया कि तार्किकवादी सिद्धांतों से सामाजिक परिवर्तन संभव नहीं, अतः रूमानीवाद का प्रांरभ हुआ। रूमानीवाद के इतिहासकारों ने राष्ट्र के विकास में कुछ अजागृत सृजन शक्तियों का हाथ होना बताया। इन इतिहासकारों ने राष्ट्रीय संस्थाओं की विलक्षणताओं, कानूनों, साहित्य, सरकार आदि पर प्रकाश डाला है। उन्होंने बतलाया कि इनसे राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण होता है इसलिए सांस्कृतिक एकता पर बल दिया है। ' हेनरी बोर्ने' (Henry Bourne) के शब्दों में बुद्धिवादी इतिहासकारों की अपेक्षा रूमानीवादियों ने संस्कृति और संस्थाओं के विकास में एक अधिक व्यापक और वास्तविक ऐतिहासिक अवधारणा को अपनाया।

प्रमुख रूमानीवादी इतिहासकार निम्नलिखित हैं—

1. लूदविक मोर्ग फोनराउमर (1781-1873 ई.)

मोर्ग फोनराउमर रूमानीवादी इतिहासकारों में सर्वश्रेष्ठ इतिहासकार माने जाते हैं। इन्होनें अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथों की रचना की, जिसमें जर्मनी की संस्कृति पर प्रकाश पड़ा। उनके ऐतिहासिक ग्रंथों में प्रशा

का नागरिक विधान, कानून राज्य और राजनीति का ऐतिहासिक विकास, 15वीं शताब्दी के बाद का यूरोप का इतिहास और अपने युग का इतिहास उल्लेखनीय है।

रूमानीवादी इतिहासकारों में फोनम्यूलर (1758-1809ई.), हाईनरिख लूदन (Heinrich Luden) (1780-1847 ई.), गुस्ताफ एदोल्फ स्तेजलर (1792-1854 ई.) एडमंड बर्क, क्रिश्चियन हम्वोल्ड, कार्ल फ्रेडरिक इचहान, वाल्टर स्कॉट, (Walter Scott) जेम्स एंथोनी फ्राड (James Anthony Froude) आदि प्रमुख इतिहासकार हैं। इन्होनें राष्ट्रीयता के प्रति अभूतपूर्व अभिरुचि उत्पन्न किया।

4.3.7. मध्य यूरोपियन प्रमुख इतिहासकार व उनका इतिहास लेखन

4.3.7.1. इटली के प्रमुख दार्शनिक —

इटली के प्रमुख दार्शिनिक निम्नलिखित हैं -

1. जियाम्बतिस्ता विको (Giambattista Vico) (1668-1744)

जियाम्बतिस्ता विको का जन्म इटली के नेपल्स नगर में हुआ था। जियाम्बतिस्ता विको ने आधुनिक इतिहास दर्शन का शिलान्यास किया था। उन्होंने गल्प और व्याख्यान को ऐतिहासिक स्रोत मानने से मना कर दिया। विको एक मौलिक चिंतक थे। विको का नाम 'चक्रीय सिंद्धात' से संबंधित है। विको कहते हैं— "दैवी पूर्व प्रबंध के कारण ही व्यक्ति, परिवार, समाज और राज्य से जुड़ा रहता है। ईश्वर ही मनुष्य को सभी पापों से मुक्त करता है और उसे सुखसमृद्धि देता है।" उनके चक्रीय सिंद्धात के चरण हैं— जन्म, परिपक्वता, पराभव व पतन, जो क्रमशः देव नायक व्यक्तियों के युगों से संबंधित है। विको ने राय दी कि इतिहासकार को अपने ज्ञान एवं वैज्ञानिक पद्धति पर इतिहास की संरचना करनी चाहिए।

लोविथ का विचार है कि वोल्टेयर की अपेक्षा विको, अधिक तीक्ष्ण और व्यापक, काम्टे (Comte) की अपेक्षा अधिक गहरा और हेगेल की अपेक्षा अधिक मौलिक सहज ज्ञान से अनुप्रमाणित हैं।

2. सीजर बाल्वो (Cesare Balbo) (1789-1853) सीजर बाल्वो का इतिहास दर्शन उनकी ऐतिहासिक कृति, ऐतिहासिक चिंतन से मिलती है।

3. गेसेपे फेरारी (Giuseppe Ferrari) (1812-1876)

गेसेपे फेरारी विको से काफी प्रभावित थे। उन्होंने क्रांति का दर्शन दिया और उनका विचार था कि क्रांति विध्वंसात्मक की अपेक्षा रचनात्मक विकास का मार्ग प्रशस्त करती है। उनकी कृति राजनैतिक काल का सिंद्धात है, जो 1874 में प्रकाशित हुई। वे प्रत्येक काल के 125 वर्ष निर्धारित करते हैं। प्रत्येक अवधि की चार उप-अवधियाँ तैयारी, उन्नयन, प्रतिक्रिया और समापन होती है।

4. बेनडेटो क्रोचे (Benedetto Croce) (1886-1952)

बेनडेटो क्रोचे संभवतः आधुनिक इटली के सर्वप्रमुख इतिहास दार्शनिक थे। उन्होंने रोम विश्वविद्यालय में शिक्षा पाई। क्रोचे ने इतिहास के आदर्शवादी दर्शन का विकास किया। उन्होंने फासीवाद का तीव्र विरोध किया। उनकी प्रमुख कृतियों में **Asthetic, Logic and History** प्रमुख है। उनके अनुसार इतिहासकार वैज्ञानिक की अपेक्षा कलाकार अधिक होता है। उन्होंने इतिहास को प्राकृतिक विज्ञान से

मुक्त किया। उसके अनुसार इतिहास वर्तमान की सत्यता को बतलाता है, जिसकी नींव अतीत में पड़ी थी। उनका विचार है कि सभी सत्य इतिहास और सभी ज्ञान ऐतिहासिक ज्ञान है। यद्यपि इटली में इतिहास लेखन की परंपरा की शुरुआत हुई, तथापि जर्मनी, इंग्लैंड और फ्रांस में इसका पूर्ण विकास हुआ। जर्मनी में हर्डर (Herder), कांट (Kant), हेगेल, फिक्टे (Fichte), कार्ल मार्क्स, डिल्थे (Dilthey), ओसवाल्ड-स्पेंगर (Oswold Spengler) आदि ने इतिहास दर्शन का विकास किया।

इंग्लैंड में 16वीं और 17वीं शताब्दियों में इतिहास दर्शन लिखा जाने लगा। लॉक (Locke), ह्यूम (Hume), वक्ल, लेसली स्टीफेन (Leslie Stephen), राबर्ट फ्लीट आदि प्रसिद्ध अंग्रेज इतिहास दार्शनिक हैं।

फ्रांस में 17वीं और 18वीं शताब्दियों में इतिहास दर्शन लिखा जाने लगा। तुर्जो, कोन्डोरसेट (Nicolas de Condorcet), सेंट साईमन (Saint-Simon), आगस्तस काम्टे (Auguste Comte), विक्टर काजिन (Victor Cousin), थियोडोर जोफ्रे, इडजार (Edgar Quinet) क्वीनेट आदि मुख्य इतिहास दार्शनिक थे।

4.3.7.2. जर्मनी के प्रमुख इतिहास दार्शनिक

1. इमानुएल कांट(1724-1804)

कांट जर्मनी के कोनिग्सबर्ग में पैदा हुए थे। उन्होंने कोनिग्सबर्ग (Konigsberg) विश्वविद्यालय में धर्मशास्त्र अध्ययन किया। वे दर्शन और गणित में रुचि रखते थे। तत्वमीमांसा, तर्कशास्त्र, विज्ञान, भूगोल, गृह विज्ञान, भौतिक और गणित पर वे भाषण देते थे। कांट अपने ऐतिहासिक निबंध An Idea For a Universal History On a Cosmopolitical Plan के लिए प्रसिद्ध हैं। इसमें कांट ने बतलाया कि मानवीय कार्य प्राकृतिक नियमों से निर्धारित होते हैं। वे आगे कहते हैं कि "वैज्ञानिक के लिए जो प्राकृतिक नियम है उसी तरह इतिहासकार के लिए दैवी योजना है।" कॉलिंगवुड ने इसे दोषपूर्ण कहा है, क्योंकि इससे विज्ञान और इतिहास का अर्थ स्पष्ट नहीं होता और न ही वैज्ञानिक केवल प्राकृतिक नियमों तथा इतिहासकार केवल दैवी योजना का ही अध्ययन नहीं करते।

2. जॉन गाटफ्रिड हर्डर (Johann Gottfried Herder) (1744-1803)

1744 ई. में पूर्व प्रशा में हर्डर का जन्म एक निर्धन परिवार में हुआ था। वे कोनिग्सबर्ग विश्वविद्यालय में कांट के शिष्य थे। वे कांट के इस विचार से बड़े प्रभावित थे कि मानव के विकास में जलवायु तथा भौगोलिक कारकों का बड़ा हाथ है। हर्डर ने इतिहास, धर्मशास्त्र, साहित्य और भाषा पर अनेक पुस्तकों तथा निबंधों की रचना की।

हर्डर का इतिहास दर्शन विशेष तार्किक नहीं अपितु अंर्तदर्शी व काव्यात्मक है। उनकी सोच है कि मानव विचार एवं आचरण प्रत्येक युग में भिन्न-भिन्न होते हैं। हर्डर की दृष्टि में मानव प्रकृति का विकास आध्यात्मिक शक्तियों से हुआ। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि ऐतिहासिक घटनाएँ प्राकृतिक परिस्थितयों के अनुकूल घटती हैं। हर्डर के विचारों में समरूपता नहीं है, किंतु इतिहास दर्शन के प्रति उनके योगदान की उपेक्षा नहीं की जा सकती। कॉलिंगवुड ने हर्डर के विचारों को महत्वपूर्ण बतलायाहै।

3. हरमन शिलर (Friedrich Von Schiller)

हरमन शिलर कांट के शिष्य थे और जेना (Jena) विश्वविद्यालय में प्राध्यापक थे। उन्होंने कांट के इतिहास दर्शन की व्याख्या करने की कोशिश की तथा उनके कुछ दोषों को दूर किया। शिलर ने अपने निबंध 'The Nature and Value of Universal History' पर बल दिया। विश्व इतिहास से उनका आशय प्रगति का इतिहास था, अर्थात् कैसे मानव जाति ने आदिम अवस्था से आधुनिक युग तक विकास किया है। वे कांट के इस विचार का समर्थन नहीं करते कि इतिहास भविष्य के बारे में कुछ नहीं बतला सकता। शिलर वर्तमान और कांट भविष्य में विश्वास करते थे। कांट इतिहास में केवल राजनैतिक विकास का अध्ययन करना चाहते थे, किंतु शिलर इसमें कला, धर्म, अर्थशास्त्र आदि का भी अध्ययन करना चाहते थे।

4. जॉन गोटलिब फिक्टे (Johann Gottlieb Fichte) (1762-1814 ई.)

फिक्टे, कांट के एक प्रमुख शिष्य थे। उन्होंने भी शिलर की भाँति वर्तमान पर बल दिया था। फिक्टे का विचार था कि इतिहास में प्रत्येक युग की अपनी मौलिक विशेषताएँ होती है। इसके अनुसार इतिहास पाँच युगों से गुजरा है— 1. निर्दोषता का युग जिसमें तर्कणा गौण था। 2. प्राधिकार युग- इसमें तर्कणा निष्क्रिय आज्ञापालन के अधीन होता था। 3. सत्य के प्रति उदासीनता का युग- जिसमें तर्कणा का पूर्ण रूप से नकार किया जाता था। 4. विज्ञान युग- जिसमें सत्य का आदर किया जाता है। 5. कला युग- जिसमें मानव स्वतंत्र हो जाता है और निरपेक्ष तर्कणा को सुंदर बनाता है।

फिक्टे ने इतिहास दर्शन में महत्वपूर्ण योगदान दिया पर उनके विचारों की दो आधारों पर आलोचना की गई। प्रथम- विश्व की वर्तमान स्थिति को पूर्ण एवं अंतिम मानना। द्वितीय- उसके ऐतिहासिक युगों का निर्धारण करना।

5. जार्ज विल्हेम फ्रेड्रिक हेगेल (George Wilhelm Hegel) (1770-1831)

फ्रेडरिक हेगेल जर्मनी का एक प्रमुख इतिहास दार्शनिक था। वे रूसो और कांट से अधिक प्रभावित थे। 1801 ई. में वे जेना विश्वविद्यालय में प्रोफेसर के पद पर नियुक्त हुए। नेपोलियन की विजय और जेना विश्वविद्यालय के विनाश के पश्चात् वह बेम्बर्ग (Bamberg) और न्यूर्नबर्ग (Nuremberg) चले गए। 1818 ई. में वे बर्लिन विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर नियुक्त किए गए, जहाँ वे 1831 ई. तक रहे।

हेगेल का इतिहास दर्शन कांट और हर्डर के विचारों से प्रभावित था। उनका विश्वास था कि प्रत्येक राष्ट्र की अपनी विशेषताएँ होती हैं, जो इसके धर्म, राजनैतिक संस्थाओं, नैतिक संहिता, विधि, पद्धति, विज्ञान, कला आदि में दिखाई देती हैं। उन्होंने आगे बतलाया कि विश्व इतिहास के विकास में प्रत्येक राष्ट्र का अपना योगदान होता है।

संक्षेप में हेगेल के विचारों को निम्न प्रकार से देख सकते हैं-

क) वास्तव में फ्रेडरिक हेगेल ने इतिहास का दार्शनिक स्वरूप प्रदान किया। उनका इतिहास दर्शन नितांत मौलिक है। हेगेल के अनुसार इतिहास केवल घटनाओं का संकलन और खोज ही नहीं है अपितु उसमें निहित कार्य कारण प्रक्रिया की गवेषणा भी है।

ख) हेगेल के विश्व इतिहास की अवधारणा

हर्डर की तरह हेगेल भी विश्व इतिहास की अवधारणा का समर्थन करते है। वे यह मानते हैं कि विश्व पर शासन चेतना करती है। हेगेल का विश्वास है कि चेतना ही परम तत्व है और विश्व उसकी अभिव्यक्ति है। विश्व इतिहास की मूल प्रवृति मानव स्वतंत्रता का विकास है। इसी चेतना के लिए हेगेल 'आइडिया', शब्द प्रयुक्त करते हैं।

ग) मानव स्वतंत्रता की मूल प्रवृत्ति विकास है

हेगेल की सोच है कि विश्व इतिहास की मूल प्रवृत्ति मानव स्वतंत्रता का विकास है। हेगेल के अनुसार मानव स्वतंत्रता का अर्थ है— स्वतंत्रता की चेतना से नैतिक बुद्धिका प्रसार होता है और बुद्धि ही सार्वभौम है।

घ) इतिहास और प्रकृति की प्रक्रिया में भिन्नता

हेगेल प्रकृति और इतिहास की एकता और समानता को स्वीकार नहीं करते। यहाँ उनका मत हर्डर से भिन्न है।

च) इतिहास विचारों का क्रम और बुद्धि की क्रिया है

हेगेल का मत है कि इतिहासकार को अतीत में घटित घटनाओं को विवेकपूर्ण रूप से प्रस्तुत करना चाहिए। व्यक्ति की बौद्धिक क्रिया ही चिंतन है। हेगेल को इतिहास में आदर्शवाद का जनक माना जाता है, जिसने द्वंद्ववाद का सिद्धांत दिया था।

6. कार्ल हेनरिख मार्क्स (Karl Heinrich Marx) (1818-1883)

कार्ल मार्क्स का जन्म 1818 ई. में जर्मनी के यहूदी परिवार में हुआ था। मार्क्स की प्रारंभिक शिक्षा बॉन व बर्लिन में हुई थी। 1843 ई. में मार्क्स पेरिस गए, जहाँ समाजवादी विचारकों के संपर्क में आए। मार्क्स पर इंग्लैंड की औद्योगिक क्रांति, फ्रांस की राजक्रांति और जर्मनी की बौद्धिक क्रांति का काफी कुछ प्रभाव पड़ा। मार्क्स जीवन पर्यंत सामाजिक, आर्थिक समस्याओं पर विचार विमर्श करता रहे। मार्क्स ने एंगेल्स (Engels) के साथ अनेक ग्रंथों की रचना की। उनकी प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार हैं- 'मेजर द लॉ फिलोजोकी देयर पोलिटिशियन ओयकोनोगी, जर्मन आइडोलॉजी, वेज लेवर और दास कैपिटल आदि।

कार्ल मार्क्स का चिंतन दार्शनिक होने के साथ-साथ वैज्ञानिक भी है। मार्क्स का क्रांतिकारी कदम वर्ग संघर्ष पर आधारित है। मार्क्स संसार के प्रत्येक वस्तु को भौतिकवादी दृष्टिकोण से देखते हैं और इसकी व्याख्या आर्थिक सिंद्धात के रूप में करते हैं। देखा जाए तो कार्ल मार्क्स की दार्शनिक विचारधारा के मुख्य चार आधार स्तंभ हैं—

1. द्वंद्वात्मक भौतिकवाद 2. इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या 3. वर्ग संघर्ष का सिंद्धात 4. अतिरिक्त मूल्य का सिंद्धात।

4.3.7.3. इंग्लैंड के प्रमुख दार्शनिक

जर्मनी में इतिहास दार्शनिकों की लंबी परंपरा मिलती है, पर वैसी परंपरा इंग्लैंड में नहीं मिलती। बार्ने ने लिखा है— 'इंग्लैंड ने किसी इतिहास दर्शन को जन्म नहीं दिया है। इंग्लैंड में हेगेल और काम्टे के अनुयायी थे, जिन्होंने दार्शनिक चिंतन को जन्म दिया। इंग्लैंड में भी 16वीं तथा 17वीं शताब्दी में इतिहास दर्शन का प्रादुर्भाव हो गया था। इंग्लैंड मे जॉन लॉक (John Locke), डेविड ह्यूम (David Hume) (1711-1776), वाल्टर वेजहाट (1826-1877), लेसली स्टीफेन (Leslie Stephen) (1832-1904), जे.वी.बरी (1861-1927), हेनरी थोम्स बकल (Henry Thomas Buckle) (1921-1962), माइकल जे. ओकशाट (Michacl J. Oakeshott), बर्ट्रैंड रसल (Bertrend Russel) डबल्यू.एच. वाश (W.H. Walsh) व किस्टोकर ब्लेक आदि के लेखन में इतिहास दर्शन के तत्व अवश्य मिलते हैं, पर राबिन जार्ज कॉलिंगवुड (1889-1943) की कृतियों में इतिहास दर्शन का समुचित आकलन मिलता है। राबिन जार्ज कॉलिंगवुड (Robin George Collingwood) इंग्लैंड के प्रमुख इतिहास दार्शनिक थे।

राबिन जार्ज कॉलिंगवुड— इनका जन्म 1889 ई. में इंग्लैंड के एक सामान्य परिवार में हुआ था। इन्होंने ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से उच्च शिक्षा प्राप्त की। इन्होंने अनेक शोध लेख लिखे। इनके मुत्यु के बाद 1945 ई. में 'द आइडिया ऑफ हिस्ट्री' एक संग्रह के रूप में प्रकाशित हुआ। कॉलिंगवुड को क्रोचे का शिष्य भी कहते हैं। कॉलिंगवुड क्रोचे के विचार से प्रभावित हैं, लेकिन उनका निष्कर्ष स्वतंत्र है। कॉलिंगवुड के अनुसार इतिहास एक अद्वितीय प्रकार का ज्ञान है तथा यह मानव के संपूर्ण ज्ञान का स्रोत है।

4.3.8. सारांश

इतिहास और इतिहास लेखन की अवधारणा में समय के साथ परिवर्तन आता गया है। मध्ययुगीन इतिहास लेखन व उनका निष्कर्ष भी अन्य इतिहास लेखन की तरह त्रुटिपूर्ण है, जो उन्हें भी एक कटु सत्य की तरह स्वीकार करना चाहिए, जैसे :- ईसाई इतिहास लेखन की पहली और सबसे बड़ी कमजोरी उसकी दोष पूर्ण पद्धति है। मध्ययुगीन इतिहास लेखन में काल का निर्धारण वैज्ञानिक नहीं है।

मध्ययुगीन यूरोपियन इतिहास लेखन में निश्चित ही समय के साथ इतिहास लेखन के दृष्टिकोण में परिवर्तन आया। एक विश्व इतिहास के रूप में इनकी अवधारणा सर्वमान्य हो गई। सभी ऐतिहासिक घटनाओं के लिए कालानुक्रम का एक ढाँचा सर्वमान्य प्रतीक बन गया। इतिहास प्रगति के रूप में विकसित हुई, जिसमें मानव तर्क, बुद्धि का विकास या मानववाद की शिक्षा के बाद ही प्रगति होने लगी। यह माना जाने लगा कि इतिहास में नवीन युग को लाने वाले परिवर्तनकारी कारक मौजूद होते हैं। इसके साथ ही इतिहास वर्तमान के सत्य को बताता है। बुद्धिवादी युग में कारण और व्याख्या अस्तित्व में आए। यूरोपीय इतिहास लेखन में राजनीति, कला, धर्म, अर्थशास्त्र आदि का भी अध्ययन किया गया। मध्ययुगीन इतिहासकारों में इटली के विको, क्रोचे, जर्मनी के कांट, हर्डर, शिलर, हेगेल, कार्ल मार्क्स

आदि प्रमुख विद्वान इतिहासकारों ने आधुनिक इतिहास लेखन के लिए नए प्रतिमान और आर्दश स्थापित किए और आधुनिक इतिहास लेखन के लिए वैज्ञानिक पद्धति को अपनाने के लिए मार्ग प्रशस्त किए।

आधुनिक इतिहास लेखन में समय के साथ सहायक विज्ञानों कालानुक्रम (Chronology), पुरालिपि (Paleography), पुरालेख (Epigraphy), कोशलेख (Lexicography), राजन्य (Diplomacy) आदि के विकास के फलस्वरूप इतिहासकार ऐतिहासिक दस्तावेज की प्रामाणिकता जाँच करने लगे हैं। आंतरिक या व्याख्यात्मक आलोचना के फलस्वरूप लेखकों की विश्वसनीयता जाँच की जाने लगी है।

4.3.9. बोध प्रश्न

1. इतिहास लेखन में ईसाइयत के प्रभाव पर प्रकाश डालिए।
2. रूमानीवादी इतिहास लेखन का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
3. बुद्धिवादी इतिहास लेखन की विशेषताएँ लिखिए।
4. जर्मनी के मध्ययुगीन इतिहासकारों एवं उनके रचनाओं पर प्रकाश डालिए।

4.3.10. संदर्भ ग्रंथ सूची

01. अली, मुबारक. (2002). *इतिहासकार का मतांतर.* राजकमल प्रकाशन।
02. भारद्वाज, दिनेश चंद्र. (1965). *भारतीय संस्कृति की रूपरेखा* भोपाल : कैलाश पुस्तक सदन।
03. चतुर्वेदी, हेरम्ब. (2003). *मध्यकालीन इतिहास के स्रोत.* इलाहाबाद : साहित्य संगम।
04. चौबे, झारखंड. (2001). *इतिहास दर्शन.* वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन।
05. गुप्ता, मानिक लाल. (2004). *इतिहास लेखन.* धारणाएं एवं पद्धत्तियाँ कानपुर : अमित पब्लिकेशन्स।
06. गुप्त, हीरालाल. (1990). *प्राचीन भारत के आधुनिक इतिहासकार*. वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन।
07. खुराना,के.एल.,एवं बंसल,आर.के., (2006). *इतिहास लेखन, धारणाएं एवं पद्धतियाँ.* आगरा : लक्ष्मीनारायण अग्रवाल।
08. पाण्डेय, गोविन्द चंद्र. (1988). *इतिहास स्वास्थ्य एवं सिद्धांत* राजस्थान जयपुर : हिंदी ग्रंथ अकादमी।
09. पांचाल, एस.सी.,बघेल, एच.एस., *इतिहास के चिंतन के सिद्धांत एवं पद्धतियां* जयपुर : रिसर्च पब्लिकेशन।
10. राय, कोलेश्वर. (2004). *इतिहास दर्शन.* इलाहाबाद : किताब महल।
11. राधेशरण. (2003). *इतिहास और इतिहास-लेखन.* भोपाल : मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी।
12. श्रीधरन, ई. (2011). अनुवादक सलूजा, मनजीत सिंह. *इतिहास लेख.* नई दिल्ली : ओरियंट ब्लैकस्वान।

13. सिंह, परमानंद (2005). *इतिहास दर्शन.* वाराणसी मोतीलाल : बनारसीदास।

14. थापर, रोमिला, तैय्यबजी नासिर, बिपन चंद्र, पांडे ज्ञानेन्द्र. (1996). *इतिहास की पुनर्व्याख्या,* राजकमल प्रकाशन।

15. वर्मा, लाल बहादुर. (2003). *इतिहास के बारे में.* इलाहाबाद : बोध प्रकाशन।

खंड - 4 : इतिहास लेखन की पद्धति-प्राचीन और मध्यकालीन

इकाई - 4 भारतीय

इकाई की रूपरेखा

4.4.1. उद्देश्य

4.4.2. प्रस्तावना

4.4.3. प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन

4.4.3.1. प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन के महत्वपूर्ण साक्ष्य ग्रंथ

4.4.3.2. भारत के प्राचीन इतिहास लेखक

4.4.4. मध्यकालीन भारतीय इतिहास लेखन

4.4.4.1. सल्तनत कालीन भारत में इतिहास लेखन एवं इतिहासकार

4.4.4.2. सल्तनत कालीन भारत के इतिहासकार

4.4.4.3. मुगलकालीन भारत में इतिहास लेखन एवं इतिहासकार

4.4.4.4. मुगलकालीन भारत में इतिहासकार

4.4.5. सारांश

4.4.6. बोध प्रश्न

4.4.7. संदर्भ ग्रंथ सूची

4.4.1. उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप –

1. भारत में इतिहास लेखन की अवधारणा को बता सकेंगे।
2. प्राचीन एवं मध्यकालीन भारत में इतिहास लेखन की पद्धतियाँ एवं लेखकों की जानकारी दे सकेंगे।

4.4.1. प्रस्तावना

भारत में इतिहास लेखन की अवधारणा सर्वाधिक पुरानी है, पर विद्वानों ने उसे समुचित ढंग से समझने का प्रयास नहीं किया है। वास्तव में यहाँ पर इतिहास लेखन की परंपरा उतनी ही पुरानी है, जितना कि वैदिक काल। ऋग्वेद में हमें इतिहास का उल्लेख मिलता है। वैदिक वांङमय में 'इतिहास' शब्द के प्रथम उल्लेख से स्पष्ट है कि इसके लेखन की परंपरा भारत में पुरानी है। इस भारतीय इतिहास लेखन की अपनी अवधारणा, विद्या, शैली व स्वरूप था, जिसे आज की दृष्टि से नहीं आँका जा सकता। यही कारण है कि अनेक विद्वानों ने भारत को इतिहास लेखन से अपरिचित बताया है।

हम देखते हैं कि काल एवं स्थिति के अनुरूप इतिहास लेखन की परंपरा भी बदलती रही है। प्राचीन भारत में इतिहास लेखन की जो परंपरा समय के साथ गतिमान थी, वह मध्यकाल में इस्लाम

(अरबी और फारसी इतिहास लेखन) के आगमन पर समय के साथ बदलने लगती है। यह बदलाव स्वाभाविक था, क्योंकि अरब लोगों का इतिहास के प्रति अपनी दृष्टि थी। अरबी इतिहास लेखन इस्लाम के पैगंबर मुहम्मद के विचारों के साथ ही इस्लाम पूर्व अरब जगत और जीवन से काफी कुछ प्रभावित था। हजरत मुहम्मद के पूर्व अरब कबीले परस्पर विरोधी एवं घुमंतु प्रवृत्ति के थे। उनके सामूहिक जीवन में वंशावली का बड़ा महत्व था। इन अरब कबीलों में हिंसा, युद्ध और प्रतिकार का भाव बड़ा तीव्र था। अरब इतिहास लेखन में इन वंशावलियों का महत्वपूर्ण स्थान है। इस्लाम के अनुयायी पैगंबर और उनके साथियों पर अपार श्रद्धा रखते थे। अतः उनका जीवन चरित्र इतिहास का अंग बना।

4.4.3. प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन

प्रायः प्रत्येक युग में इतिहास लेखन की अपनी अवधारणा मिलती है। यह सोचना उचित प्रतीत नहीं होता कि प्राचीन भारत के लोगों में ऐतिहासिक अवधारणा का अभाव था। यह आरोप भी गलत है कि उनकी अपनी ऐतिहासिक दृष्टि नहीं थी। भारतीयों के इतिहास लेखन की अपनी अवधारणा रही है, जो युग के अनुरूप चलती रही है।

इसमें संदेह नहीं कि भारतीयों के इतिहास लेखन की सोच सर्वाधिक प्राचीन है। हमें भारतीय इतिहास लेखन का श्री गणेश वैदिक साहित्य के वंश और गोत्र-प्रवर तालिकाओं से मिलने लगता है। कतिपय विद्वानों का मत है कि वेदों में इतिहास नहीं है, पर वैदिक अर्थों को ऐतिहासिक संदर्भ में प्रस्तुत करने वाले को निरुक्त में कहीं 'इत्याख्यानम्' और 'इर्त्येतिहासिका' कहा गया है। निरुक्त काल में संभवतः इतिहासकारों का एक वर्ग था, जो वेदों के इतिहास लेखन से परिचित था। अनेक स्थलों पर निरुक्तकार ने केवल 'तंत्रेतिहास माच्क्षते इत्याख्यानम्' का उल्लेख कर इतिहास के पक्ष को प्रस्तुत किया है। वेदों में 'इतिहास' और 'आख्यान' शब्द उल्लिखित है, इन्हें भाष्यकार दुर्गाचार्य ने पर्यायवाची माना है। इसी प्रकार स्कंध स्वामी ने 'आख्यान' और 'इतिहास' को पर्यायवाची माना है।

सुरेन्द्रनाथ बनर्जी का मत है कि यह कथन नितांत असंगत है कि प्राचीन भारत में श्रेष्ठ ऐतिहासिक साहित्य की रचना नहीं हुई। ऐतिहासिक महत्व के ग्रंथ किन्हीं कारणोंवश खो गए हैं अथवा नष्ट हो गए हैं, परंतु यह संभावना उचित प्रतीत नहीं होती कि सभी ग्रंथ नष्ट हो गए हों। यदि कुछ ग्रंथ इस काल में लिखे गए होते तब उनका कोई ने काई संकेत या संदर्भ बाद के लेखकों के कृतियों में अवश्य मिलता, परंतु इस तथ्य को लगभग सभी विद्वानों ने स्वीकार किया है कि मुद्राओं, अभिलेखों, कांस्य प्लेटो और सिक्कों के रूप में प्राचीन इतिहास को जानने के महत्वपूर्ण साक्ष्य बड़ी मात्रा में आज भी उपलब्ध हैं।

4.4.3.1. प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन के महत्वपूर्ण साक्ष्य ग्रंथ

प्राचीन भारतीय विद्वानों ने इतिहास लेखन के क्षेत्र में साहित्यिक एवं धार्मिक ग्रंथ के रूप में पर्याप्त साक्ष्यों की रचना की है। उनकी कृतियों में इतिहास की दार्शनिक अवधारणा पूरी तरह से स्पष्ट है। इस काल में धार्मिक साहित्य के रूप में लिखी गई कृतियों में वेदों का स्थान सबसे अधिक उल्लेखनीय है। इनकी संख्या चार है, जो ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद के नाम से जाने जाते हैं। यद्यपि इनके लेखन का उद्देश्य धार्मिक था, किंतु इनमें भारत की वैदिक कालीन राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक दशा का भी विस्तृत रूप से वर्णन प्राप्त होता है। इसमें प्राचीन प्रशासन व्यवस्था और युद्धकला की भी जानकारी प्राप्त होती है। इन ग्रंथों से हमें प्राचीन भारतीय इतिहास की अत्यधिक महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है, इसलिए कोई विद्वान इनके महत्व को नकार नहीं सकता।

वेदों के साथ-साथ ब्राह्मण ग्रंथों एवं उपनिषदों का भी ऐतिहासिक साक्ष्यों के रूप में अत्यंत महत्व है। इन ग्रंथों से यज्ञ एवं वैदिक मंत्रों के साथ-साथ आर्यों के दार्शनिक और आध्यात्मिक ज्ञान का पता चलता है। धार्मिक ग्रंथों के रूप में वेदांग और सूत्र साहित्य का भी अत्यधिक महत्व है। वेदांग की संख्या छह है, जो (1) शिक्षा (2) ज्योतिष (3) व्याकरण (4) छंद (5) कल्प और (6) निरुक्त के नाम से जाने जाते हैं। इनके माध्यम से वेदों को समझने में सुविधा प्राप्त होती है। इसी प्रकार तीन सूत्रों में (1) कल्पसूत्र (2) गृहसूत्र (3) धर्मसूत्र का भी इतिहास निर्माण में विशिष्ट योगदान है।

प्राचीन धार्मिक ग्रंथों में रामायण एवं महाभारत दो महाकाव्यों का भी वर्णन मिलता है। ये मुख्य रूप से हिंदुओं के धार्मिक ग्रंथ हैं, परंतु इतिहास लेखन हेतु महत्वपूर्ण साक्ष्य भी है। रामायण में प्राचीन राजतंत्रात्मक व्यवस्था का वर्णन किया गया है तथा दक्षिण की ओर भारत के विस्तार को दर्शाया गया है। तत्कालीन सामाजिक वर्णव्यवस्था का वर्णन भी रामायण में मिलता है। इसी क्रम में महाभारत विश्व का सबसे विस्तृत महाकाव्य है। इसमें उत्तर वैदिक काल की विभिन्न स्थितियों का उल्लेख मिलता है। इस समय तक शाही परिवार और संपन्न वर्ग में बहुपत्नी प्रथा का प्रचलन था। श्रृंग वैदिक काल की तुलना में उत्तर वैदिक काल में स्त्रियों की दशा में पतन प्रारंभ हो गया था। शिक्षा आश्रमों में गुरुओं द्वारा दी जाती थी।

पुराणों को भी हिंदुओं के धार्मिक ग्रंथ के रूप में देखा जाता है। इनमें प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन की अत्यधिक सामग्री उपलब्ध है। ये एक प्रकार से धार्मिक उपन्यास कहे जाते हैं। इनकी कुल संख्या 18 है। इसमें भारत के प्राचीन राजवंशों का विस्तृत वर्णन दिया गया है, जो भारत के विभिन्न भागों पर शासन करते थे। इसमें से विष्णु, वायु, भागवत, मत्स्य और ब्रह्म पुराण को इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण माना जाता है। इन ग्रंथों में कलियुग के राजाओं के साथ-साथ शिशुनाग, नंद, मौर्य, गुप्त, शुंग, कण्व आदि वंशों की वंशावलियाँ भी वर्णित हैं। साथ ही ये समकालीन् राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक स्थिति को जानने के महत्वपूर्ण साक्ष्य हैं। इनके ऐतिहासिक महत्व को स्वीकार करते हुए डॉ. आर.एस. त्रिपाठी ने लिखा है— ''पुराण अज्ञान रूपी अंधकूप में ज्ञान रूपी प्रकाश की किरण का कार्य करते हैं। वी.ए. स्मिथ ने भी इस संदर्भ में उल्लेख किया है कि ''यदि पुराणों का ध्यान पूर्वक अध्ययन किया जाए तो उनसे उच्च कोटि की मूल्यवान सामग्री प्राप्त हो सकती है।''

प्राचीन भारत में इतिहास लेखन की परंपरा की जानकारी का एक अन्य महत्वपूर्ण साक्ष्य बौद्ध और जैन साहित्य माना जाता है। बौद्ध साहित्य के तीन मुख्य अंग—(1) जातक (2) पिटक (3) निकाय हैं। पिटकों की भी तीन शाखाएँ हैं (1) विनयपिटक (2) अभिधम्मपिटक (3) सुत्तपिटक हैं। जातकों में महात्मा बुद्ध के पूर्व जन्मों का वर्णन मिलता है। साथ ही बौद्ध ग्रंथ 'दीपवंश', 'महावंश' और 'मिलिंद पन्हो' के वर्णन से भी तत्कालीन इतिहास को जानने की पर्याप्त सामाग्री उपलब्ध होती है। इन तीनों ग्रंथों की भाषा पाली है, जबकि 'दिव्यावदान' और उन्हें आर्य मंजू-श्री-मूल-कल्प की रचना संस्कृत भाषा में की गई है। इन सभी ग्रंथों का ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यधिक महत्व है और ये तत्कालीन इतिहास को जानने के प्रमुख साक्ष्य हैं।

बौद्ध ग्रंथों के साथ-साथ अंग व उपांग के रूप में उपलब्ध जैन साहित्य भी इतिहास को जानने के प्रमुख साक्ष्य हैं। संपूर्ण जैन साहित्य बारह अंगों में विभाजित हैं। इनके साथ-साथ 'भद्रबाहुचरित' 'परिशिष्ट पर्व', 'कथा कोश' 'भगवती सूत्र' आदि जैन ग्रंथों का भी इतिहास लेखन के क्षेत्र में अत्यधिक महत्व है। स्पष्ट है कि बौद्ध और जैन साहित्य केवल धार्मिक ग्रंथ मात्र नहीं हैं। इनमें इतिहास की दार्शनिक विचारधारा का स्पष्ट दिग्दर्शन होता है तथा महत्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध होती है।

दक्षिण में तमिल साहित्य के रूप में 'संगम साहित्य' तत्कालीन, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक जानकारी का प्रमुख साक्ष्य है।

धार्मिक साहित्य के साथ-साथ अनेक ऐसे ग्रंथ भी उपलब्ध हैं, जिनका ऐतिहासिक दृष्टि से तथा तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और धार्मिक जीवन की जानकारी की दृष्टि से विशेष महत्व है। इन ग्रंथों में कौटिल्य द्वारा लिखित ग्रंथ 'अर्थशास्त्र' का अत्यधिक महत्व है। राजनीति, कूटनीति और शासन के क्षेत्र में 'अर्थशास्त्र' को एक उत्कृष्ट रचना स्वीकार किया जाता है। इसके अतिरिक्त विशाखदत्त का 'मुद्राराक्षस' कालिदास का 'मालविकाग्निमित्रम्', पतंजलि का 'महाभाष्य' और पाणिनि का 'अष्टाध्यायी' भी ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण रचनाएँ स्वीकार की जाती हैं। बाणभट्ट 'हर्षचरित' तथा सम्राट हर्षवर्धन द्वारा रचित नाटक 'नागानंद', 'प्रियदर्शिका' और 'रत्नावली' भी उल्लेखनीय ऐतिहासिक ग्रंथ हैं। इसी प्रकार बिल्हण का 'विक्रमांकदेवचरित' और कल्हण की 'राजतरंगिणी' भी प्राचीन इतिहास को जानने के महत्वपूर्ण साक्ष्य हैं।

4.4.3.2. भारत के प्राचीन इतिहास लेखक

प्राचीन भारतीय इतिहास के संदर्भ में अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथों की रचना की गई थी, परंतु इसमें से अनेक पुस्तकों के लेखकों के नाम अज्ञात हैं और हमारे पास उसकी जानकारी का कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है।

बाणभट्ट

बाणभट्ट प्राचीन भारत के एक प्रसिद्ध एवं महत्वपूर्ण लेखक थे। वे अपनी रचना 'हर्षचरित' के कारण विशेष रूप से जाने जाते हैं। यह उनके स्वामी सम्राट हर्ष की आत्मकथा है, जिसमें उन्होंने अपने

स्वामी के चरित्र का गुणगान किया है। डॉ. गोविन्द्र चन्द्र पाण्डेय ने इस संदर्भ में लिखा है कि ''यह काव्य ग्रंथ है इतिहास नहीं', परंतु इसमें इतिहास भरा पड़ा है। बाणभट्ट ने ऐतिहासिक पृष्ठों को क्रम से पलटा है। डॉ. विश्वम्भरण शरण पाठक ने बाणकृत हर्षचरित की ऐतिहासिक घटनाओं को नए परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि अब तक विद्वानों की यह मान्यता रही है कि हर्षचरित एक अधूरी रचना है। वह समीचीन नहीं है, क्योंकि बाण ने हर्षचरित की रचना शायद हर्ष के सिंहासनारोहण प्राप्ति के राजनैतिक प्रयोगों के कलागम की दृष्टि से लिखी है। देखा जाए तो बाण ने हर्षचरित का विधायन महाभारत, मत्स्यपुराण, विष्णु पुराण के आख्यानात्मक संदर्भों के साथ भृग्वांगिरस की ऐतिहासिक परंपरा के रूप में की है। हर्षचरित में ऐतिहासिक तथ्यों के विकास का तार्किक प्रस्तुतीकरण पाँच चरणों में हुआ है। ये पाँच चरण इस प्रकार हैं- पुष्यभूति वंश की कथा (प्रारंभ), हर्ष का जन्मोत्सव (प्रयास), प्रभाकरवर्धन एवं राज्यवर्धन की मृत्यु (प्रत्याशा), राज्यश्री की युक्ति (निश्चयन) और अंत होता है हर्ष की राज्य श्री (राजसिंहासन) की प्राप्ति से।

बिल्हण

बिल्हण प्राचीन भारतीय लेखन परंपरा का एक प्रसिद्ध विद्वान माना जाता है। इनका जन्म 1040 ई. में कश्मीर में हुआ था। बिल्हण को कल्याणी के चालुक्य शासक का संरक्षण प्राप्त था, जिन्होंने उनको 'विद्यापति' की उपाधि से विभूषित किया था।

बिल्हण ने 'कंससुन्दरी' नामक एक नाटक लिखा था, जिसमें उन्होंने अन्हिलवाड़ के शासक करनदेव प्रथम के विवाह का विस्तृत वर्णन किया है। उनका सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रंथ 'विक्रमांकदेवचरित' है। यह ग्रंथ विक्रमांदित्य पंचम के इतिहास के विभिन्न तथ्यों की पुष्टि करने का महत्वपूर्ण साक्ष्य है।18 सर्गों में रचित अपने इस ग्रंथ में बिल्हण ने राजा विक्रमादित्य के चरित्र को प्रस्तुत करने के लिए लाक्षणिक प्रयोगों एवं प्रतीकों को माध्यम बनाया है।

जयानक

जयानक कश्मीर से संबंधित थे और वाल्मिकी की 'रामायण' से अत्यधिक प्रभावित थे। उन्होंने तराईन के युद्धों के पश्चात् अपना ग्रंथ 'पृथ्वीराज विजय' लिपिबद्ध किया। उन्हें तर्क, ज्योतिष और व्याकरण का पूर्ण ज्ञान था। अपने ग्रंथ में जयानक ने उत्तरी राजस्थान के चाहमान (Chahamana) शासक की उपलब्धियों और शौर्य की विस्तृत व्याख्या की है। यह ग्रंथ दो भागों में उपलब्ध है। प्रथम भाग में कुछ अलौकिक तत्वों को सम्मिलित किया गया है, किंतु दूसरे भाग में ऐतिहासिक साक्ष्यों और अभिलेखों के संदर्भ में वर्णन मिलता है। यद्यपि उक्त ग्रंथ में इतिहास लेखन की दृष्टि से कुछ त्रुटियाँ हैं परंतु इसमें भारतीय इतिहास दर्शन के गुण स्पष्ट हैं।

कौटिल्य

कौटिल्य को मुख्यतः चाणक्य, विष्णुगुप्त और कौटिल्य के नाम से भी जाना जाता है। उनका जन्म तक्षशिला के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। चन्द्रगुप्त मौर्य ने सिंहासनारूढ़ होने के उपरांत चाणक्य की सेवाओं के कारण उन्हें अपना प्रधानमंत्री एवं परामर्शदाता नियुक्तकिया।

अपने स्वामी की शासन विधि का प्रतिपादन करने के उद्देश्य से कौटिल्य ने 'अर्थशास्त्र' की रचना की थी। यह अत्यंत विस्तृत ग्रंथ है, जिसमें पंद्रह भाग, एक सौ अस्सी उपभाग और लगभग छह हजार श्लोक हैं। इस ग्रंथ में विद्वान लेखक ने तत्कालीन राजनीति, प्रशासन और वैधानिक विषयों का श्रेष्ठ वर्णन किया है। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में प्राचीन भारत के प्रमुख विद्वान मनु, बृहस्पति, भीष्म, नारद, भारद्वाज, आदि का भी उल्लेख किया है, जिन्होंने तत्कालीन राजनीति विज्ञान पर महत्वपूर्ण ग्रंथ लिखे थे। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में मौर्यकाल की प्रशासनिक व्यवस्था, राजनैतिक स्थिति, आर्थिक व सामाजिक दशा का ही वर्णन नहीं किया, अपितु राजतंत्र, गणतंत्र, राजद्रोह, शांति व संधि, शासकों व मंत्रीपरिषद के अधिकारों व कर्तव्यों का भी विस्तृत वर्णन किया है।

कल्हण

वह कश्मीर का एक ब्राह्मण था, जो हर्ष के दरबार में एक मंत्री था। उसने अपनी कृति 'राजतरंगिणी' का लेखन 1148 ई. में प्रारंभ किया और दो वर्षों के परिश्रम के बाद उसे पूर्ण करने में सफल हुआ। अपने इस ग्रंथ में कल्हण ने कश्मीर के सामान्य इतिहास का वर्णन किया है। इसमें लगभग 8000 संस्कृत के श्लोकों का वर्णन मिलता है। अध्ययन की सुविधा के लिए इसे तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है।

प्रथम भाग — प्रथम से तृतीय सर्ग तक कल्हण ने तत्कालीन परंपराओं के संदर्भ में अतीत की घटनाओं का विवरण प्रस्तुत किया है।

द्वितीय भाग — चौथे से छठे सर्ग तक लेखक ने कार्कोट और उत्पल राजवंशों का वर्णन किया है। इनके लेखन में कल्हण ने पूर्व कालीन व तत्कालीन विद्वानों के साक्ष्यों को आधार बनाया है।

तृतीय भाग — पुस्तक के सातवें और आठवें सर्ग में लेखक ने कश्मीर के दो योद्धा राजवंशों को अपना मुख्य विषय बनाया है। तीसरे भाग के लेखन में कल्हण ने अपने व्यक्तिगत ज्ञान के आधार पर आँखों देखा वर्णन प्रस्तुत किया है।

कल्हण प्राचीन भारतीय इतिहास का प्रथम इतिहासकार थे, जिन्होंने आधुनिक इतिहास लेखन पद्धति के आधार पर अपने ग्रंथ की रचना की थी। उन्होंने घटनाओं के संदर्भ में अपने दृष्टिकोण का वर्णन भी अपने ग्रंथ में किया है। उन्होंने केवल अपने पूर्वगामी इतिहास लेखकों की ग्यारह पुस्तकों का ही अध्ययन नहीं किया, अपितु उनकी गलतियों को सुधारने का प्रयास भी किया है। इसलिए कल्हण को ''प्राचीन भारत के सर्वश्रेष्ठ इतिहासकार'' की उपाधि प्रदान की जाती है और उनके ग्रंथ 'राजतरंगिणी' को अपने समय की 'श्रेष्ठतम कृति' माना जाता है। कल्हण की मान्यता है कि एक सच्चा इतिहासकार अपने ग्रंथ लेखन में पूर्वग्रह और पक्षपात को स्थान दिए बिना उसे पूर्ण करता है। अपने लेखन में कल्हण

ने तिथि क्रम को अत्यधिक महत्व प्रदान किया है। कल्हण ने घटनाओं का पक्षपात रहित वर्णन करने के साथ-साथ राजाओं के संदर्भ में भी पक्षपात रहित दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है।

अंत में कल्हण एवं उसके ग्रंथ राजतरंगिणी का मूल्यांकन करते हुएहम प्रसिद्ध इतिहासकार रोमिला थापर के शब्दों में यह कह सकते हैं कि ''कश्मीर के 12वीं शताब्दी के इतिहास का संबंध राज्य के प्रसिद्ध इतिहास लेखन से जुड़ा हुआ है। कल्हण की राजतंरगिणी के कारण उसकी गणना भारत के सर्वश्रेष्ठ इतिहासकारों में की जाती है। यह ग्रंथ अत्यंत उच्च कोटि का है, जो अपने अद्वितीय स्पष्टता और परिपक्व मानसिकता के आधार पर किए गए ऐतिहासिक विश्लेषण को प्रदर्शित करता है।''

4.4.4. मध्यकालीन भारतीय इतिहास लेखन

4.4.4.1 सल्तनत कालीन भारत में इतिहास लेखन

भारत में तुर्कों ने सर्वप्रथम गजनी-सल्तनत की स्थापना की। तदंतर दिल्ली सल्तनत की स्थापना की। इन सल्तनतों के काल में भारत में एक नव इतिहास परंपरा विकसित होती है। तुर्क अपने साथ अरबी व ईरानी इतिहास लेखन की परंपरा यहाँ लाए। यहाँ पर इतिहास लेखन की पूर्व परंपराएँ प्रचलित थीं। तुर्क सुल्तानों ने अरबी व ईरानी परंपरा को प्रश्रय दिया, परंतु यहाँ की पूर्व परंपरा समाप्त नहींहुई। इस तरह एक ही काल में देशी व विदेशी दोनों परंपरा चलती रही। अतः इनके इतिहास लेखनों में आदान-प्रदान का होना स्वभाविक था।

उल्लेखनीय है कि इस काल में क्षेत्रीय इतिहास लेखन को विशेष बल मिला। भारतीय इतिहास लेखन की चरित परंपरा, युग की सोच के अनुरूप आगे बढ़ती रही। ऐसे चरित लेखन में संध्याकर नन्दी का 'रामचरितम्' है, जिसमें पूर्वी क्षेत्र में स्थित बंगाल के पाल शासक रामपाल का जीवन चरित काव्य के रूप में वर्णित किया गया है। हम देखते हैं कि इसी परंपरा में पश्चिमी क्षेत्र में स्थित गुर्जर प्रदेश में जयसिंह (द्वितीय) ने कुमारपाल भूपाल चरित की रचना की। इसमें कुमारपाल तथा उसके गुरु हेमचंद्र के कार्यों पर प्रकाश डाला गया है। इसी प्रकार राजस्थान में 15वीं शताब्दी में लिखित चन्द्रशेखर कृत सुजान चरित, मानचरित भी है, जो क्षेत्रीय इतिहास पर प्रकाश डालते हैं।

भारत जैसे विशाल देश में जहाँ क्षेत्रीय इतिहास लेखन अपनी परंपराओं पर चलता रहा, वहीं इस्लाम के आगमन के साथ इतिहास लेखन की अरबी व ईरानी परंपराएँ अपना पैर जमाने लगी। गजनी सल्तनत की स्थापना के साथ ही इतिहास लेखन की इस्लामी परंपरा भी यहाँ प्रारंभ हो गई, जो दिल्ली सल्तनत की स्थापना के साथ फलती-फूलती हुई मुगलकाल में सम्यक रूप धारण कर विकसित होती रही। इस काल की इतिहास लेखन परंपरा न पूर्णतया देशी है और न विदेशी। यह इतिहास लेखन का एक संक्रमण काल है, जिसमें बौद्ध, ब्राह्मण, अरबी व फारसी लेखन के तत्वों का समागम होता है।

4.4.4.2. सल्तनत कालीन भारत में इतिहासकार

गजनी सल्तनत के इतिहास लेखन का ज्ञान हमें अबू रिहान, अलबरुनी, अबुलफजल, अल-बैहाकी (Mahammad Aufi) और मुहम्मद उफी आदि इतिहासकारों की लेखनी से होता है। तारीख-

अल-हिंद (किताब-उल-हिंद) का लेखक अलबरुनी इतिहासकार ही नहीं दार्शनिक वैज्ञानिक भी थे। अलबरूनी ने महमूद के आमंत्रण पर उसकी नौकरी कर ली। वे लगभग 40 वर्षों तक भारत में रहे। अलबरुनी एक प्रजनक लेखक थे। उन्होंने प्राकृतिक विज्ञान, प्रकाश विज्ञान, यांत्रिकी, खनिज विज्ञान तथा रसायन विज्ञान पर पुस्तकें लिखीं। उन्होंने भारत वर्ष पर लगभग बीस पुस्तकें लिखीं। वे भारतीय दर्शन और धर्मशास्त्र में उत्सुकता पूर्वक रुचि रखते थे और उन्होंने पतंजलि की पुस्तक, कपिल का सांख्य दर्शन, विष्णु पुराण तथा वायु पुराण आदि का भी अध्ययन किया। वे पहले मुसलमान थे जिन्होंने पुराण पढ़ा। 'तारीख-अल-हिंद' में उन्होंने भारतवर्ष के लोगों का विस्तृत वर्णन किया और उनके जीवन, धर्म, दर्शन और परंपराओं का भी उल्लेख किया।

गजनी सल्तनत के एक अन्य इतिहासकार थे 'अबु नस्त मुहम्मद इब्न् मुहम्मद अल जव्वारूल अलउत्बी' (Abu Nasr Muhammad ibn Muhammad al Jabbaru-I-Utbi) जिन्होंने ''किताम-ए-यामिनी'', ''तारीख-ए-यमीनी'' की रचना की। वे गजनी के सुल्तान महमूद के सचिव थे। अलउत्बी यद्यपि महमूद के साथ काम करते थे, तथापि वे उसके अभियानों में साथ नहीं गए थे। अतः उन्हें भारत के भूगोल का समुचित ज्ञान न था। उन्होंने अपने इतिहास लेखन में तिथियाँ बहुत कम दी है और जो दी हैं वह ठीक नहीं है। उत्बी ने इतिहास पर टीकाएँ की हैं।

गजनी सल्तनत के एक अन्य इतिहासकार 'ख्वाजा अबुल फजल बिन अलहसन अल बैठाकी' थे। उनका इतिहास लेखन अनेक जिल्दों में विस्तृत है। सामान्यतः इसे 'तारीख-ए-बैहाकी' (Tarikh-I-Bayhaqi) कहा जाता है। इसी समय महमूद के काल में ही एक अन्य विद्वान हकीम अबुल-कासिम फिरदौसी तुसी थे। फिरदौसी की प्रमुख रचना 'शाहनामा' है।

एक अन्य इतिहासकार जोकि युद्धों व अभियानों में भाग नहीं लेते थे, वे कलम के सिपाही सद्रउद्दीन मुहम्मद बिन हसन निजामी (Sadru-din Muhhammad bin Hasan Nizami) थे, जिन्होंने 'ताजुल-मासिर' की रचना की। इस कृति में मुख्यतः कुतुबुद्दीन ऐबक का इतिहास मिलता है, परंतु इसके कुछ भागों में मुहम्मद गोरी और उसके उत्तराधिकारी का भी इतिहास है।

दिल्ली सल्तनत के इतिहास लेखन में 'तबाकात-ए-नासिरी' का अपना स्थान है, जिसकी रचना मिनहाज-उस-सिराज अबु उमर मिनहाजुद्दीन उस्मान बिन सिराजुद्दीन अल जुजानी (Abu Osman Minhajuddin bin sirajuddin Juzjani ने की थी। मिनहाज ने अपनी ऐतिहासिक कृति को सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद को समर्पित किया है। फलतः उसका नाम पड़ा है 'तबाकात-ए-नासिरी', जो 23 अध्यायों (तबकों) में संकलित है।

जियाउद्दीन बर्नी ने दिल्ली सल्तनत के इतिहास लेखन में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। भारतीय मूल के वे पहले मुस्लिम इतिहासकार हैं, जिनका जन्म 'बरन' (आधुनिक बुलंदशहर) में हुआ था। बर्नी के रचनाक्रम में मुख्यतः दो कृतियों 'तारीख-ए-फिरोजशाही' और 'फतवा-ए-जहाँदारी' का विशेष महत्व है। 'फतवा-ए-जहाँदारी' में राज्य व्यवस्था तथा 'तारीख-ए-फिरोजशाही' में दिल्ली सल्तनत के सुल्तानों का इतिहास है। बर्नी की कृतियों में 'सनाय मुहम्मदी' (Sana-i-Muhammadi), 'सलाते कबीर' (Salvat-i-Kabir), 'इनायतनामा' (Inayat Nama-i-ilahi), 'मआसिरे सादात' (Maasir Saadat),

'हसरतनामा' (Hasratnama) और 'तारीखे बरम कियान' (Tarikh-i-Barmaki) का भी विशेष महत्व है।

बर्नी के साथ-साथ शम्स-ए-सिराज अफीफ ने भी 'तारीख-ए-फिरोजशाही' नामक ग्रंथ की रचना की। बर्नी ने अपनी 'तारीख-ए-फिरोजशाही' में फिरोजशाह के मात्र प्रारंभिक छह वर्षों का इतिहास दिया है, जबकि शम्स-ए-सिराज अफीफ ने अपने 'तारीख-ए-फिरोजशाही' में फिरोज तुगलक के संपूर्ण राजत्वकाल का इतिहास दिया है।

सल्तनत कालीन इतिहास लेखन में अमीर खुसरो का अपना पृथक महत्व है, जो कवि एवं कलाकार पहले थे इतिहासकार बाद में। वे बहुमुखी प्रतिभा के व्यक्ति थे। अमीर खुसरो का मूल नाम अबुल हसन यामीनुद्दीन था और खुसरो उनका उपनाम था। पिता की मृत्यु के बाद 1260 ई. से अपने नाना इमादुतुल मुल्क के पास दिल्ली में पले-बढ़े एवं यहीं वह बड़े-बड़े विद्वानों, कवियों आदि के संपर्क में आए और अपने स्वाध्याय से वह नक्षत्र शास्त्र, धर्मशास्त्र, व्याकरण, विज्ञान एवं संगीत का विद्वान बन गए। अपनी मातृभाषा हिंदी के अलावा वह संस्कृत, अरबी, फारसी, तुर्की आदि का ज्ञाता हो गए।

इसमें सदेह नहीं कि खुसरो, राजसी संरक्षण के कारण अपने मन की बात स्पष्ट रूप से नहीं लिख पाते हैं और बहुत-सी बातें छोड़ भी देते हैं, पर उनकी ऐतिहासिक दृष्टि सत्य परक है। उनके प्रमुख ऐतिहासिक कृतियों में 'किरान-उस-सादेन' (शुभ नक्षत्रों का मिलन), जिसमें बंगाल के गवर्नर बुगरा खाँ और उनके पुत्र कैकूबाद के मिलन का वर्णन है। 'मिफ्ता-उल-फुतूह', 'खजाइन-उल-फुतूह' (विजयों का कोष), 'आशिका' (देवलरानी खिश्र खाँ), 'नूह सिपिहर' (नौ आकाश) और 'तुगलुकनामा' प्रमुख हैं।

सल्तनत कालीन इतिहासकारों में ख्वाजा अब्दुल मलिक इसामी का नाम उल्लेखनीय है, जिन्होंने फारसी में 'फुतूह-उस-सलातीन' जैसे ऐतिहासिक ग्रंथ की रचना की। अतः उन्होंने अपने ग्रंथ में मुहम्मद तुगलक को 'जालिम' कहा है। इस ग्रंथ में इसामी ने राजनैतिक घटनाओं व युद्धों का सजीव चित्र प्रस्तुत किया है और कथाओं द्वारा उसे और भी जीवंत बना दिया है। उनकी रचना का आधार संभवतः फिरदौसी का 'शाहनामा' है।

सल्तनत कालीन इतिहास लेखन में इब्न बतूता का ऐतिहासिक यात्रा विवरण 'रेहला' का अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान है। वे 21 वर्ष की अवस्था में तानजीर से मक्का-मदीना की यात्रा के लिए निकले। उन्होंने लंबी यात्रा की और सिकन्दरिया, काहिरा, दमिश्क, मक्का, मदीना, बसरा, इरफहान, शिराज, कूफा, कर्तला, बगदाद, तबरेज, मिस्र, त्रिपोली, एशिया माइनर, कुस्तुनतुनिया, खुरासान, हेरात आदि होता हुआ 1333 ई. में भारत में प्रविष्ट हुए। समकालीन सुल्तान मुहम्मद बिन-तुगलक ने उनका स्वागत किया और उन्हें दिल्ली का काजी नियुक्त किया। इब्न बतूता ने 'रेहला' में सुल्तान बिन तुगलक के इतिहास के साथ पूर्व के सुल्तानों का इतिहास भी संक्षेप में दिया है। इस यात्रा संस्मरण का नाम अरबी की एक पांडुलिपि में 'तुहफतुन्नुज्जार की 'गराइविल अमसार' व 'अजाईबुल अफसार' मिलता है, जो 'किताब-उल-रेहला' के नाम से भी जाना जाता है।

सुल्तान फिरोजशाह की आत्मकथा 'फुतूहात-ए-फिरोजशाही' का सल्तनत इतिहास लेखन में विशेष स्थान है। दिल्ली सुल्तानों द्वारा लिखित संभवतः एक मात्र आत्मकथा है। यह 32 पृष्ठों की लघु आत्मकथा एक मस्जिद पर शिलालेख के रूप में अंकित थी।

दिल्ली सल्तनत के अवसान की ओर अग्रसर काल में जिन इतिहासकारों ने इतिहास लेखन किया उनमें एक है याह्या-बिन-अहमद अब्दुल्ला-सरहिंदी। इस काल में याह्या की कृति 'तारीख-ए-मुबारकशाही का विशेष महत्व है। यह इतिहास सुल्तान फिरोजशाह तुगलक के उत्तराधिकारियों एवं सैय्यद सुल्तानों के काल का एक मात्र समकालीन स्रोत है।

4.4.4.3. मुगलकालीन भारत में इतिहास लेखन

मुगलकालीन भारत में इतिहास लेखन की प्रवृत्तियाँ काफी कुछ पौढ़ होती गईं इस काल में इतिहास लेखन की अरबी परंपरा जहाँ क्षीण पड़ती है, वहीं ईरानी परंपरा इतिहास लेखन में बलवती होती है। इसमें संदेह नहीं कि ईरानी (फारसी) पुनर्जागरण ने इस काल के इतिहास लेखन को काफी कुछ प्रभावित किया और ईरानी प्रभाव हावी हो गया। व्यक्ति विशेष पर इतिहास लेखन की प्रवृत्ति विभाजित हुई। मुगलों ने जिस सांस्कृतिक समन्वय की प्रक्रिया शुरू की थी, वह इस काल के इतिहास लेखन में भी दृष्टिगोचर होता है। भारतीय इतिहास लेखन की मूल परंपराएँ भी रूप परिवर्तित करके इस काल में चलती रही। वास्तव में मुगलकालीन इतिहास लेखकों ने इतिहास के आर्थिक पहलू से ज्या दा राजनैतिक पहलू पर ध्यान दिया।

मुगल इतिहास लेखन की एक प्रसिद्ध विशेषता यह है कि मुगल शासक न केवल विद्वानों के संरक्षक थे, बल्कि उन्होने स्वयं अपने वृतांतों को लिखा और अपने समय की घटनाओं को अभिलेखित किया। उन्होंने हिंदुस्तान के लोगों के जीवन तथा हालातों पर भी प्रकाश डाला है। प्रथम मुगल बादशाह बाबर भी इसका अपवाद नहीं हैं। उनकी कृति 'तुजूक-ए-बाबरी' प्रमाणित करती है कि पहले वे विद्वान थे बाद में एक शासक।

4.4.4.4. मुगलकालीन भारत में इतिहासकार

बाबर की कृति 'बाबरनामा' या 'तुजूक-ए-बाबरी' मध्यकाल में तो 'वाकयाते बाबरी' नाम से प्रयुक्त हुआ। बाबर ने इसे अपने जुबान चगताई-तुर्की में लिखा था। बाद में मिर्जा अब्दुर्रहीम खानखाना ने इसका अनुवाद फारसी में किया। इसका सबसे अच्छा अंग्रेजी अनुवाद मिसेस बेवरीज ने किया।

बाबर की पुस्तक तीन भागों में विभक्त है। प्रथम भाग में सन् 1503-1504 ई. का काल, द्वितीय भाग में सन् 1508 ई से 1519 ई. तक का और तृतीय में सन् 1520-1525 ई. का काल वर्णित है। पुस्तक बाबर के फरगना की गद्दी पर बैठने से शुरू होती है तथा द्वितीय भाग भारत पर उसकी अंतिम चढ़ाई से संबंधित है। तृतीय भाग में वे भारतवर्ष में लेन-देन के विवरण को उल्लेखित करते हैं। बाबर के संस्मरण में मात्र 18 वर्षों का विवरण है। यद्यपि वे 47 वर्षों तक जीवित रहे। अपने ग्रंथ में बाबर ने जमीन, ऋतुएँ, फल-फूल, व्यापार आदि के साथ देश की सामाजिक तथा राजनैतिक दशाओं पर प्रकाश डालते हुए भौगोलिक दशाओं का भी वर्णन किया है।

मुगल कालीन ख्वान्दमीर (Khwandamir) 1528 ई. में बाबर के दरबार में हेरात से पहुँचा, जो एक उम्दा विद्वान थे। बाबर उन्हें अपने साथ सन् 1529 ई. से पूर्व अपने सैनिक अभियान में ले गया। बाबर की मृत्यु के बाद उसके पुत्र हुँमायू ने उन्हें अपना कृपा पात्र बनाया। ख्वान्दमीर ने लगभग 12 कृतियाँ लिखी।

उनकी आरंभिक कृतियाँ, जैसे— 'मासिरू-अल-मुल्क-खुलासत', 'अल-अकबर' (Khulasatu-I-Akhbar or Khondamir), 'मकरीम-अल-अखलाख', 'दस्तुर-अल-वुजुरा' (Dastura-I-Wuzra), 'नामा-ए-नामा', 'रौजत-अल-सुफा', 'हबीब-अल-सियर' (Habib al-Siyar) प्रमुख हैं।

ख्वान्दमीर ने 1535 ई में बादशाह हूमायूँ के आदेशानुसार 'हुमायूँनामा' लिखना आरंभ किया। इसमें बादशाह द्वारा समय-समय पर किए गए आदेशों तथा नियमों का विवरण सम्मिलित है। ख्वान्दमीर ने एक अन्य कृति 'कानून-ए-हुमायूँनी की रचना भी की है, जिसमें तत्कालीन युग की सामाजिक तथा आर्थिक जीवन पर प्रचुर प्रकाश डाला गया है।

हूमायूँ कालीन इतिहास लिखने के लिए सम्राट अकबर ने गुलबदन बेगम, जो कि बाबर की पुत्री व अकबर की बुआ थी को उत्साहित किया। फलस्वरूप गुलबदन बेगम ने 'हूमायूँनामा' की रचना की। इसमें दो भाग हैं, प्रथम बाबर के इतिहास से संबंधित है तथा दूसरा हुमायूँ के जीवन तथा उपलब्धियों से संबंधित है।इस ग्रंथ को लिखने में वरिष्ठ शाही औरतों, जैसे— खानजादा बेगम, माहम बेगम और हमीदा बानो बेगम ने भी सहयोग किया।

हूमायूँ कालीन इतिहास लेखन में मिर्जा मुहम्मद हैदर दोगलत ने, 'तारीख-ए-रशीदी' की रचना एवं जौहर आफताबची (Jauhar Aftabchi) ने 'तजकिरातुल वाकयात' (Tazkirat-ul-Waquiat) लिखा। इस कृति को 'तारीख-ए-हुमायूँनी' 'तारीख-ए-हुमायूँशाही' तथा 'जवाहिर-ए-शाही' के नाम से भी जाना जाता है। चूँकि जौहर की कृति हुमायूँ के स्वर्गवास के लंबे समय उपरांत लिखी गई थी, स्मरण शक्ति के अभाव के कारण यहाँ त्रुटियों की संभावना है।

इसी काल में अब्बास खाँ सेरवानी (Abbas Khan Sarwani), शहंशाह अकबर की सेवा में थे। उन्होंने 'तारीख-ए-शेरशाही' या 'तोहफा-ए-अकबरशाही' (Tuhfat-i-Akbar shahi) लिखा। इस कृति को लिखने के लिए उन्हें अकबर द्वारा उत्साहित किया गया था। यह शेरशाह सूरी के जीवन का इतिहास तथा उपलब्धियाँ और उसके उत्तराधिकारियों के बारे में बताती है।

मुगलकालीन इतिहास लेखन में सर्वाधिक उत्कृष्ट भूमिका अबुल फजल की मानी जाती है। एक विद्वान तथा इतिहासकार के बतौर उन्होंने महान कृति 'अकबरनामा' और 'आइन-ए-अकबरी' की रचना की, जिसने उन्हें मुगलकाल के इतिहास लेखकों के बीच एक अत्यंत प्रसिद्ध व्यक्ति बना दिया। अकबर ने अबुल फजल को अपने काल का एक प्रामाणिक विवरण लिखने का आदेश दिया और अबुल फजल ने अपने स्वामी के आदेशों का पालन किया। उन्होंने शाही परिवार के पुराने सदस्यों तथा सभी उपलब्ध स्रोतों से सामग्री एकत्र की। अबुल फजल ने अपनी कृति को पूर्ण करने में सात वर्ष लिए और उसका शीर्षक 'अकबरनामा' रखा।

अबुल फजल की कृति तीन जिल्दों में है। प्रथम भाग तैमूर के परिवार से हुमायूँ की मृत्यु तक के इतिहास से संबंधित है। दूसरी जिल्द में अकबर के शासन से 1604 ई. तक का विवरण है। तृतीय जिल्द 'आईन-ए-अकबरी' के नाम से जानी जाती है। आईन-ए-अकबरी पाँच खंडों में लिखी गई है। प्रत्येक खंड विशेष पहलू से संबंध रखती है। यह अकबर के दरबार और घरेलू मामलों, सैनिक तथा सार्वजनिक सेवाओं, न्यायपालिका तथा कार्य पालिका के विभागों के लिए नियमों तथा अधिनियमों के विवरण और राजस्व व्यवस्था के बारे में विस्तृत प्रकाश डालती है।

अकबर के काल में ही अब्दुल कादिर बदायूँनी ने 'मुंतखब-उत-तवारीख' या 'तारीख-ए-बदायूँनी' की रचना की। इस ग्रंथ में उन्होंने शहंशाह अकबर तथा उसके उदारवादी मित्रों जैसे अबुल फजल तथा फैजी की बुरी तरह से भर्त्सना तथा आलोचना की है। इसमें कोई संदेह नहीं कि उसका प्रसिद्ध ग्रंथ सन् 1596 ई. में पूर्ण हो चुका था। किंतु शहंशाह के नीतियों के विरुद्ध लेखक की विरोधी टिप्पणियों के कारण, यह प्रकाशित नहीं हो सका था। बाद में जहाँगीर के समय प्रकाशित हुई।

सन् 1593 ई. में निजामुद्दीन अहमद ने 'तबाकात-ए-अकबरी' लिखी। यह नौ भागों में है। उन्होंने इस ग्रंथ के लिए अकबरनामा और अन्य ऐतिहासिक महत्व की कृतियों से सहायता प्राप्त की।

अकबर के बाद उसका पुत्र जहाँगीर सिंहासनारूढ़ हुआ। एक योग्य सेनापति तथा योद्धा होने के अतिरिक्त वह इतिहास तथा साहित्य में रुचि लेता था। उसने न केवल इतिहासकारों तथा विद्वानों को संरक्षण दिया, अपितु अपनी आत्मकथा भी लिखी, जो कि मध्य युग की सर्वश्रेष्ठ आत्मकथाओं में से एक मानी जाती है। उसके संस्मरण 'तारीख-ए-सलीमशाही', 'कारनामाँ-ए-जहाँगीरी', 'वाकियात-ए-जहाँगीरी', 'इकबालनामा', 'जहाँगीरनामा' और 'तुजुक-ए-जहाँगीरी', के नाम से भी जानी जाती हैं। इसमें जहाँगीर के शासन का विवरण है। बाद में यह कृति शहंशाह जहाँगीर के निर्देशन में दूसरे इतिहासकार मुदामिद खाँ द्वारा पूर्ण की गई। इन संस्मरणों का प्रमुख गुण ये है कि ये बेखौफ लिखी गई हैं।

मुगलकाल में ही 'खाफी खान' ने 'मुंतखाब-उल-लुबाब' अथवा 'तारीख-ए-खाफी खाँ' तीन जिल्दों में लिखा। इसमें भारत में मुसलमानों के आगमन से लेकर मुगल शहंशाह मुहम्मद शाह(1719-1748 ई.) के शासन काल तक का इतिहास सम्मिलित है। इसी क्रम में मिर्जा मुहम्मद काजिम ने 'आलमगीरनामा' साकी मुस्तइद खाँ ने 'म आसिर-ए-आलम-गीरी' की रचना की।

ऐतिहासिक महत्व की अन्य मुगलकालीन कृतियों में अब्दुल हमीद लाहोरी की 'पादशाहनामा' है, जो अबुल फजल के अकबरनामा के तर्ज पर लिखी गई थी। इनायत खाँ ने शाहजहाँनामा, मुहम्मद खलीह कम्बू (Muhammad Saleh Kamboh) का अमल-ए-सलीह मुहम्मद खादिक खान 'शाहजहाँनामा' का व अमीन-ए-कजवीनी ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

4.4.5 सारांश

इस प्रकार हम पाते हैं कि भारत में इतिहास लेखन की परंपरा पुरानी रही है। उसकी स्थापित परंपरा थी तथा कोई क्रमबद्ध तिथिपरक लेखन नहीं हुआ। भारतीय विद्वान हीरानंद शास्त्री ने कहा है कि प्राचीन भारतीयों ने इतिहास के प्रति विशेष ध्यान नहीं दिया, क्योंकि वे अतीत तथा वर्तमान भौतिक जीवन की अपेक्षा आगामी जीवन में विशेष रुचि रखते थे। ए.के. वार्डर के अनुसार भारतीय इतिहास के प्रायः सभी कालखंडों के लिए हमारे पास साहित्य, कला और दर्शन की एक संपन्न सांस्कृतिक संपत्ति विद्यमान है, जिसके अध्ययन से विशिष्ट समय में भारतीय सभ्यता का वास्तविक सार झटपट हमारे सामने आ जाता है।

भारतीय इतिहास का मध्यकाल सन् 1206 ई. से प्रारंभ माना गया है, जिसे सल्तनत काल एवं मुगलकाल में विभाजित किया गया है। सल्तनत काल कुतुबुद्दीन ऐबक के सिंहासनारोहण से तथा मुगलकाल बाबर के समय से प्रारंभ होता है। मध्यकालीन इतिहास लेखन मूलतः राज्याश्रित लेखकों द्वारा लिखा गया लेखन है।

4.4.6 बोध प्रश्न

1. प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन पद्धतियों की विवेचना कीजिए।
2. मध्य कालीन भारतीय इतिहास लेखन एवं उसकी पद्धतियों का उल्लेख कीजिए।

संक्षेप में टिप्पणी लिखिए

1. प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन के साक्ष्य ग्रंथ।
2. सल्तनत कालीन प्रमुख इतिहासकार—अलबरुनी, जियाउद्दीन बर्नी, अमीर खुसरो।
3. मुगल कालीन प्रमुख इतिहासकार—गुलबदन बेगम, अबुल फजल, बदायूँनी।

4.4.7. संदर्भ ग्रंथ

1. बेहार. राम कुमार., एवं पाण्डेय रिषिराज. (2003). *इतिहास पद्धति एवं इतिहास लेखन*. रायपुर : छत्तीसगढ़ शोध संस्थान।
2. गुप्त, मानिक लाल. (2004). *इतिहास लेखन, धारणाएँ एवं शोध पद्धतियाँ.* कानपुर : अमित पब्लिकेशन।
3. खुराना, के.एल. (2011). *इतिहास लेखन, धारणाएँ तथा पद्धतियाँ.* आगरा : लक्ष्मीनारायण अग्रवाल।
4. राधेशरण. (2006). *इतिहास एवं इतिहास लेखन.* भोपाल : मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी।
5. सिंह, परमानन्द. (2003). *इतिहास दर्शन.* वाराणसी : मोतीलाल बनारसी दास।
6. पांडे, गोविंद चंद्र (1971). *इतिहास स्वरूप एवं सिद्धांत* राजस्थान : हिंदी ग्रंथ अकादमी।
7. चौबे, झारखंड. *इतिहास दर्शन.* वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन।
8. श्रीधरन, ई., (2011). *इतिहास लेख.* ओरियंट ब्लैकस्वॉन, नई दिल्ली : प्राईवेट लिमिटेड।